ईकाई-1 नैदानिक मनोविज्ञान: प्रकृति एवं विकास, नैदानिक मनोवैज्ञानिक की गतिविधियाँ, नैदानिक मनोविज्ञान एवं अन्य संबंधित क्षेत्र, असामान्य एवं नैदानिक मनोविज्ञान में अन्तर

(Clinical Psychology: Nature and development, Activities of Clinical Psychologists, Clinical Psychology and other related fields, Difference between Abnormal and Clinical psychology)

इकाई संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 नैदानिक मनोविज्ञान की प्रकृति
1.4 नैदानिक मनोविज्ञान का विकास
1.5 नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की गतिविधियाँ
  1.5.1 मानसिक चिकित्सालयों में
  1.5.2 विद्यालयों में
  1.5.3 बाल मार्गदर्शन उपचार गृह में
  1.5.4 व्यवसायिक मार्गदर्शन केन्द्रों में
  1.5.5 बन्दीगृहों एवं सुधारगृहों में
  1.5.6 संगठनों एवं उद्योगों में
  1.5.7 मादक द्रव्य निर्मूलन केन्द्रों में
1.6. नैदानिक मनोविज्ञान एवं अन्य सम्बन्धित क्षेत्र
  1.6.1. परामर्श मनोविज्ञान के साथ संबंध
  1.6.2. मनोरोग विज्ञान के साथ संबंध
  1.6.3. मनोविश्लेषण के साथ संबंध
  1.6.4. असामान्य मनोविज्ञान के साथ संबंध
  1.6.5. मनोरोगी सामाजिक कार्य के साथ संबंध
  1.6.6. निर्देशन मनोविज्ञान के साथ संबंध
1.7. असामान्य मनोविज्ञान एवं नैदानिक मनोविज्ञान में अन्तर
1.8. सारांश
1.9. शब्दावली
1.10. अभ्यास के प्रश्नों के उत्तर
1.11. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.12. निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

नैदानिक मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यवहारिक जीवन से सम्बन्धित कठिनाईयों के समाधान का प्रयास करता है। इसमें मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों तथा तकनीकियों का प्रयोग करके व्यक्ति के सामने आने वाली समस्याओं का समाधान किया जाता है। नैदानिक मनोविज्ञान का सम्बन्ध अधिकतर उन समस्याओं से होता है जिनसे एक व्यक्ति जूझता रहता है। नैदानिक मनोविज्ञान में व्यक्ति विशेष के व्यवहार को समझने का प्रयास किया जाता है। इसे एक सहायतापरक पेशे के रूप में प्रयुक्त किया जाता है जो साँवेगिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं से पीड़ित व्यक्तियों को उनकी इन समस्याओं से मुक्ति दिलाने की कोशिश करता है।

प्रस्तुत इकाई में नैदानिक मनोविज्ञान की प्रकृति एवं विकास के बारे में आप जान सकेगें। साथ ही नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की विभिन्न गतिविधियाँ तथा नैदानिक मनोविज्ञान से सम्बन्धित अन्य क्षेत्रों के बारे में विस्तृत रूप से अध्ययन कर सकेगें।

1.2 उद्देश्य-

इस इकाई के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य हैं-

1. नैदानिक मनोविज्ञान परिचय एवं विकास को समझ सकें।
2. विभिन्न क्षेत्रों में नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की गतिविधियों को जान सकें।
3. मनोविज्ञान के अन्य क्षेत्रों का नैदानिक मनोविज्ञान के साथ सम्बन्ध को जान सकें।
4. असामान्य मनोविज्ञान एवं नैदानिक मनोविज्ञान के अन्तर को समझ सकें।

1.3 नैदानिक मनोविज्ञान की प्रकृति -

नैदानिक मनोविज्ञान मनोविज्ञान की एक प्रमुख प्रयुक्त शाखा है। मनोविज्ञान की एक ऐसी शाखा है जिसमें मानसिक रोगों के निदान तथा उपचार पर बल डाला जाता है। नैदानिक मनोविज्ञान पद का प्रतिपादन सबसे पहले लाइटनर विटमर ने 1896 में किया। नैदानिक मनोविज्ञान का संबंध मानसिक रोगों के वर्णन वर्गीकरण निदान तथा पूर्वानुमान से होता है। इसमें मानसिक रोगो का उपचार मनोवैज्ञानिक विधियों से किया जाता है।

परिभाषायें

(i) सिक्कारेल्ली एवं मेयर (2006)के अनुसार "नैदानिक मनोविज्ञान मनोविज्ञान का एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें मनोवैज्ञानिक साधारण से गंभीर रूप से मनोवैज्ञानिक विकृतियों से ग्रस्त व्यक्तियों की पहचान एवं उपचार करते है।"

(ii) कोरचिन (1986)के अनुसार, नैदानिक मनोविज्ञान का संबंध मनोवैज्ञानिक समस्याओं से ग्रसित व्यक्तियों को समझने एवं उन्हें मदद करने से होता है। नैदानिक मनोविज्ञान का संबंध मानव व्यक्तित्व की संरचना एवं कार्य के बारे में ज्ञान उत्पन्न करने तथा उनका उपयोग करने से भी होता है।

(iii) रॉटर जुलियन बी. (1964) ''विस्तृत आधार पर, नैदानिक मनोविज्ञान मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुप्रयोग का वह क्षेत्र है, जिसका संबंध मुख्यतः व्यक्तियों के मनोवैज्ञानिक समायोजन से रहता है।''

उपरोक्त परिभाषाओं से ये स्पष्ट हो जाता है कि नैदानिक मनोविज्ञान का संबंध एक व्यक्ति की साधारण तथा व्यक्तिगत समस्याओं तथा कठिनाइयों से है अर्थात् नैदानिक मनोविज्ञान का संबंध व्यक्ति के जीवन से सम्बन्धित विभिन्न क्षेत्रों की व्यावहारिक तथा साधारण समस्यायें ही है।

नैदानिक मनोविज्ञान में सांवेगिक एवं व्यवहारात्मक समस्याओं के निदान एवं उपचार पर बल डाला जाता है। इस समस्याओं में प्रमुख हैः- मानसिक रोग, किशोर अपराध, मानसिक दुर्बलता, वैवाहिक एवं पारिवारिक संघर्ष, औषध व्यसन, आपराधिक व्यवहार आदि।

नैदानिक मनोविज्ञान में संवेगात्मक एवं व्यवहारात्मक समस्याओं को समझने के लिए व्यक्ति के व्यक्तित्व के अध्ययन पर भी बल डाला जाता है। सिगमण्ड फ्रायड ने नैदानिक मनोविज्ञान के इस पक्ष पर सबसे अधिक बल डाला है।

नैदानिक मनोविज्ञान में सभी संस्कृति के उच्च, मध्य तथा निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के व्यक्तियों के सांवेगिक, जैविक, सामाजिक, बौद्धिक एवं मनोवैज्ञानिक पहलुओं पर विचार विमर्श किया जाता है।

नैदानिक मनोविज्ञान का स्वरूप प्रयुक्त है। इसमें मानसिक रोगों तथा अन्य सांवेगिक एवं व्यवहारात्मक समस्याओं का निदान एवं उपचार पर बल डाला जाता है।

1.4 नैदानिक मनोविज्ञान का विकास -

पाश्चात्य देशों में नैदानिक मनोविज्ञान का विकास-

नैदानिक मनोविज्ञान अपने विकास की दृष्टि से लगभग उतना ही पुराना है जितना मानव की दार्शनिक विचारधारा के विकास का इतिहास है। व्यवहारिक रूप से तथा वैज्ञानिक विकास की दृष्टि से इसका आरम्भ द्वितीय महायुद्ध के पश्चात ही हुआ है। जिस प्रकार सामान्य मनोविज्ञान को एक वैज्ञानिक मनोविज्ञान के रूप में भौतिक विज्ञानों तथा जीवन विज्ञानों की नई खोजों ने विशेष योगदान दिया है उसी प्रकार नैदानिक मनोविज्ञान के वैज्ञानिक विकास में मनोभौतिक प्रयोगों तथा मनोरोग संबंधी खोजों का योगदान रहा है। इसके अलावा नैदानिक मनोविज्ञान के विकास में प्रशासनिक, औद्योगिक, शैक्षिक, व्यावसायिक क्षेत्रों की समस्याओं तथा आवश्यकताओं के मूल्यांकन और उनके समाधान सम्बन्धी कार्यक्रमों ने भी विशिष्ट भूमिका अदा की है।

नैदानिक मनोविज्ञान का आरम्भ 1896 में यू0 एस0 ए0 के पेन्सिलवानिया विश्वविद्यालय में विटमर के द्वारा किया गया। इस अवधि में नैदानिक मनोविज्ञान का मुख्य लक्ष्य स्कूल बालकों की विभिन्न समस्याओं का अध्ययन करके उनका समाधान करना था। 1906 में मौटर्न प्रिन्स ने ष्जनरल ऑफ एबनॉरमल साइकोलॉजीष् का प्रकाशन शुरू किया। 1907 में नैदानिक मनोविज्ञान का पहला जनरल प्रकाशित किया गया जिसका नाम ष्दी साइकोलॉजिकल क्लिनिकष् था। इस जनरल में नैदानिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में हुए शोधों एवं पाए गए तथ्यों का प्रकाशन होता था। 1909 में जे0वी0 माइनर ने मिनसोटा विश्वविद्यालय में मानसिक विकास का एक उपचारगृह खोला। 1909 में हीली द्वारा शिकागों में ''जुभेनाइल साइकोपैथिक इंस्टीच्यूट'' की स्थापना की गयी। 1919 में अमेरिकन मनोवैज्ञानिक संघ के अन्तर्गत नैदानिक मनोविज्ञान का एक अलग विभाग जिसे डिवीजन संख्या 12 कहा गया, की स्थापना की गयी। 1919 में APA के क्लीनिकल साइकोलॉजी सम्भाग की स्थापना हुई। इसमें APA नैदानिक विभाग ने नैदानिक मनोवैज्ञानिकों के प्रशिक्षण के लिये एक कमेटी का संगठन किया|

1935 में नैदानिक मनोविज्ञान की एक नइ परिभाषा भी दी जो इस प्रकार थी, *''नैदानिक मनोविज्ञान वह कला एवं तकनीकी है जो मानव के समायोजन समस्याओं का अध्ययन करता है।''*

जेम्स मैककीन कैटेल द्वारा 1921 में दी साइकोलॉजिकल कॉरपोरेशन की स्थापना की गई, इसका मुख्य कार्य मनोविज्ञान परीक्षणों को प्रकाशित करना तथा उनकी उपयोगिकताओं को बताना था। द्वितीय विश्वयुद्ध में नैदानिक मनोविज्ञान को एक पेशे के रूप में विकसित होने में काफी मदद मिली। इस विश्वयुद्ध में नैदानिक मनोवैज्ञानिक ने अमेरिकन सरकार को सैनिक सेवा में सांवेगिक रूप से अस्थिर लोगों का चयन करने में अपने विशेष मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के माध्यम से काफी मदद की।

प्रथम विश्वयुद्ध और द्वितीय विश्वयुद्ध के बीच की अवधि में नैदानिक मनोविज्ञान की प्रगति होती गई। इस समय अनेक मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का विकास हुआ जैसे- बुद्धि परीक्षण, अभिवृत्ति परीक्षण आदि। 1946 में नैदानिक मनोविज्ञान की लोकप्रियता बहुत बढ़ गई थी और यह एक व्यवसाय के रूप में स्थापित हो गया था। अब नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की मांग भी लगातार बढ़ रही थी। 1960 में नैदानिक मनोविज्ञान की प्रथम शोध पत्रिका ''जनरल ऑफ अबनॉर्मल एण्ड सोशल साइकोलॉजी'' प्रकाशित हुई। इस समय फ्रांस में सम्मोहन विधि के द्वारा मानसिक रोगों का उपचार किया जाता था। फ्राइड ने भी इसी समय मनोविश्लेषण सिद्वान्त का प्रतिपादन किया था जो व्यक्तित्व विकास में सहायक हो रहा था। 1963 में अधिकतर शोध उपाधि नैदानिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में ही मिली। इसके बाद नैदानिक मनोवैज्ञानिकों के कार्यों का महत्व औद्योगिक, शैक्षिक, व्यावसायिक आदि क्षेत्रों में भी होने लगा। इसके साथ ही नैदानिक मनोविज्ञान की भूमिकायें बाल निर्देशन, मानसिक चिकित्सालयों, विद्यालयों, बाल सुधार गृहों में भी बढ़ने लगी।

1966 में ब्रिटिश साइकोलॉजिकल सोसाइटी की स्थापना हुई जिसका मुख्य उद्देश्य नैदानिक मनोवैज्ञानिकों के कार्यों को बढ़ावा देना था। 1960 से 1970 के दशक में नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की संख्या में वृद्धि हुई।

1968 में इलिनोइस विश्वविद्यालय द्वारा ''डॉक्टर ऑफ साइकोलॉजी'' की उपाधि दी जाने लगी। यह उपाधि उन नैदानिक मनोवैज्ञानिकों को दी जाती है, जिनमें नैदानिक कौशलता अधिक थी अर्थात् जो नैदानिक कार्यों में विशेष रूचि रखते थे। इस प्रकार से नैदानिक मनोविज्ञान निरन्तर विकास एवं प्रगति की ओर अग्रसर हुआ।

भारतवर्ष में नैदानिक मनोविज्ञान का विकास-

प्राचीन काल में भी नैदानिक मनोविज्ञान का अस्तित्व था। उस समय कुछ ऐसे तथ्य थे जो आधुनिक नैदानिक मनोविज्ञान में है जैसे- मानसिक विकृति के प्रकार एवं उपचार आदि। भारतीय संस्कृति में चार तरह के वेद है-

(i ऋग्वेद (ii यजुर्वेद (iii सामवेद (iv अथर्ववेद

इसमें अथर्थवेद में मानसिक रोगों एवं उनके उपचार को बताया गया है। इस वेद के अनुसार मानव व्यक्तित्व का सन्तुलन शरीर में उत्पन्न होने वाले तीन कायरसो के द्वारा होता है- (i वात (ii कफ (iii पित्त। यदि शरीर में किसी भी कारण से इन तीनों में से कोई भी ज्यादा या कम हो जाता है तो शारीरिक संतुलन बिगड़ जाता है। यदि ये स्थिति लम्बे समय तक बनी रहती है तो इसके कारण अनेक शारीरिक परेशानियॉ उत्पन्न हो सकती है और आगे चलकर मानसिक विकृतियों का रूप ले सकती है। प्राचीन काल में एक व्यक्ति को इन विकृतियों से मुक्त करने के लिये मुख्य विधियॉ - तंत्र विद्या, हवन, भूत विद्या, जप, तप, व्रत, पूजा, ध्यान, ज्ञान आदि प्रमुख थी। जिन रोगियों को इन विधियों से लाभ नही होता था उन्हें किसी धार्मिक स्थान पर ले जाया जाता था।

भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही मानव व्यक्तित्व के उत्थान एवं मानसिक स्वास्थ्य के लिये योगदर्शन तथा योग अभ्यास का प्रचलन रहा है। 1915 में भारतवर्ष में नैदानिक मनोविज्ञान का शुभारम्भ हुआ। 1919 में कलकत्ता के लम्बुनी पार्क मानसिक चिकित्सालय में साइको-एनालैटिक सोसाइटी की स्थापना हुई। 1938 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग में मनोविज्ञान की एक शाखा स्थापित हुई। इसमें मनोविज्ञान को विज्ञान संकाय में रखा गया। यहॉ पर मनावैज्ञानिक परीक्षण बनाए जाते थे तथा छात्रों को व्यावसायिक निर्देशन दिया जाता था। 1924 में मैसूर विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान की पढ़ाई शुरू हुई तथा भारतीय मनोविज्ञान संघ की स्थापना हुई। 1943 में ''इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ साइकोलॉजी एण्ड मेन्टल हाइजिन'' की स्थापना की गई। इसके अन्तर्गत नैदानिक सेवायें, सर्वे, जनशिक्षा तथा शोध आदि कार्य किये जाते है। भारत में अनेक ऐसे संस्थानों की स्थापना हुई जिनके अन्तर्गत मनोरोगी सामाजिक कार्यकर्ता तथा नैदानिक मनोविज्ञान में डिप्लोमा दिया जाता है। कुछ संस्थानों में परामर्श तथा निर्देशन में डिप्लोमा प्रदान किये जाते है।

1969 में बैगलोर में भारतीय नैदानिक मनोवैज्ञानिकों ने अखिल भारतीय संघ खोला। इसके अन्तर्गत मनोचिकित्सा, मनोनिदान, परामर्श, निर्देशन आदि क्षेत्रों में शोध कार्य तथा पठन-पाठन से सम्बन्धित कार्यो की नवीन जानकारियॉ तथा सुझाव दिये जाते है।

पाश्चात्य देशों में तो नैदानिक मनोज्ञिान में तो बहुत तरक्की हुई है परन्तु भारतवर्ष में अभी इसका पूर्ण विकास नही हो पाया है और नैदानिक मनोविज्ञान का एक व्यवसाय के रूप में अधूरा विकास हुआ है क्योंकि इस देश में मानसिक स्वास्थ्य आन्दोलन अभी पूरा नही हो सका है।

1.5 नैदानिक मनोविज्ञानिकों की विभिन्न गतिविधियाँ -

1.5.1. मानसिक चिकित्सालयों में -

मानसिक चिकित्सालयों में नैदानिक मनोविज्ञानिकों द्वारा अनेक गतिविधियॉ होती है। वे यहॉ पर मनोवैज्ञानिक कार्यक्रमों को चलाते है जिसमें रोगियों के लिये बहुत सी मनोवैज्ञानिक चिकित्सा प्रविधियों का प्रयोग करते है। मानसिक चिकित्सा में कुछ नए प्रशिक्षणार्थी आते है जो इस रोग से संबंधित प्रशिक्षण प्राप्त करते है। नैदानिक मनोवैज्ञानिक इन नए प्रशिक्षणार्थियों को भी प्रशिक्षण देते है।

मानसिक चिकित्सालयों में नैदानिक मनोवैज्ञानिकों का सबसे प्रमुख कार्य मनश्चिकित्सा या मनोपचार प्रदान करना है। नैदानिक मनोविज्ञान मनश्चिकित्सा की जिन प्रविधियों का प्रयोग मानसिक चिकित्सालय में अधिक करते है, उनमें मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा, व्यवहार चिकित्सा, रोगी-केन्द्रित चिकित्सा, सामूहिक चिकित्सा आदि मुख्य है। वे मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के आधार पर रोगियों को कुछ सलाह भी देते है जो उनके भविष्य के लिए लाभप्रद होती है। नैदानिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा इस चिकित्सालयों में कई तरह के शोध कार्य किये जाते है जिनमें विभिन्न तरह के मनोनैदानिक परीक्षणों का निर्माण, व्यक्तित्व के सिद्धान्त का विकास, चिकित्सीय प्रविधियों का मूल्यांकन आदि महत्वपूर्ण है। मानसिक चिकित्सालयों में मानसिक रोगों के निदान तथा उपचार के लिए विशेष प्रशिक्षण भी दिया जाता है। इसमें नैदानिक मनोविज्ञान में एम0ए0 करने वाले छात्रों को विशेष प्रशिक्षण दिया जाता है। मनोवैज्ञानिकों के इन मानसिक अस्पतालों एवं उपचार-गृह में कई तरह के प्रशासनिक पद होते है। मुख्य मनोवैज्ञानिक का पद, विश्वविद्यालिय विभाग के अध्यक्ष के पद के समान होता है। इसमें उन्हें प्रशासनिक कार्य करना पड़ता है। जिसके अन्तर्गत रिकार्ड का ठीक ढंग से रख-रखाव, आन्तरिक रिपोर्ट तैयार किया जाना, विभिन्न शोध प्रोजेक्ट का समय के अनुरूप पूरा किया जाना और मानसिक अस्पताल में कर्मचारियों द्वारा अनुशासन का पालन करना आदि सम्मिलित होते है।

1.5.2. विद्यालयों में-

विद्यालयों में कई ऐसे बालक होते है जिनकी कुछ संवेगात्मक समस्याये होती है, जिनसे वे स्कूल के वातावरण में ठीक से समायोजन नहीं कर पाते है और विद्यालय में शिक्षक व प्रशासन के लिए नई समस्यायें उत्पन्न करते है। नैदानिक मनोवैज्ञानिक स्कूल में जाकर ऐसे बच्चों से मिलकर पहले उनकी समस्याओं की पहचान करते है, उसके बाद उसका उपयुक्त निदान करते है तथा फिर उसका उपचार करते है। फेयर्स (1984) के अनुसार नैदानिक मनोवैज्ञानिक ऐसे बच्चों को बुद्धि तथा अभिक्षमता को मापते है और उसके अनुरूप उन्हें शिक्षा देने की सिफारिश शिक्षकों को देते है। स्कूल में नैदानिक मनोवैज्ञानिक सिर्फ समस्यात्मक बालकों की ओर ही अपना ध्यान नहीं देते हैं बल्कि अन्य सामान्य बच्चों की अभिक्षमताओं एवं अभिरूचियों का भी अध्ययन करते है। वे बच्चों की

अभिक्षमताओं एवं अभिरूचियों को मापकर वे उन्हें उन विषयों या पाठों को पढ़ने की सलाह देते है जिनमें उनकी रूचि होती है। कभी-कभी नैदानिक मनोवैज्ञानिक स्कूल में अपना विशेष कैम्प भी लगाते है। इस तरह के कैम्प में नैदानिक मनोवैज्ञानिक बालकों की समस्या को सुनते है तथा कुछ परामर्श सत्र रखते है जिससे छात्र-छात्रायें अपनी समस्यायें बताते है और उसका निदान मनोवैज्ञानिकों द्वारा करवाते है। इससे उनमें आत्मविश्वास की भावना बढ़ती है।

1.5.3. बाल मार्गदर्शन उपचारगृह में -

बाल मार्गदर्शन उपचार-गृह एक ऐसा उपचार-गृह होता है जहॉ उन बच्चों को भेजा जाता है जिनमें शैक्षिक, मनौदेहिकी तथा अन्य दूसरी तरह की समायोजन संबंधी-समस्याऐं काफी बढ़ जाती है, ऐसे उपचार-गृह में स्कूल दुर्भीति, मल-मूत्र त्याग से संबंधित समस्या जैसे असंयतमूत्रता आदि से ग्रस्त बालक उपचार के लिए अधिक पहुंचते है। उपचार गृह में लाये गये बच्चों की समस्याओं का मूल्यांकन नैदानिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा किया जाता है। इस कार्य को करने के लिए नैदानिक मनोवैज्ञानिक विभिन्न तरह के मनोवैज्ञानिक परीक्षणों जैसे बुद्धिपरीक्षण, व्यक्तित्व परीक्षण, अभिक्षता परीक्षण तथा अभिरूचि परीक्षण का प्रयोग करते है। इन परीक्षणों के द्वारा वे बच्चों की बुद्धिए व्यक्तित्व, अभिरूचि तथा अभिक्षमता के बारे में पता लगाकर किसी निष्कर्ष पर पहुंचते है। इस तरह मिली सूचनाओं द्वारा अंत में वे बच्चों की समस्याओं का वर्गीकरण करते है जिनसे उन्हें निदान करने तथा फिर उनका उचित उपचार एवं मार्गदर्शन करने में अधिक आसानी होती है। नैदानिक मनोवैज्ञानिक बाल मार्गदर्शन उपचार-गृह में लाये बच्चों के उपचार करने के बाद कुछ ऐसे सुझाव उनके माता पिता को देते है जिनसे बच्चों को घर पर भी सही मार्गदर्शन मिल जाता है।

1.5.4. व्यवसायिक मार्गदर्शन केन्द्रों में-

व्यावसायिक मार्गदर्शन केन्द्र में नैदानिक मनोवैज्ञानिक का एक कार्य रोजगार परामर्शदाता के रूप में भी होता है। इन केन्द्रों में व्यक्तियों को उचित व्यवसाय का चयन करने के बारे में सलाह दी जाती है। पहले नैदानिक मनोवैज्ञानिक ऐसे लोगों की अभिक्षमता, अभिरूचि एवं समायोजनशीलता का मापन करते है। उसके बाद उनकी उचित व्यवसायिक जीवन-वृत्ति का चयन करने में मदद करते है। इसके दो फायदे बतलाये गए है- 1. पहला तो यह कि व्यक्ति इसके बाद जिस व्यवसाय में जाता है, उससे कार्य-संतुष्टि अधिक होती है तथा उसका कार्य-निष्पादन अधिक श्रेष्ठ होता है। 2. दूसरा फायदा यह बतलाया गया है कि ऐसे लोग आगे चलकर एक सफल व्यवसायिक होते है और समाज के विकास में वे अच्छा योगदान दे पाते है।

आधुनिक समय में महाविद्यालयों में इस तरह के परामर्श केन्द्र खोले जा रहे है। इनके माध्यम से छात्र/छात्रायें अपने भावी जीवन के संबंध में सही व्यवसाय या कार्य क्षेत्र का चयन कर पाते है। महाविद्यालयों में नैदानिक मनोवैज्ञानिक की गतिविधियॉ एक परामर्शदाता के रूप में होती है। वह छात्रों की रूचियों, अभिक्षमता तथा बुद्धि स्तर का परीक्षण करता है। इसके आधार पर वह उनका सही मार्गदर्शन करता है तथा सही व्यवसाय चुनने में मदद करता है।

1.5.5. बन्दीगृहों एवं सुधारगृहों में -

नैदानिक मनोवैज्ञानिक जेल में जाकर अपराधी व्यवहार के कारणों को ढूँढते है और उन्हें दूर करने के उपाय करते है। वे कैदियों को सामूहिक रूप से देखते है और इनके आधार पर उनके लिये शिक्षा संबंधी तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण के कार्यक्रम आयोजित करते है। बन्दीगृह में नैदानिक मनोवैज्ञानिक की मुख्य गतिविधि कैदियों के जीवन में सुधार करना और नया जीवन देना है। अपराधी व्यवहार अधिकतर प्रतिकूल वातावरण के मिलने से पनपता है तथा अनुकूल वातावरण मिलने से घटता है या नियमित हो जाता है। इसलिये इन अपराधियों को अनुकूल एवं मानवीय वातावरण प्रदान करने की कोशिश की जाती है।

सुधारघरों में भी नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। इन घरों में अपराधियों को विशेषकर किशोर अपराधियों के उस उद्देश्य से रखा जाता है कि उनका उचित मार्गदर्शन करके उन्हें फिर से एक समायोजित जिन्दगी जीने के लायक बनाया जा सके। यहाँ पर भी नैदानिक मनोवैज्ञानिक अपनी विशेष सेवा के माध्यम से महत्त्वपूर्ण कार्य करते है। पुनर्वास के ख्याल से नैदानिक मनोवैज्ञानिक ऐसे अपराधियों का एक केस इतिहास तैयार करते है और उसके आधार पर वे उनकी प्रमुख समस्याओं को पहचानतें है और उपचार करते है। वे अपराधियों को उचित परामर्श देते है ताकि वे भविष्य में सही समायोजन कर सके और सामान्य जीवन बिता सकें।

1.5.6. संगठनों एवं उद्योगों में -

नैदानिक मनोविज्ञानिकों की भूमिका उद्योग तथा अन्य संगठनों में भी आजकल बढ़ती जा रही है। किसी भी उद्योग तथा संगठन की सबसे प्रमुख शक्ति मानव शक्ति होती है। उद्योगों एवं संगठनों में जो कर्मचारी कार्य करते है उनकी अनेक समस्याएँ होती है जिनके कारण कर्मचारियों में समायोजन संबंधी तरह-तरह की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है। धीरे-धीरे इन समस्याओं का कुप्रभाव कर्मचारियों के मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ता है। नैदानिक मनोवैज्ञानिक उद्योगों में परामर्श सेवाएँ करते है। अपने उद्योगों एवं संगठनों के कर्मचारियों के मानसिक स्वास्थ्य की जॉच तथा उन्नत बनाने के लिए नैदानिक मनोवैज्ञानिकों से विशेष परामर्श माँगा जाता है। नैदानिक मनोवैज्ञानिक एक सामान्य परामर्श देते हैं जिनसे उद्योगपतियों तथा व्यवस्थापकों को इन कर्मचारियों के मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने के लिए विशेष सेवा प्रदान करने में मदद मिलती है। कभी-कभी इस सामान्य परामर्श के अलावा नैदानिक मनोवैज्ञानिकों से व्यक्ति विशेष के लिए भी उनकी परामर्श सेवाएँ ली जाती है। नैदानिक मनोवैज्ञानिक उद्योगों में जाकर शिविर भी लगाते है जहाँ कर्मचारियों का एक-एक करके व्यक्तिगत रूप से अलग-अलग उनका मानसिक स्वास्थ्य परीक्षण किया जाता है और उन्हें परामर्श दिया जाता है।

उद्योग में नैदानिक मनोवैज्ञानिक विभिन्न नैदानिक परीक्षणों का उपयोग करके कर्मचारियों की अभिरूचि, बुद्धि एवं अभिक्षमता आदि का मूल्यांकन करते है तथा उसके अनुसार उन्हें कार्यभार देने का उचित सिफारिश व्यवस्थापकों एवं कार्यपालकों को करते है। इससे उनमें समायोजनशीलता की क्षमता बढ़ती है और अन्त में उत्पादन पर काफी अनुकूल प्रभाव पड़ता है। संगठनों तथा उद्योग में नैदानिक मनोवैज्ञानिको को शोध कार्य भी करना पड़ता है जिससे उन्हें कर्मचारियों के भिन्न-भिन्न समस्याओं से संबंधित अनेक तरह के आँकडे मिल जाते है जिनके आधार पर उन्हें शोध करने में आगे काफी मदद मिलती है। अपने शोधकार्य के माध्यम से वे नये-नये नियमों एवं तथ्यों की खोज

कर सकते हैं। बाद में यह तथ्य कर्मचारियों के समायोजन तथा मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का समाधान करने में एक आधार बनते है।

1.5.7. मादक द्रव्य निर्मूलन केन्द्रों में-

आधुनिक समय में मादक द्रव्यों का सेवन लगातार बढता जा रहा है। इनका सेवन समाज के विभिन्न वर्गों के लोगों में बढ रहा है। खासकर युवावर्ग इनकी चपेट में आ रहा है। इस नशे की लत से छुटकारा पाने के लिये मादक द्रव्य निर्मूलन केन्द्र खोले गये है जिनमें उन व्यक्तियों को लाया जाता है जिनमें नशे की लत बहुत गंभीर समस्या हो जाती है। इन केन्द्रों के नैदानिक मनोवैज्ञानिक वैयक्तिक चिकित्सा, सामूहिक चिकित्सा तथा पारिवारिक परामर्शदाता के रूप में गतिविधियॉ करते है।

1.6 नैदानिक मनोविज्ञान तथा अन्य सम्बन्धित क्षेत्र -

नैदानिक मनोविज्ञान मनोविज्ञान की एक प्रयुक्त शाखा है। मनोविज्ञान की इस शाखा का अन्य क्षेत्रों के साथ भी गहरा सम्बन्ध है। नैदानिक मनोविज्ञान का संबंध अन्य क्षेत्रों के साथ भी हैं जैसे-मनोरोगविज्ञान, मनोविश्लेषण, मनोरोगी सामाजिक कार्य, परामर्श नैदानिक मनोविज्ञान, असामान्य मनोविज्ञान आदि। नैदानिक मनोविज्ञान के विषय क्षेत्र से संबंधित कुछ अन्य क्षेत्र भी है जिनकी विषय सामग्री कुछ हद तक इससे मिलती जुलती है इनमें मुख्य है- निर्देशन।

1.6.1 परामर्श मनोविज्ञान के साथ संबंध -

नैदानिक मनोविज्ञान तथा परामर्श मनोविज्ञान दोनों ही एक दूसरे से संबंधित है। नैदानिक मनोविज्ञान के अर्न्तगत भी मानसिक रोगों का निदान एवं उपचार किया जाता है। परामर्श मनोविज्ञान वह क्षेत्र है जिसमें मनोवैज्ञानिक उन व्यक्तियों को सलाह या राय देते है जो प्रतिदिन की समायोजन की समस्याओं से जूझते है। इस सलाह को ही परामर्श कहा जाता है। नैदानिक मनोविज्ञान के अर्न्तगत मानसिक समस्याओं का निदान करके उनका उपचार विभिन्न विधियों द्वारा किया जाता है। परामर्श मनोविज्ञान में उन समस्याओं का समाधान किया जाता है जिनका स्वरूप कम गम्भीर तथा साधारण होता है जैसे- नींद न आना, मन उचाट होना, नाखून काटना आदि।

1.6.2 मनोरोगविज्ञान के साथ संबंध -

नैदानिक मनोविज्ञान मनोविज्ञान की एक शाखा है जबकि मनोरोगविज्ञान मनोविज्ञान की शाखा न होकर चिकित्सा विज्ञान की एक शाखा है परन्तु दोनों का एक ही अध्ययन केन्द्र है। दोनों के अर्न्तगत असामान्य व्यवहार के लक्षणों, कारणों आदि को समझकर उनका उपचार किया जाता है।

मनोरोगविज्ञान में चिकित्सक द्वारा मानसिक रोग का निदान एवं उपचार होता है। जबकि नैदानिक मनोविज्ञान में इन कार्यो के अलावा अनेक तरह के मनोनैदानिक परीक्षणों का निर्माण भी होता है। इसके अर्न्तगत बुद्धि परीक्षण,

अभिक्षमता परीक्षण, अभिरूचि परीक्षण, व्यक्तित्व परीक्षण आदि आते है जिनका उपयोग मानसिक रोगों के उपचार में होता है।

मनोरोग विज्ञान चिकित्सा विज्ञान की एक शाखा है। इसे एम0 बी0 बी0 एस0 करने के बाद किया जाता है। इसे पूरा करने के बाद चिकित्सक को एम0 डी0 की डिग्री दी जाती है। इसमें चिकित्सक गम्भीर मानसिक रोगों का उपचार औषधियों के द्वारा करते है। इसके अलावा ये आघात चिकित्सा, मनोशल्य चिकित्सा का भी प्रयोग करते है। मनोरोग-विज्ञान में गंभीर मानसिक रोग जैसे मनोविदालिता, स्थिर-व्यामोह, द्विध्रुवीय विकृति जैसे रोगों का उपचार अधिक सफलतापूर्वक किया जाता है । नैदानिक मनोविज्ञान में साधारण मानसिक रोग जैसे सामान्यीकृत चिंता विकृति, दुर्भीति, मनोग्रस्ति-बाध्यता स्नायुविकृति आदि का उपचार अधिक किया जाता है। मनोरोगविज्ञान का संबंध केवल मानसिक रोगों के निदान एवं उपचार से होता है परन्तु नैदानिक मनोविज्ञान का संबंध इन मानसिक रोगों के निदान एवं उपचार के अलावा समायोजन के विभिन्न तरह की समस्याओं का अध्ययन कर उनका समाधान करने से होता है।

1.6.3 मनोविश्लेषण के साथ संबंध -

मनोविश्लेषण पद का प्रतिपादन सिगमण्ड फ्रायड द्वारा किया गया। इस पद के निम्नलिखित अर्थ है-1. एक संप्रदाय 2. एक सिद्धान्त 3. मनोचिकित्सा की एक विधि

मनोविश्लेषण नैदानिक मनोविज्ञान के काफी नजदीक है। मनोविश्लेषण एक ऐसी मनोचिकित्सा की विधि है जिसमें रोगी के अचेतन में छिपी तनावयुक्त बातों की पहचान विशेष विधियों से करके उसके संवेगात्मक एवं व्यवहारात्मक विकृतियों का निदान एवं उपचार करने की कोशिश की जाती है। मनोविश्लेषक या जिसे विश्लेषक भी कहा जाता है, एक ऐसा मनश्चिकित्सक होता है जो मानसिक रोगों के निदान एवं उपचार में फ्रायड द्वारा प्रतिपादित विधियों एवं सिद्धान्तों का उपयोग करता है। मनोविश्लेषक को मनोरोगविज्ञान या मनोविज्ञान में उपाधि प्राप्त हो सकती है।

1.6.4 असामान्य मनोविज्ञान के साथ संबंध -

नैदानिक मनोविज्ञान का असामान्य मनोविज्ञान के साथ गहरा संबंध है। असामान्य मनोविज्ञान में असामान्य व्यवहारों को समझने, उनके लक्षण, कारणों एवं उपचार संबंधी नियम बनाये जाते है। नैदानिक मनोविज्ञान में ऐसे नियमों या सिद्धांतों की व्यावहारिक उपयोगिता पर बल डाला जाता है और मानसिक रोगों का निदान तथा उपचार किया जाता है।

1.6.5 मनोरोगी सामाजिक कार्य के साथ संबंध -

इसके अर्न्तगत सामाजिक कार्यकर्ता आते है। ये मानसिक रोगों के उपचार एवं निदान का प्रशिक्षण भी लेते है। इनक कार्यकर्ताओं की रूचि मानसिक रोगों से ग्रस्त व्यक्तियों की मदद करने में होती है। समाज में इन समस्याओ से जो व्यक्ति पीड़ित होते है ये कार्यकर्ता उनके घर जाकर सूचनाऐं एकत्र करते है। इन लोगों के परिवार वालों को वे उचित मार्गदर्शन देते है तथा रोगी को मानसिक चिकित्सालय ले जाने के लिये प्रोत्साहित करते है। ये कार्यकर्ता मानसिक रोगों के उपचार में रोगी, उसके परिवार तथा मानसिक चिकित्सालय के बीच एक कड़ी को कार्य करते है। ये रोगी

की सामाजिक, आर्थिक तथा पारिवारिक समस्याओं की सूचनायें एकत्र करके चिकित्सकों को बताते है ताकि उस रोग का निदान व उपचार सम्भव हो सके।

1.6.6 निर्देशन मनोविज्ञान के साथ संबंध -

नैदानिक मनोविज्ञान का निर्देशन मनोविज्ञान के साथ भी संबंध है। दोनों में केन्द्र बिन्दु व्यक्ति होता है। निर्देशन वह क्रिया है जिसमें किसी समस्याग्रस्त व्यक्ति को सहायता प्रदान की जाती है जिससे वह स्वयं अपने निर्णय ले सके। इसके द्वारा व्यक्ति अपने व्यक्तित्व, क्षमता, योग्यता एवं मानसिक स्तर को समझ पाता है। व्यक्ति के जीवन में अनेक कठिनाइयों के कारण कई संवेगात्मक या भावात्मक समस्यायें उत्पन्न होती है। ये समस्यायें व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करती है और उसमें मानसिक अशान्ति पैदा करती है। निर्देशन द्वारा इन समस्याओं का पता लगाया जाता है जो संवेगात्मक अस्थिरता पैदा करती है और नैदानिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत इन संवेगात्मक तथा मानसिक समस्याओं का निदान तथा उपचार किया जाता है।

1.7. असामान्य मनोविज्ञान एवं नैदानिक मनोविज्ञान में अन्तर

असामान्य मनोविज्ञान एवं नैदानिक मनोविज्ञान दोनों ही मनोविज्ञान की शाखाएँ है जिनका असामान्य मनोविज्ञान में असमायोजित या विकृति व्यवहार का अध्ययन किया जाता है जबकि नैदानिक मनोविज्ञान में इन व्यवहारों का निदान एवं उपचार किया जाता है। इन दोनों विज्ञानों में निम्नलिखित अन्तर है -

1. असामान्य मनोविज्ञान में असामान्य व्यवहारों, उनके कारणों, लक्षणों एवं उपचारों का अध्ययन किया जाता है।नैदानिक मनोविज्ञान में एक रोगी के असामान्यता के कारणों एवं लक्षणों को समझकर उसका उपचार किया जाता है, साथ ही एक सामान्य व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन भी किया जाता है।

2.असामान्य मनोविज्ञान का सामान्य दृष्टिकोण होता है अर्थात् किसी रोग के कारणों, लक्षणों एवं उपचार का सामान्य ढंग से वर्णन करता है। नैदानिक मनोविज्ञान का वैयक्तिक दृष्टिकोण होता है अर्थात् व्यक्ति विशेष के रोग को उसकी पृष्ठभूमि व लक्षण के आधार पर समझकर उसे उपयुक्त मनोचिकित्सा दी जाती है।

3.असामान्य मनोविज्ञान केवल मनोविज्ञान की एक रूप में जाना जाता है। इसका पेशे या व्यवसाय के रूप में विकास नही हुआ है।नैदानिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की शाखा होने के साथ-साथ पेशे या व्यवसाय के रूप में जाना जाता है क्योंकि इसके अन्तर्गत विभिन्न उपचार किये जाते है।

4.असामान्य मनोविज्ञान विभिन्न मानसिक विकारों की सैद्धान्तिक रूप से व्याख्या करता है।नैदानिक मनोविज्ञान विभिन्न मानसिक विकारों की व्यावहारिक रूप से व्याख्या करने के साथ-साथ उनका व्यावहारिक समाधान भी करता है।

5.असामान्य मनोविज्ञान के अन्तर्गत इस क्षेत्र के विशेषज्ञों को कोई प्रशिक्षण नही दिया जाता है।नैदानिक मनोविज्ञान में उपचार विधियों में निपुणता हासिल करने के लिये विशेषज्ञों को प्रशिक्षण दिया जाता है।

6.असामान्य मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक सैद्धान्तिक शाखा है क्योंकि इसके अर्न्तगत केवल असामान्य व्यवहारों को समझने, उनके लक्षण, कारण एवं उपचार संबंधी नियम या सिद्धान्त ही बनाये जाते है। नैदानिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक प्रयुक्त शाखा है क्योंकि इसके अर्न्तगत ऐसे नियमों या सिद्धान्तों की व्यावहारिक उपयोगिताओं पर बल डाला जाता है।

अभ्यास प्रश्न -

1) नैदानिक मनोविज्ञान का सम्बन्ध मानसिक रोगों के वर्णन,.....,.....एवं पूर्वामान से होता है।

2) सिगमण्ड फ्रायड ने नैदानिक मनोविज्ञान के.....पक्ष पर सबसे अधिक बल डाला।

3) प्रथम मनोवैज्ञानिक उपचारगृह.....ने सन्.....में खोला।

4) भारतीय मनोविज्ञान संघ की स्थापना सन् .....में हुई।

5) नैदानिक मनोवैज्ञानिक व्यक्ति की अभिक्षमता,....., एवं .....का मापन करती है।

6) असामान्य मनोविज्ञान.....व्यवहारों का अध्ययन करता है।

1.8 सार संक्षेप -

नैदानिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक ऐसी शाखा है, जिसका सम्बन्ध मानसिक रोगों के वर्णन, वर्गीकरण, निदान एवं पूर्वानुमान से होता है।

i) इसमें सांवेगिक एवं व्यवहारात्मक समस्याओं के निदान एवं उपचार पर बल डाला जाता है।

ii) लाइटर विटमर ने 1816 में पेन्सिलवानिया विश्वविद्यालय में पहला मनोवैज्ञानिक उपचार गृह खोला और इस शाखा को नैदानिक मनोविज्ञान का नाम दिया।

iii) भारत में प्राचीन काल में भी नैदानिक मनोविज्ञान का अस्तित्व था। अथर्ववेद में मानसिक रोगों एवं उनके उपचार को बताया गया है।

iv) 1915 में भारतवर्ष में नैदानिक मनोविज्ञान का प्रारम्भ हुआ।

v) नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की विभिन्न क्षेत्रों में जैसे-मानसिक चिकित्सालयों, विद्यालयों, सुधारगृहों, व्यवसायिक केन्द्रों आदि में विभिन्न गतिविधियाँ रहती है।

vi) नैदानिक मनोविज्ञान का संबंध मनोरोग विज्ञान, मनोविश्लेषण, परामर्श मनोविज्ञान, असामान्य मनोविज्ञान आदि क्षेत्रों के साथ भी है। उन क्षेत्रों की विषय सामग्री तथा कार्यविधि नैदानिक मनोविज्ञान के साथ काफी हद तक संबंधित है।

vii) नैदानिक मनोवैज्ञानिक व्यक्ति विशेष की समस्याओं को समझकर उनका निदान व उपचार करते है साथ ही निर्देशन का कार्य भी करते है।

viii) नैदानिक मनोविज्ञान तथा असामान्य मनोविज्ञान दोनों ही मनोविज्ञान की शाखाएं है परन्तु फिर भी दोनों में सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक अंतर होते है।

1.9 शब्दावली -

1. निदान - किसी रोग के विशेष लक्षणों की पूरी जानकारी प्राप्त करना और उसके जैविक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक कारणों का पता लगाना।

2.मनश्चिकित्सा - ऐसी मनोवैज्ञानिक विधियॉं जिनके द्वारा मानसिक रोगों का निदान तथा उपचार किया जाता है

1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर -

1. वर्गीकरण, निदान	2. व्यक्तित्व गतिकी
3. लाइट विटमर, 1896	4. 1984
5. अभिरूचि एवं समायोजनशीलता	6. कुसमायोजित

1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान- अरूण कुमार सिंह-मोतीलाल बनारसीदास

2. आधुनिक नैदानिक मनोविज्ञान- डा0एच0के0 कपिल-हर प्रसाद भार्गव

1.12 निबन्धात्मक प्रश्न -

1. नैदानिक मनोविज्ञान को परिभाषित करिये तथा उसके विकास पर प्रकाश डालिये।

2. नैदानिक मनोविज्ञान की प्रकृति समझाइये तथा इसके अन्य सम्बन्धित क्षेत्रों का वर्णन करिये।

3. विभिन्न क्षेत्रों में नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की गतिविधियों पर सोदाहरण प्रकाश डालिये।

4. नैदानिक मनोविज्ञान भविष्य में कहाँ तक मनोविज्ञान की एक उपयोगी शाखा सिद्ध होगी, कारण सहित उत्तर बताइये।

5. नैदानिक मनोविज्ञान क्या है? असामान्य मनोविज्ञान एवं नैदानिक मनोविज्ञान में अन्तर स्पष्ट करिये।

इकाई 2. व्यावसायिक प्रशिक्षण, विनियमन एवं नैतिक नियम (Professional Training, Regulation and Professional Ethics)

इकाई संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 वृत्तिक या व्यावसायिक प्रशिक्षण
  2.3.1 वृत्तिक प्रशिक्षण का अर्थ
  2.3.2 वृत्तिक प्रशिक्षण का इतिहास
  2.3.3 वृत्तिक प्रशिक्षण के सिद्धान्त
  2.3.4 वृत्तिक प्रशिक्षण के वैकल्पिक माँडल
2.4 वृत्तिक या व्यावसायिक नियमन
  2.4.1 प्रमाणन
  2.4.2 अनुज्ञप्ति
  2.4.3 ABEPP/ ABPP
2.5 वृत्तिक या व्यावसायिक नीतिशास्त्र
  2.5.1 वृत्तिक या व्यावसायिक नीतिशास्त्र के नियम
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

नैदानिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक ऐसी प्रयुक्त और लोकप्रिय शाखा है जिसमें सबसे ज्यादा मनोवैज्ञानिक कार्यरत है। इसका विकास भी शीघ्रता के साथ हुआ है और आज नैदानिक मनोविज्ञान एक प्रमुख व्यवसाय के रूप में पूरे संसार में काम कर रहा है। इसमें करीब 83% नैदानिक मनोवैज्ञानिक मनश्चिकित्सा के क्षेत्र में, 73.6% निदान एवं मूल्यांकन में, 61% शिक्षण में, 52.4% शोध में, तथा 67.4% परामर्श के क्षेत्र में कार्य कर रहें है। इस प्रकार आज के युग में नैदानिक मनोविज्ञान एक व्यवसाय या पेशे के रूप में अपना स्थान बना चुका है परन्तु फिर भी इस पेशे से सम्बन्धित कई समस्यायें भी है।

प्रस्तुत इकाई में नैदानिक मनोविज्ञान की एक पेशे या व्यवसाय से सम्बन्धित जो समस्यायें है, उनके बारे में अध्ययन करके जान सकेंगें|

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित है-

नैदानिक मनोविज्ञान की एक पेशे या व्यवसाय से सम्बन्धित प्रमुख समस्याओं को जान सके।

2.3 वृत्तिक प्रशिक्षण, वृत्तिक नियमन एवं वृत्तिक नीतिशास्त्र -

आधुनिक समय में नैदानिक मनोविज्ञान एक व्यवसाय/पेशा के रूप में काफी अधिक विकसित हुआ है। ये मनोविज्ञान की एक प्रमुख लोकप्रिय शाखा है। जब मनोविज्ञान को पेशे के रूप में सफलता मिलने लगी तो अधिक-से-अधिक मनोवैज्ञानिकों ने इसमें रूचि लेना प्रारंभ कर दिया। संसार के अन्य देशों में भी नैदानिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में सबसे अधिक संख्या में मनोवैज्ञानिक कार्यरत है। नैदानिक मनोवैज्ञानिक अपना चिकित्सा संबंधी कार्य किसी उपचारगृह या मानसिक चिकित्सालयों में करते है।

इस समय अमेरिका में लगभग 120000 मनोवैज्ञानिक है जिसमें लगभग 80000 नैदानिक मनोवैज्ञानिक है। आधुनिक समय में नैदानिक मनोविज्ञान एक प्रमुख व्यवसाय के रूप में उभरकर सामने आया है। आज जब नैदानिक मनोविज्ञान लगभग पूरे संसार मे एक पेशे या व्यवसाय के रूप में स्थान पा रहा है, तो यह आवश्यक है कि उसके इस पहलू से संबंधित कुछ समस्याएँ भी होंगी। इन समस्याओं को निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित किया गया है-

(1) वृत्तिक या व्यावसायिक प्रशिक्षण

(2) वृत्तिक या व्यावसायिक या पेशावर नियमन

(3) वृत्तिक या व्यावसायिक या पेशावर नीतिशास्त्र

2.3.1 वृत्तिक या व्यावसायिक प्रशिक्षण का अर्थ -

व्यावसायिक प्रशिक्षण का सामान्य अर्थ व्यवसाय की आवश्यकताओं, समस्याओं तथा कार्यविधियों से व्यावसायिक को अवगत कराना होता है। नैदानिक मनोविज्ञान में व्यावसायिक प्रशिक्षण से तात्पर्य नैदानिक मनोवैज्ञानिक को नैदानिक मनोविज्ञान से संबंधित क्षेत्रों का इस तरह से ज्ञान देना है ताकि वे रोगी की आवश्यकताओं, समस्याओं, उनके उपचार की प्रविधियों एवं शोध प्रविधियों के बारे में भली-भाँति परिचित हो जाय। एक प्रशिक्षित नैदानिक मनोवैज्ञानिक रोगी की समस्याओं की पहचान, वर्गीकरण तथा उपचार वैज्ञानिक ढंग से करता है। इस तरह से नैदानिक मनोविज्ञान में व्यवसायिक प्रशिक्षण के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

1. प्रशिक्षु नैदानिक मनोवैज्ञानिक को नैदानिक समस्याओं से परिचित कराना। 2. नैदानिक समस्याओं के वर्गीकरण को समझना। 3. निदानसूचक विधियों के बारे में ज्ञान देना। 4. विभिन्न शोध विधियों के बारे में ज्ञान देना। 5. व्यक्तित्व सिद्धान्तो के बारे में ज्ञान देना। 6. चिकित्सा की परिस्थितियों से परिचित कराना।

2.3.2 वृत्तिक प्रशिक्षण का इतिहास -

20 वीं शताब्दी के प्रथम 40 वर्षों में इस क्षेत्र में नैदानिक मनोवैज्ञानिकों को दिये जाने वाले उच्चतर प्रशिक्षण की प्रगति बहुत ही धीमी थी। 1930 तथा 1940 वाले दशक में अमेरिकन मनोवैज्ञानिक संघ ने इस तरह के प्रशिक्षण को औपचारिक बनाने का प्रयास किया परन्तु यह प्रयास अधिक सफल नहीं हो पाया।

डेविड शैको ने नैदानिक प्रशिक्षण के विकास को ठीक ढंग से सफल करने में सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया, जो बहुत दिनों तक मासासुटेस के वॉरसेस्टर स्टेट अस्पताल में मुख्य मनोवैज्ञानिक के रूप में कार्य करते रहे और बाद में नेशनल इन्स्टीच्यूट ऑफ मेन्टल हेल्थ में भी बने रहे। शैको का मत था कि नैदानिक मनोविज्ञान में चार साल का डाक्टरीय स्तर का प्रशिक्षण का कार्यक्रम होना चाहिए जिसमें तीसरे साल छात्र-छात्राओं इन्टर्नशीप का भी प्रावधान होना चाहिए। शैको के विचार के प्रति कार्ल रोजर्स जो उस समय APA के अध्यक्ष थे, काफी प्रभावित हुए और वे नैदानिक मनोविज्ञान में प्रशिक्षण को तय करने के लिए कमेटी का संगठन किया और शैको को ही उसका अध्यक्ष बना दिया गया। कमेटी ने एक रिपोर्ट तैयार की जिसका शीर्षक था 'रिकोमेन्डेट ग्रेजुएट ट्रेनिंग इन क्लिनिकल साइकोलॉजी' (Recommended Graduate Training in Clinical Psychology)।

2.3.3 वृत्तिक/व्यावसायिक प्रशिक्षण के सिद्धान्त-

वृत्तिक/व्यावसायिक प्रशिक्षण के सिद्धान्त निम्नलिखित है-

i) एक नैदानिक मनोवैज्ञानिक को पहले एक मनोवैज्ञानिक के रूप में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

ii) नैदानिक प्रशिक्षण उतना ही सख्त होना चाहिए जितना कि मनोविज्ञान के अन्य क्षेत्रों का प्रशिक्षण सख्त होता है।

iii) नैदानिक मनोवैज्ञानिक की तैयारी विस्तृत होनी चाहिए और वह मूल्यांकन, शोध एवं चिकित्सा की ओर निर्देशित होना चाहिए।

iv) नैदानिक प्रशिक्षण के मुख्य विषय-वस्तु में कम से कम छह क्षेत्रों का समावेश आवश्यक है-सामान्य मनोविज्ञान, व्यवहार का मनोगतिकी, निदानसूचक विधियाँ, शोध विधियाँ, चिकित्सा एवं संबंधित शास्त्र।

v) प्रशिक्षण कार्यक्रम ऐसा होना चाहिए कि उसमें नियमों या सिद्धान्तों से संबंधित सिर्फ मौलिक पाठयक्रम ही सम्मिलित हो और विशिष्ट विधियों के पाठ्यक्रमों की अधिक संख्या न हो।

vi) प्रशिक्षण कार्यक्रम ऐसा होना चाहिए कि उसमें सिद्धान्त तथा अभ्यास दोनों ही सम्मिलित हों।

vii) पूर्ण प्रशिक्षण कार्यक्रम के दौरान प्रशिक्षु नैदानिक मनोवैज्ञानिक सभी तरह के नैदानिक सामग्रियों से भली-भाँति परिचित हो।

viii) प्रशिक्षण के दौरान कुछ सामान्य व्यक्तियों से भी सम्पर्क स्थापित करने की कोशिश करनी चाहिए जिन्हें नैदानिक सहयोग की कभी भी आवश्यकता नहीं पड़ी हो।

ix) प्रशिक्षण कार्यक्रम का स्वरूप कुछ ऐसा होना चाहिए कि उससे प्रशिक्षु के व्यक्तित्व गुणों में बढोतरी एवं परिपक्वता आये।

x) प्रशिक्षण कार्यक्रम ऐसा होना चाहिए कि उससे रोगियों एवं क्लायंट के प्रति उत्तरदायित्व का भाव उत्पन्न हो सके।

xi) संबंधित शास्त्रों के प्रतिनिधिनों को नैदानिक मनोविज्ञान के प्रशिक्षुओं को पढ़ाना चाहिए, जहाँ तक प्रशिक्षु को इस संबंधित शास्त्रों के छात्रों के साथ एक सम्मिलित अध्ययन करवाना चाहिए।

xii) प्रशिक्षु मनोवैज्ञानिकों में प्रशिक्षण इस ढंग से क्षमता उत्पन्न कर सके कि वे समाज एवं रोगी या क्लायंट के प्रति निर्धारित उत्तरदायित्व से आगे भी कुछ सोच सके।

शैको रिपोर्ट में उक्त लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए इस बात पर भी बल डाला गया है कि उसके लिए प्रति वर्ष एक पाठ्यक्रम तैयार किया जाना चाहिए। शैको रिपोर्ट की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसमें वैज्ञानिक एवं व्यावसायिक तैयारी का विशेष मिश्रण देखने को मिलता है। शायद यही कारण है कि इस रिपोर्ट पर आधारित कार्यक्रम को वैज्ञानिक पेशावर मॉडल कहा जाता है।

नैदानिक मनोविज्ञान का प्रथम प्रमुख प्रशिक्षण सम्मेलन 1949 में हुआ था, जिसमें शैको रिपोर्ट को औपचारिक रूप से मान्यता दी गयी। इस सम्मेलन में पारित सुझाव निम्नलिखित थे-

1.नैदानिक मनोवैज्ञानिकों को शोध एवं व्यवसायिक अभ्यास में दक्ष होना आवश्यक है।

2. किसी विश्वविद्यालय से मनोविज्ञान में पी0एच0डी0 की उपाधि प्राप्त होनी चाहिए।

3.नैदानिक प्रशिक्षण को पूरा होने के लिए नैदानिक मनोवैज्ञानिकों को एक-साल की इन्टर्नशीप भी आवश्यक है।

इस सम्मेलन के बाद शैको की योजना को बोलडर मॉडल के नाम से जाना गया। नैदानिक मनोविज्ञान के प्रशिक्षण के क्षेत्र में बोलडर मॉडल एक प्रभावी मॉडल रहा, फिर भी 1949 से ही इसके प्रति कुछ असंतोष जाहिर किया जाने लगा। नैदानिक प्रशिक्षण के ख्याल से तीन उत्तर बोलडर हुए है जिनसे काफी महत्त्वपूर्ण दिशा निर्देश मिले है। ये तीनो इस प्रकार है-

i) स्टैनफोर्ड सम्मेलन -यह सम्मेलन स्टैनफोर्ड विश्व-विद्यालय में 1955 में हुआ। यद्यपि इस सम्मेलन ने नैदानिक प्रशिक्षण के लिए कोई नयी दिशा या निर्देश पारित नहीं किया गया फिर भी इसमें नैदानिक मनोवैज्ञानिकों को उन व्यवसायिक भूमिकाओं के लिए तैयार रहने के लिए कहा गया जो सामुदायिक मानसिक स्वास्थ्य आन्दोलन द्वारा नैदानिक मनोविज्ञान पर पड़ने के फलस्वरूप उत्पन्न हो सकते है।

ii) शिकागो सम्मेलन - यह सम्मेलन शिकागो में 1965 में हुआ। इस सम्मेलन में नैदानिक प्रशिक्षण के वैज्ञानिक-व्यावसायिक मॉडल का विकल्प ढूँढने पर बल डाला गया। इसमें यह प्रस्ताव पारित किया गया कि वैज्ञानिक पेशावर मॉडल को जारी रखते हुए नैदानिक प्रशिक्षण का पूर्णतः एक व्यावसायिक मॉडल को तैयार किया जाना चाहिए। इस सम्मेलन में नैदानिक प्रशिक्षण के लिए कुछ विशेष तरह की उप-डाक्टरीय उपाधियाँ तथा Psy.D (Doctor of Psychology) की उपाधि आदि देने की भी सिफारिश की गयी। इस सम्मेलन के बाद इसमें जो सुझाव पारित हुए उससे नैदानिक प्रशिक्षण का पेशावर मॉडल (Professional training modal) तथा उप-डाक्टरीय कार्यक्रमों की लोकप्रियता बढ़ गयी।

1973 में भेल में मनोविज्ञान में व्यावसायिक प्रशिक्षण के पैटर्न एवं स्तर को निर्धारित करने के लिए एक राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में 150 प्रस्ताव पारित किये गये जो नये-नये पेशावर प्रशिक्षण मॉडल, नैदानिक प्रशिक्षण के उन्नत स्तर तथा पेशावर प्रशिक्षण की विशेषताओं से संबंधित थे। नैदानिक प्रशिक्षण से सम्बन्धित छठा राष्ट्रीय सम्मेलन 1987 में साल्ट लेक शहर में सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में उन परिवर्तनों का मूल्यांकन किया गया जो हाल के वर्षो में व्यावसायिक मनोवैज्ञानिकों के प्रशिक्षण में किये गये। इसमें प्रशिक्षण से संबंधित कुछ समस्याओं पर वैज्ञानिको तथा पेशावरों के बीच होने वाले टकराव को भी रोकने से संबंधित सुझाव पारित किये गए।

2.3.4 नैदानिक प्रशिक्षण के वैकल्पिक मॉडल

i). साई0डी0 कार्यक्रम (Psy.D.Programme) - साई0डी0 कार्यक्रम का आरम्भ इलिनोईस विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान विभाग द्वारा 1968 में प्रारंभ किया गया था हालॉकि बाद में इस कार्यक्रम को बंद कर दिया गया। इस कार्यक्रम में प्रशिक्षुओं को मनोवैज्ञानिक सेवा करने में आवश्यक कौशलों को सीखलाया जाता है। इसमे न तो शोध निबंध लिखने की जरूरत होती है और नही शोध-प्रबंध की परन्तु एक लिखित व्यावसायिक गुणवत्ता पूर्ण डाक्टरीय-स्तर की रिपोर्ट तैयार करने की जरूरत होती है। गोल्डेनवर्ग (1973) ने इस कार्यक्रम पर कई तरह की आपत्ति उठायी है जिसमें प्रमुख हैः-

a) इस कार्यक्रम को पी0एच0डी0 कार्यक्रम के समानान्तर रखा है इसलिए इससे लोगों में संभ्राति फैलेगी। नैदानिक अभ्यास भी एक व्यावसायी के रूप में वैज्ञानिक नहीं रह पायेगा।

b) पी0एच0डी0 कार्यक्रम तथा साई0डी0 कार्यक्रम के प्रशिक्षुओ का तुलनात्मक अध्ययन किया गया और उनके निष्पादन को देखा गया। इन दोनो प्रशिक्षुओं के निष्पादन में कोई अन्तर नहीं था। इस कारण इस कार्यक्रम को पी0एच0डी0 कार्यक्रम से अधिक श्रेष्ठ नहीं माना जा सकता है।

ii) व्यावसायिक स्कूल - नैदानिक प्रशिक्षण के लिए कुछ व्यावसायिक स्कूल भी खोले गए है जो विश्वविद्यालय विभागों के नियंत्रण में न होकर स्वतंत्र रूप से प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाते है। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य विश्वविद्यालय के शैक्षिक प्रतिबंध से नैदानिक प्रशिक्षण को मुक्त करना है। इसमें सक्रिय एवं अभ्यासरत प्रशिक्षुओं को एक विशेष भूमिका मॉडल प्रदान करना है। अमेरिका में ऐसे स्कूलों की संख्या लगभग 50 से ऊपर

है जिसमें अधिकतर स्कूल द्वारा नैदानिक प्रशिक्षण पूरा करने पर साई0डी0 (Psy.D) की उपाधि से सम्मिलित किया जाता है। इन व्यावसायिक स्कूलों द्वारा नैदानिक प्रशिक्षण के स्वरूप में क्रांन्तिकारी परिवर्तन लाया गया है एवं 21 वीं शताब्दी में ऐसे स्कूलों का प्रभाव और भी तीव्र एवं प्रखर होने की उम्मीद है।

2.4 वृत्तिक या व्यावसायिक नियमन -

वृत्तिक या व्यावसायिक नियम से तात्पर्य कुछ ऐसे प्रावधान हैं जिनके माध्यम से नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की सामर्थ्यता के कुछ स्पष्ट मानक विकसित किये जाते है और आम जनता को गुमराह होने से बचाया जाता है। दूसरे शब्दों में, यहाँ उन मानकों का निर्धारण किया जाता है जो तय कर पाते है कि नैदानिक मनोवैज्ञानिक में न्यूनतम कौशल है या नहीं तथा वे अपने पेशे को संचालित करने के लिए न्यूनतम योग्यता रखते है या नही। व्यावसायिक नियमन का मुख्य उद्देश्य आम जनता को अप्रशिक्षित मनोवैज्ञानिकों द्वारा दिये जा रहे रहे अनुपयुक्त नैदानिक सेवा से बचाना है। पेशावर नियमनों में निम्नांकित तरह के प्रावधान मनोवैज्ञानिकों द्वारा किए गये है-

2.4.1 प्रमाणन -

प्रमाणन एक ऐसे नियमन है इस बात पर बल डालता है कि लोग अपने आप को 'मनोवैज्ञानिक' या 'प्रमाणित मनोवैज्ञानिक' तब तक नहीं कह सकते है जब तक कि उन्हें परीक्षकों के बोर्ड द्वारा प्रभावित नहीं घोषित कर दिया जाता है। प्रमाणन की प्रक्रिया में प्रायः परीक्षा ली जाती है परन्तु कभी-कभी उम्मीदवार के प्रशिक्षण एवं व्यवसायिक अनुभूतियों के आधार पर ही प्रमाण दे दिया जाता है। इस तरह से प्रमाणन एक ऐसा प्रयास है जिसके माध्यम से समीक्षा के आधार पर ही प्रमाणन प्रदान कर दिया जाता है। इस तरह से प्रमाणन एक ऐसा प्रयास है जिसके माध्यम से 'मनोवैज्ञानिक' शीर्षक के उपयोग को सीमित करके आम जनता को किसी तरह के होने वाले दुष्परिणाम से बचाया जाता है।

2.4.2 अनुज्ञप्ति -

अनुज्ञप्ति एक अधिक मजबूत नियमन माना जाता है। अनुज्ञप्ति में न केवल 'मनोवैज्ञानिक' के शीर्षक एवं प्रशिक्षण के स्वरूप का उल्लेख होता है बल्कि इसमें उस बात का उल्लेख होता है कि संबंधित मनोवैज्ञानिक जनता से फीस लेने के बदले में किस तरह की सेवा प्रदान करने के योग्य है जो प्रशिंक्षित नैदानिक मनोवैज्ञानिक अनुज्ञप्ति चाहते है उनके विशेष आवेदन पर उनसे उपयुक्त फीस ली जाती है तथा एक विशेष लिखित परीक्षा उन्हें उत्तीर्ण करनी होती है। इस परीक्षा में सफलता के आधार पर मनोवैज्ञानिकों का एक बोर्ड उन्हें अनुज्ञप्ति देता है। अनुज्ञप्ति की आलोचना कुछ बिन्दुओं पर की गयी है जो इस प्रकार है-

a) आलोचकों द्वारा यह कहा जाता है कि कोई पक्का सबूत नही मिलता है अनुज्ञप्ति (लाइसेंस) जारी करने के लिए जो लिखित परीक्षा संचालित की जाती है, उसके द्वारा मनोवैज्ञानिकों की व्यवसायिक क्षमताओं की सही-सही जाँच होती है।

b) कुछ आलोचको का मत है कि अनुज्ञप्ति की प्रक्रिया यदि जारी रहती है तो उससे जनता को हानि अधिक और लाभ कम होगा क्योंकि इस प्रक्रिया का स्वरूप कुछ ऐसा है कि इससे नैदानिक मनोवैज्ञानिकों के बीच प्रतियोगिता मे कमी आयेगी तथा मनोवैज्ञानिकों की सेवाओं की कीमत बढ़ेगी।

2.4.3 ABEPP/ABPP -

अमेरिकी संघ सरकार ने 1947 में वृत्तिक नियमन को अधिक मजबूत एवं सुस्पष्ट करने के ख्याल से एक अलग कॉरपोरेशन की स्थापना किया जिसे 'अमेरीकन बोर्ड ऑफ इक्जामिनर्स एन प्रोफेसनल साइकोलॉजी' कहा गया। 1968 में इसके लम्बे नाम को थोडा छोटा कर (ABPP) अमेरिकन बोर्ड ऑफ प्रोफेशनल साइकोलाजी कहा गया। ABPP द्वारा व्यावसायिक या वृत्तिक प्रवीणता का प्रमाण-पत्र नैदानिक मनोविज्ञान, परामर्श मनोविज्ञान, औद्योगिक एवं संगठनात्मक मनोविज्ञान तथा स्कूल मनोविज्ञान में दिया जाता है। इसमें एक मौखिक परीक्षा ली जाती है तथा उम्मीदवार को कोई एक नैदानिक केस को प्रस्तुत करना होता है। परीक्षा से पहले उनके द्वारा नैदानिक केसेज के किये गये उपचारों के रिकार्ड का विश्लेषण किया जाता है। ABPP परीक्षा में शामिल होने के लिए यह आवश्यक है कि उम्मीदवार को उसके पहले कम-से कम पाँच साल का उत्तरडाक्टरीय अनुभूति प्राप्त हो। ABPP परीक्षा के लिए जो अपेक्षाएँ हैं, वे प्रमाणन तथा अनुज्ञप्ति की तुलना में अधिक सख्त है।

2.5 वृत्तिक या व्यावसायिक नीतिशास्त्र -

जब नैदानिक मनोवैज्ञानिक अपने वृत्तिक या व्यावसायिक कार्य को करते है तो उनके सामने अनेक समस्यायें होती है, जैसे

1. वे किन-किन नियमों या सिद्धान्तों का पालन करे।

2. किस तरह से वे अनैतिक व अनुचित व्यवहार से निबटे आदि।

वृत्तिक या व्यावसायिक क्रियाओं के निर्धारण करने के लिए कुछ नैतिक मानक बनाये गये है तथा इन समस्याओं से निबटने के लिए नैदानिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा व्यावसायिक या वृत्तिक नीतियों की एक नियमावली तैयार की गयी है जो कुछ खास-खास व्यावसायिक क्रिया करने के लिए प्रोत्साहित करता है। मनोविज्ञान में पहली ऐसी नीतियों की नियमावली का निर्माण 1953 में APA द्वारा किया गया। इस नियमावली का वर्तमान रूपान्तर को APA द्वारा 1981 में विकसित किया गया जिसे पुनः 1990 में APA द्वारा संशोधित भी किया गया। 1990 के रूपान्तरित नियमावली में एक प्रस्तावना है तथा 10 नियम है जिनके द्वारा सभी प्रमुख मनोवैज्ञानिक क्रियाओं पर प्रकाश डाला गया है अर्थात् इन नियमों द्वारा शोध, शैक्षिक मानक चिकित्सा, परीक्षण-कार्य तथा निदान आदि सभी क्रियाओं का नियंत्रण होता है। ये 10 नियम निम्नलिखित है-

2.5.1 वृत्तिक या व्यावसायिक नीतिशास्त्र के नियम -

i) **उत्तरदायित्व का नियम -**मनोवैज्ञानिक द्वारा जब उनकी सेवाएँ जनता को दी जाती है, तो वे अपने पेशे का उच्चतम मानक बनाये रखते है। उनके द्वारा किये जाने वाले कार्यो के परिणामों का उत्तरदायित्व वे अपने कंधे पर उठाते है। उनका हर संभव प्रयास यही रहता है कि उनकी सेवा का उचित उपयोग हो सके।

ii) **सामर्थ्यता का नियम** -यह नियम इस बात पर बल डालता है कि वे अपने प्रशिक्षण एवं अनुभव के आधार पर जनता को उचित सेवा प्रदान करते है और उन्हीं उचित प्रविधियों का प्रयोग करते है।

iii) **नैतिक एवं कानून मानकों का नियम -**यह नियम इस बात पर बल डालता है कि मनोवैज्ञानिक जब आम जनता को सेवा प्रदान करते है तो वे अपने समान के मानकों एवं उसके नैतिक एवं कानूनी पक्षों का पूरा ध्यान रखते है और उसी तरह से व्यवहार करते है जो मनोवैज्ञानिकों, सहकर्मियों द्वारा जो वृत्तिक कार्य किये जाते है वे उनका अपने व्यवहारों के पड़ने वाले प्रभावों के प्रति भी सचेत रहते है।

iv) **सार्वजनिक कथन का नियम -** इसके अन्तर्गत मनोवैज्ञानिक अपने पेशे, योग्यता, कार्य तथा संगठन (जहाँ वे सेवाएँ प्रदान करते है) के बारे में सही, वस्तुनिष्ठ एवं वैज्ञानिक ढंग से सार्वजनिक कथन देते है।

v) **गोपनीयता का नियम -**नैदानिक मनोवैज्ञानिक जब समस्याग्रस्त व्यक्ति या रोगी का उपचार करते है, उनसे कुछ महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त करते है जिनकी गोपनीयता वे बनाकर रखते है। रोगी की ऐसी सूचनाओं को तभी अन्य व्यक्तियों को देते है जब ऐसे करने की अनुमति उन्हें रोगी या उनके कानूनी अभिभावक से प्राप्त हो जाती है।

vi) **उपभोक्ता के कल्याण से संबद्ध नियम -**मनोवैज्ञानिक उन लोगों के कल्याण एवं अखंडता की रक्षा करते है जिनके साथ वे कार्य करते हैं। वे अपने परीक्षण की प्रविधियों, उपचार एवं मूल्यांकन की प्रविधियों के बारे में पूरा-पूरा ज्ञान उपभोक्ताओं को या उनकी सेवा करने वाले व्यक्तियों को दे देते है।

vii) **व्यावसायिक या वृत्तिक संबंधो का नियम** -मनोवैज्ञानिक अन्य मनोवैज्ञानिकों तथा दूसरे पेशे के लोगों के साथ अपनी आवश्यकताओं, विशेष सामर्थ्यता आदि के बारे में बातचीत करते है तथा उनके साथ मधुर सम्बन्ध बनाये रखते है। वे उन संस्थाओं के दायित्व एवं विशेषाधिकार को सम्मान देते है जिनके साथ उनके अन्य सहकर्मी संबंधित होते है।

viii) **मूल्यांकन प्रविधि का नियम -** मनोवैज्ञानिक अपने कार्यो के लिए विभिन्न तरह के मूल्यांकन प्रविधियों का प्रयोग करते है। वे इन प्रविधियों के विकास, प्रकाशन एवं उपयोग पर सख्त नजर रखते है ताकि उसका दुरूपयोग न हो सके। इसके साथ ही वे ये भी करते है कि अन्य पेशे के लोग यदि इन मूल्यांकन प्रविधियों का उपयोग करते है, तो वे उसका दुरूपयोग न करें।

ix) मानव प्रयोज्यों के साथ शोध से संबंध नियम - नैदानिक मनोवैज्ञानिक जब कोई भी शोध कार्य करते है तो मानव कल्याण और उसके क्षेत्र के लाभ के लिये उनके शोध में जो प्रयोज्य भाग लेते है, वे उनके कल्याण एवं मान-मर्यादा का पूरा ख्याल रखते हैं और अपने व्यावसायिक मानदंडो के तहत ही उनके साथ व्यवहार करते हैं और उनका मार्गदर्शन करते है।

x) पशुओं के उपयोग एवं देखभाल से संबंधित नियम - मनोवैज्ञानिक को यदि पशुओं पर अपना शोध करना होता है, तो वे उसे भी मनुष्य के समान दृष्टिकोण से देखते है तथा इस बात की पूरी कोशिश करते है कि उसे किसी प्रकार का कोई कष्ट न हो।

वृत्तिक या व्यावसायिक नीतिशास्त्र मनोवैज्ञानिकों को एक खास ढंग से रोगियों या क्लांइटों को एक साथ व्यवहार करने की अनुमति देता है। नीतिशास्त्र में ये व्याख्या की गयी कि उसे क्या करना चाहिए तथा क्या नहीं करना चाहिए। इससे मनोविज्ञान का विशेषकर नैदानिक मनोविज्ञान की पेशावर लोकप्रियता अधिक बढ़ती है।

अभ्यास प्रश्न

1. नैदानिक मनोविज्ञान की एक पेशे या व्यवसाय के रूप में मुख्य समस्यायें....., ...तथा वृत्तिक नीतिशास्त्र है।

2. शैको रिपोर्ट में नैदानिक प्रशिक्षण के .....सिद्धातों को बताया।

3. ABPP का पूरा नाम.....

4. वृत्तिक नियमन से तात्पर्य नैदानिक मनोवैज्ञानिक के .....से है।

5. वृत्तिक नीतिशास्त्र में अपने व्यवसाय या पेशे के लिए.....का निर्धारण किया जाता है|

2.5 सारांश

i) वृत्तिक या व्यावसायिक प्रशिक्षण के द्वारा नैदानिक मनोवैज्ञानिकों को उस पेशे की आवश्यकताओं, समस्याओं तथा कार्य विधि के बारे में बताया जाता है।

ii) वृत्तिक या व्यावसायिक प्रशिक्षण के अर्न्तगत उत्तम प्रशिक्षण से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार किया जाता है।

iii) वृत्तिक या व्यावसायिक नियमन से तात्पर्य है कि नैदानिक मनोवैज्ञानिक में न्यूनतम कौशल है या नहीं। नियमन का मुख्य उद्देश्य जनता को अप्रशिक्षित मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी जा रही अनुप्रयुक्त सेवा से बचाना है।

iv) वृत्तिक या व्यावसायिक नीतिशास्त्र में कुछ नैतिक मानकों को रखा गया है तथा वृत्तिक समस्याओं से निबटने के लिये नियमावली तैयार की गई है।

2.6 शब्दावली -

i) प्रशिक्षु -ऐसे व्यक्ति जिन्हें ट्रेनिंग दी जाती है।

ii) इन्टर्नशिप - प्रशिक्षण पूरा होने से पूर्व एक निश्चित समय तक उस क्षेत्र की दी जाने वाली जानकारियाँ।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. वृत्तिक प्रशिक्षण, वैत्तिक नियमन 2. 13

3. American Board of Professional Psychology 4. न्यूनतम कौशल

5. नैतिक मानको

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. उच्चरत नैदानिक मनोविज्ञान - अरूण कुमार सिंह - मोतीलाल बनारसी दास

2. आधुनिक नैदानिक मनोविज्ञान - डा0एच0के0कपिल - हर प्रसाद भार्गव

2.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न -

1. एक नैदानिक मनोवैज्ञानिक के लिये प्रशिक्षण का क्या अर्थ होता है? प्रशिक्षण के विकास एवं सिद्धान्त पर प्रकाश डालिये।

2. नैदानिक मनोविज्ञान में कौन-कौन सी मुख्य वृत्तिक या व्यावसायिक समस्याये है, इनका विस्तृत वर्णन करिये।

3. नैदानिक मनोविज्ञान में वृत्तिक प्रशिक्षण एवं वृत्तिक नियमन से सम्बन्धित प्रमुख समस्याओं का उल्लेख करिये।

4. नैदानिक मनोविज्ञान में वृत्तिक नीतिशास्त्र का क्या अर्थ है? इसके मुख्य नियमों का वर्णन करिये।

इकाई 3. नैदानिक मनोविज्ञान एवं नैदानिक मूल्यांकन की अध्ययन विधियाँ:- साक्षात्कार, व्यक्ति इतिहास विधि एवं मानसिक स्थिति का परीक्षण (Study Methods of Clinical Psychology and Clinical Assessment:- Interview, Case History and Mental Status Examine)

इकाई संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 नैदानिक मनोविज्ञान के अध्ययन के तरीके
3.3.1 केस अध्ययन विधि
3.3.2 नैदानिक प्रेक्षण/निरीक्षण विधि
3.3.2.1 स्वाभाविक निरीक्षण
3.3.2.2 आत्म सलाह
3.3.2.3 नियंत्रित निरीक्षण
3.3.3 मनोवैज्ञानिक परीक्षण
3.3.3.1 मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की विशेषतायें
3.3.3.2 मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के प्रकार
3.4 नैदानिक मूल्यांकन
3.4.1 नैदानिक साक्षात्कार
3.4.2 साक्षात्कार के प्रकार
3.4.3 साक्षात्कार के चरण
3.4.4 साक्षात्कार के गुण
3.4.5 साक्षात्कार के दोष
3.4.6 साक्षात्कार के उद्देश्य
3.5 केस इतिहास साक्षात्कार
3.6 मानसिक स्थिति परीक्षण
3.7 सारांश
3.8 शब्दावली
3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.11 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

नैदानिक मनोवैज्ञानिकों का एक महत्त्वपूर्ण कार्य नैदानिक मूल्यांकन करना होता है। वे सभी प्रक्रियायें जिनके सहारे नैदानिक मनोवैज्ञानिकों को रोगी के बारे में जानने एवं समझने में मदद मिलती है, नैदानिक मूल्यांकन कहलाती है। नैदानिक मनोविज्ञान में कई विधियों का उपयोग करके रोगी के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है और रोगी के बारे में महत्वपूर्ण आंकड़ों को इकट्ठा किया जाता है। इन विधियों में प्रमुख है- केस अध्ययन विधि, नैदानिक निरीक्षण विधि, नैदानिक साक्षात्कार आदि।

इस इकाई के अन्तर्गत हम नैदानिक अध्ययन विधियों एवं मूल्यांकन का विस्तार से अध्ययन कर सकेंगें।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य निम्न प्रकार है-

नैदानिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत आने वाली समस्त अध्ययन विधियों तथा नैदानिक मूल्यांकन का अध्ययन करना ।

3.3 नैदानिक मनोविज्ञान में अध्ययन के तरीके

प्रत्येक विषय क्षेत्र को ठीक से समझने तथा विकसित करने के लिए अध्ययन के विभिन्न माध्यमों की आवश्यकता होती है। ये माध्यम प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनो हो सकते है। ऑकडो या तथ्य एकत्रित करने के इन्ही माध्यमों को अध्ययन विधियां कहा जाता है।

नैदानिक मनोविज्ञान में इन्हीं आकड़ों को एकत्र करने के लिए अनेक अध्ययन विधियों का उपयोग किया जाता है, जिनमें निम्नलिखित मुख्य है

3.3.1. केस अध्ययन विधि

इस विधि का उपयोग नैदानिक मनोवैज्ञानिक एवं मनोचिकित्सक दोनो ही करते है। कोमर (1995) के अनुसार, ''केस अध्ययन एक व्यक्ति का विस्तृत एवं व्याख्यात्मक वर्णन होता है। यह व्यक्ति की पृष्ठभूमि, वर्तमान परिस्थितियों एवं लक्षणों का वर्णन करता है।"

इस विधि को किसी खास असामान्य व्यक्ति के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए अधिक प्रयोग किया जाता है। व्यक्ति को असामान्य बनाने में उसके परिवार की आर्थिक, सामाजिक तथा सांवेगिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। अतः किसी भी असामान्य व्यक्ति के रोग के बारे में तभी पता लगाया जा सकता है, जब उसके परिवार की अवस्था के बारे में पता चल सके। इस विधि द्वारा रोगी के जन्म से लेकर वर्तमान तक के जीवन का पूरा विवरण तैयार किया जाता है। इसके बाद उससे प्राप्त सामग्रियों का विश्लेषण किया जाता है। विश्लेषण करने के बाद व्यक्ति के मानसिक रोग के मूल कारण का पता चलता है। इसके बाद चिकित्सा द्वारा उसका उपचार प्रारम्भ किया जाता है।

बेलर (1962), हुबर (1961) तथा मेनिनगर, मेमैन तथा प्रुऐसर (1962) ने केस अध्ययन विधि का एक प्रारूप तैयार किया। इस प्रारूप में रोगी के वर्तमान, भूत एवं भविष्य तीनों से सम्बन्धित प्रश्न होते है। इस प्रारूप में निम्नलिखित पद है-

1. वर्तमान स्थिति -इसमें नैदानिक मनोवैज्ञानिक रोगी के बारे में निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर जानना चाहते है- रोगी अपने दिन-प्रतिदिन की जिन्दगी में कौन-कौन से कार्य करता है? परिवार के सदस्यों की राय में रोगी किस तरह का विचलित या गलत व्यवहार दिखलाता है? रोगी में चिन्ता, विषाद तथा अन्य नकारात्मक संवेग की गंभीरता कितनी अधिक है?

(2) व्यक्तित्व के बारे में - इसमें रोगी व्यक्तित्व के बारे में निम्न प्रश्नों के उत्तर जानना चाहते है- क्या रोगी का स्वास्थ्य ठीक है? क्या रोगी आक्रामक है, उसे अपने संवेग पर नियंत्रण है? क्या उसमें धनात्मक या ऋणात्मक संवेग की अधिकता होती है? रोगी का व्यवहार दूसरों लोगो के साथ कैसा है? रोगी का अन्य लोगो के साथ संबंध कैसे है?

(3) सामाजिक सम्बन्ध - इसमें निम्न सूचनाएँ प्राप्त की जाती है- रोगी किस तरह के लोगों से अपना संबंध रखता है? रोगी के अपने माता-पिता, बच्चों तथा पति या पत्नी के साथ कैसा संबंध है?

(4) व्यक्तित्व विकास - इसमें रोगी के व्यक्तित्व विकास से संबंधित सूचनाओं को इकत्र किया जाता है। इस सिलसिले में रोगी के प्रारम्भिक जीवन के अनुभवों को उसके माता-पिता, भाई-बहन आदि से प्राप्त किया जाता है। यह पता लगाया जाता है कि क्या उसका प्रारम्भिक विकास ठीक तरह से हुआ है या नहीं।

(5) केस निर्माण - इसमें रोगी से निम्न तरह की सूचना प्राप्त करने की कोशिश की जाती हैा उसके मनोवैज्ञानिक असमायोजन को समझने की कोशिश की जाती है और यह पता लगाया जाता है कि वह किन-किन क्षेत्रों में ठीक ढंग से कार्य करता है तथा किन-किन क्षेत्रों में वह ठीक ढंग से कार्य नही कर पाता है?

(6) उपचार या हस्तक्षेप -इसमे रोगी के पर्यावरणीय एवं सामाजिक कारकों मे परिवर्तन करने की कोशिश की जाती है, जिससे उसकी समस्या कम हो जाय। उसके साथ परामर्श करके उसके (रोगी के) जिन्दगी की वर्तमान स्थिति में परिवर्तन लाकर उसके तनाव को कर सकते है। यदि रोगी ज्यादा गम्भीर है तो उसकी समस्या के अनुरूप मनोचिकित्सा दी जाती है

(7) भविष्य के पूर्वानुमान -नैदानिक चिकित्सा या हस्तक्षेप के बाद रोगी के भविष्य के बारे में पूर्वानुमान लगाया जा सकता है।

गुण-

(i) इस विधि द्वारा गहन तथा विस्तृत जानकारी प्राप्त हो जाती है।

(ii) इस विधि से वर्तमान रोग के निदान में मदद मिलती है तथा भविष्य में संभावित नैदानिक हस्तक्षेपों (उपचार) को करने में मदद मिलती है।

(iii) नैदानिक केस अध्ययन विधि द्वारा रोगी के रोग के स्वरूप को सही-सही समझा जा सकता है।

दोष-

(i) इस विधि में सम्मिलित किए गए प्रश्नों को ठीक ढंग से तैयार करने के लिए सूझ-बूझ, समझ एवं कौशलता की अधिक जरूरत पड़ती है।

(ii) इससे प्राप्त जानकारी लोगों के स्मरण पर निर्भर करती है। इस कारण गलत जानकारी प्राप्त हो सकती है।

(iii) इस विधि द्वारा गंभीर रूप से मानसिक रोगियों का नैदानिक मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है। इसलिये साधारण मानसिक रोगियों के लिए ही प्रयोग किया जाता है।

3.3.2. नैदानिक प्रेक्षण/निरीक्षण विधि

नैदानिक प्रेक्षण विधि द्वारा मानसिक रोगियों के व्यवहार का सीधे निरीक्षण किया जाता है। नैदानिक मनोवैज्ञानिक प्राप्त आँकडों का विश्लेषण करके एक निश्चित नैदानिक निर्णय पर पहुँचते है। यह एकमात्र ऐसी पद्धति है जिसमें व्यवहार जैसा घटित हो रहा है, उसका वैसा ही नोट किया जाता है।

नैदानिक मनोविज्ञान में निम्नलिखित तीन निरीक्षण विधियों का प्रयोग किया जाता है-

(i) स्वाभाविक निरीक्षण

(ii) आत्म-सलाह

(iii) नियंत्रित निरीक्षण

3.3.2.1 स्वाभाविक निरीक्षण

इस विधि में प्रेक्षक रोगी के व्यवहारों का सीधा निरीक्षण एक स्वाभाविक परिस्थिति जैसे-स्कूल, घर, दफ्तर आदि में करते है। इसमें रोगी के जिस व्यवहार का निरीक्षण करना हो उसे पहले निर्धारित कर लेते है और उसके बाद उसका निरीक्षण करते है।

स्वाभाविक निरीक्षण के तीन प्रकार होते है-

(i) घरेलू निरीक्षण -इस तरह के निरीक्षण में नैदानिक मनोवैज्ञानिक या प्रेक्षक रोगी के घर पर जाकर उनके परिवार के अन्य सदस्यों के साथ किए निरीक्षणों को रिकार्ड करता है।

(ii) स्कूल निरीक्षण -नैदानिक बाल मनोवैज्ञानिक स्कूल के कुछ व्यवहारात्मक समस्याओं का सीधा निरीक्षण करके नैदानिक मूल्यांकन करते है। ऐसी समस्याओं में बच्चों का खेल के मैदान में उनका व्यवहार आक्रामक होना, अत्यधिक डरा रहना, एकाग्रता की कमी तथा शिक्षक के साथ हमेशा चिपका रहना आदि होते है।

(iii) चिकित्सालय निरीक्षण - इस तरह के निरीक्षण में अस्पताल के नैदानिक विशेषज्ञ रोगी के व्यवहार का अस्पताल में निरीक्षण करते है। इसके लिए मापनी का उपयोग किया जाता है। विट्टेनवार्न (1955) ने एक विशेष प्रेक्षणात्मक मापनी विकसित किया जिसे विट्टेनवार्न मनश्चिकित्सीय रेटिंग मापनी कहा गया। इसमें 52 मापनी होते है और प्रत्येक में कई कथन होते है जिनके सहारे रोगी के व्यवहारों का निरीक्षण किया जाता है।

गुण-

(i) स्वाभाविक निरीक्षण में रोगियों के व्यवहारों का निरीक्षण एक स्वाभाविक परिस्थिति में किया जाता है, अतः इससे प्राप्त आँकडों में शुद्धता होती है।

(ii) इस विधि द्वारा गंभीर एवं कम असमायोजित दोनों ही तरह के रोगियों के व्यवहारों का निरीक्षण आसानी से किया जाता है।

दोष -

(i) निरीक्षण विधि द्वारा जब निरीक्षण किया जाता है तो इसके लिए प्रशिक्षित व्यक्ति होना आवश्यक होता है, तभी इसके परिणाम शुद्ध एवं विश्वसनीय आते है।

(ii) इस विधि द्वारा नैदानिक मूल्यांकन करने में धन, समय एवं श्रम काफी अधिक लगते है।

3.3.2.2 आत्म सलाह

इस विधि में व्यक्ति अपने व्यवहारों, चिन्तन एवं संवेगों का निरीक्षण स्वयं करता है तथा स्वयं ही उसका अंकन (रिकार्डिग) भी करता है। इस विधि में चिकित्सक रोगी को एक डायरी दे देता है। जिसमें वह एक निश्चित समय तक अपने व्यवहारों की तीव्रता, आवृत्ति तथा अवधि को डायरी में रोजाना लिखते जाता है। इस विधि का प्रयोग कुछ विशेष नैदानिक समस्याओं जैसे-मोटापा, धूम्रपान, मद्यव्यसनता के मूल्यांकन में किया जाता है।

गुण -

(i) इस विधि में रोगी का ध्यान अपने रोजमर्रा के गलत व्यवहारों पर जाता है। जिसके कारण उनमें स्वयं ही इसे नियंत्रित करने की विशेष प्रेरणा जगती है।

(ii) इस तरह की विधि द्वारा निरीक्षण करने के समय, श्रम एवं धन तीनों की काफी बचत होती है।

दोष -

(i)कभी-कभी रोगी अपने व्यवहारों का निरीक्षण सही ढंग से नहीं करता। वह अपने व्यवहारों के निरीक्षणों को जान-बूझ कर विकृत कर देता है।

(पi) गंभीर मानसिक रोगियों के लिए इस तरह की विधि उपयुक्त नही होती है।

3.3.2.3 नियंत्रित निरीक्षण

इस तरह की विधि में प्रेक्षक रोगियों या व्यक्तिओं के व्यवहारों को एक नियंत्रित परिस्थिति में रखकर निरीक्षण करते है और उसका नैदानिक मूल्यांकन करते है। बच्चों में धोखेबाजी व्यवहार जैसे-चोरी करना, झूठ बोलना, बेईमानी करना आदि से संबंधित नैदानिक समस्याओं का मूल्यांकन करने के लिए इसे प्रयोग किया जाता है।

गुण-

(i)इसमें नैदानिक मनोवैज्ञानिक को स्वाभाविक परिस्थिति के उत्पन्न होने तक इंतजार नहीं करना पड़ता है। इसलिए इसमें कम समय लगता है और नैदानिक मूल्यांकन जल्दी होता है।

दोष-

(i) निरीक्षण द्वारा गंभीर मानसिक समस्याओं का निरीक्षण ठीक ढंग से नहीं किया जाता है।

3.3.3 मनोवैज्ञानिक परीक्षण

नैदानिक परीक्षणों का नैदानिक मूल्यांकन में विशेष स्थान है। क्रॉनबैक (1965) के अनुसार ''परीक्षण व्यक्ति के व्यवहारों को प्रेक्षण करने तथा उसे एक संख्यात्मक मापनी या श्रेणी पद्धति द्वारा वर्णन करने की एक क्रमबद्ध कार्य-विधि है।'' असामान्य व्यवहार के अध्ययन के लिए विभिन्न मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उपयोग किया जाता है।

3.3.3.2 नैदानिक परीक्षणों के प्रकार

मनोवैज्ञानिक परीक्षण शाब्दिक या अशाब्दिक हो सकते है। प्रशासन की दृष्टि से व्यक्तिगत या सामूहिक हो सकते है। व्यक्तित्व के विभिन्न शीलगुणों का मापन इन परीक्षणों द्वारा किया जाता है। इन परीक्षणों के निम्नलिखित प्रकार है

(1) बुद्धि परीक्षण -इस परीक्षण द्वारा नैदानिक मनोवैज्ञानिक रोगी की वर्तमान सामान्य क्षमता का मापन करते है। बौधिक क्षमता का मापन करके नैदानिक मनोवैज्ञानिक यह पता करते है कि व्यक्तित्व विघटन से कितनी मात्रा में रोगी की बुद्धि प्रभावित हुई है। बुद्धि परीक्षण के निम्नलिखित प्रकार है-

(a) बिने परीक्षण - बिने परीक्षण का निर्माण फ्रांस में 1905 में किया गया था। इसका संशोधन 1960 में स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय में किया गया जो तीसरा संशोधन था। बुद्धि परीक्षण 4 से 12 साल के बच्चों के लिए उपयुक्त है।

(b) वेक्सलर मापनी - वेक्सलर ने व्यक्तियों की बुद्धि मापने के लिए तीन मापनी बनाये है- (Wechsler Adult Intelligence Scale (WAIS), (Wechsler Intelligence Scale for Children (WISC), तथा (Wechsler Preschool and Primary Scale of Intelligence (WPPSI)। WAIS द्वारा वयस्कों की बुद्धि मापी जाती है, WISC द्वारा 6 से 16 साल के बच्चों की बुद्धि मापी जाती है तथा WPPSI 4 साल से 6 साल के उम्र तक के बच्चों की बुद्धि मापी जाती है। इन तीनो परीक्षणों में शाब्दिक परीक्षण तथा क्रियात्मक परीक्षण होते हैं।

(c) गुडएनफ ड्रा-ए-मैन परीक्षण -इस परीक्षण का निर्माण गुडएनफ द्वारा 1926 में किया गया। इसमें बुद्धि मापे जाने वाले बच्चे को एक पुरूष का चित्र बनाना होता है। चित्र बनाने में लगा समय एवं उसकी सामान्य आकृति के आधार पर बुद्धि की माप की जाती है।

(d) रैवेन प्रोग्रसिव मैट्रीसेज - इस परीक्षण का निर्माण ग्रेट-ब्रिटेन में जे0सी0 रैवेन द्वारा 1936 में किया गया। यह बुद्धि का एक अशाब्दिक माप है । इस परीक्षण द्वारा ज्यामितिक चित्रों में तार्किक संबंधों को ढूँढा जाता है और बुद्धि का मापन होता है।

(2) अभिक्षमता परीक्षण - कक्षा में छात्रों की अभिक्षमता से सम्बन्धित समस्याओं को इस परीक्षण द्वारा मापा जाता है। जैसे-अंकगणित, संस्कृत, अंग्रेजी आदि सीखने संबंधित समस्या। उन समस्याओं की पहचान की जाती है और उनकी पहचान करके उपचार प्रदान किया जाता है।

(3) मस्तिष्कीय क्षति मापने का परीक्षण - बहुत सारे रोगी ऐसे होते है जिनके मस्तिष्क में कुछ आंगिग परिवर्तन हुए होते है। आंगिक परिवर्तन की मात्रा अधिक होती है तो मेडिकल विधि जैसे-एक्स रे (X-ray) तथा EEG प्रविधियों द्वारा उनका पता आसानी से चल जाता है। परन्तु जब इसकी मात्रा कम होती है, तो कुछ मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का सहारा लेना पड़ता है।

(4) व्यक्तित्व परीक्षण - नैदानिक समस्याओं तथा व्यक्ति के व्यवहार के निरीक्षण के लिए व्यक्तित्व परीक्षणों का सहारा लिया जाता है। इन परीक्षणों द्वारा रोगी की मानसिक स्थिति की पहचान की जाती है। जिससे चिकित्सकों को रोगी के उपचार करने में सहायता मिलती है। इसके लिए व्यक्तित्व प्रश्नावली, व्यक्तित्व मापनी तथा प्रक्षेपण तकनीकों का उपयोग किया जाता है।

प्रक्षेपण तकनीक में परीक्षण के पद अधूरे तथा असंरचित होते है। इस तकनीक द्वारा मानसिक रोगी अपनी दबी हुई इच्छाओं, विचारों, भावनाओं, संवेगों, को व्यक्त करता है। इन परीक्षणों में रोशा स्याही धब्बा परीक्षण तथा टी0ए0टी0 प्रसिद्ध है।

मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के गुण -

1. इनके द्वारा प्राप्त परिणाम विश्वसनीय तथा वैध होते है।
2. मनोवैज्ञानिक परीक्षण व्यक्ति के समस्त शील गुणों -बुद्धि, अभिक्षमता, उपलब्धि, रूचि व जीवन मूल्य, चिन्ता, समायोजन, संवेगात्मकता आदि के साथ-व्यक्तित्व को समझने में सहायक है।
3. इनका उपयोग मानसिक रोगियों के रोग को समझने, निदान करने, उपचार तथा असामान्य व्यवहार सम्बन्धी अनेक अनुसन्धानों में होता है।
4. इनका उपयोग समस्याग्रस्त व्यक्तियों के परामर्श मे भी किया जाता है।

दोष -

1. अनेक सूक्ष्म व्यक्तित्व गुणों का मापन इनके द्वारा कठिन है।
2. अधिकांश परीक्षण निश्चित आयु या श्रेणीं वर्गो के लिए होते है मानसिक रोगियों के लिए उपयोग करते समय अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित होती है।
3. जो मानसिक रोगी अत्यन्त विषाद व उत्तेजित अवस्था में होते है ,उनके परीक्षण की संभावना कम हेाती है।

3.4 नैदानिक मूल्यांकन -

नैदानिक मूल्यांकन एक ऐसी प्रविधि है, जिसमें व्यक्तियों के बारे में तरह-तरह की सूचनायें एकत्रित की जाती है और एक विशेष निर्णय लिया जाता है। नैदानिक मूल्यांकन को नैदानिक मनोविज्ञानी या मनोचिकित्सक करते है। नैदानिक मूल्यांकन के सहारे नैदानिक मनोवैज्ञानिकों को रोगी के बारे में जानने एवं समझने में मदद मिलती है। कोरचिन के अनुसार '' **नैदानिक मूल्यांकन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके सहारे रोगी से संबद्ध महत्त्वपूर्ण निर्णय करने के लिए चिकित्सक रोगी को पूर्णरूपेण समझने की कोशिश करता है।''**

चिकित्सकों द्वारा रोगी को समझने की दिशा में किया गया कोई भी प्रयास नैदानिक मूल्यांकन कहा जाएगा।इस प्रकार नैदानिक मूल्यांकन सूचनाओं के विभिन्न पहलुओं को संग्रहित करता है। जिसके द्वारा व्यक्ति की वर्तमान स्थिति का मूल्यांकन होता है।

नैदानिक साक्षात्कार:-

साक्षात्कार मनोवैज्ञानिक मूल्यांकन का एक सबसे अच्छा तरीका है। साक्षात्कार विधि में आमने-सामने बैठकर मौखिक शाब्दिक आदान-प्रदान किया जाता है। इसमें एक व्यक्ति जो मौखिक प्रश्न पूछता है उसे साक्षात्कारकर्त्ता तथा जो उत्तर देता है उसे उत्तरदाता या साक्षात्कार देने वाला कहते है। इसमें साक्षात्कारकर्त्ता सामने उपस्थित व्यक्ति या व्यक्तियों से मौखिक प्रश्न पूछता है और उत्तरदाता उसके मौखिक उत्तर देता है। इस प्रकार शाब्दिक आदान-प्रदान से साक्षात्कारकर्त्ता उत्तरदाता से उसकी भावनाओं, विश्वासों, अनुभवों, विचारों, वर्तमान मानसिक स्थिति तथा भविष्य की योजनाओं के सम्बन्ध में जानकारी एकत्रित करता है।

नैदानिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा साक्षात्कार विधि का प्रयोग बहुत पुराना है। इसके निम्न उपयोग है

1. मानसिक रोगियों को समझने में,
2. रोग के कारकों को जानने में,
3. रोगों के उपचार में,
4. तथ्य एकत्रित करने में।

साक्षात्कार विधि में (1) साक्षात्कारकर्त्ता उत्तरदाता से मौखिक रूप से प्रश्न पूछता है। (2) उत्तरदाता पूछे गये प्रश्नों के उत्तर मौखिक रूप से देता है। (3) इस शाब्दिक आदान-प्रदान का उद्देश्य अनुसन्धान की आवश्यकता की पूर्ति होना अनिवार्य है।

साक्षात्कार विधि में प्रश्नों के प्रकारः- इस विधि में प्रश्नों का स्वरूप दो प्रकार का होता है

(1) खुले प्रश्न जिसमें उत्तरदाता को कोई विकल्प नहीं दिया जाता। वह अपनी इच्छा के अनुरूप पूछे गये प्रश्न के उत्तर देता है। असामान्य व्यवहार सम्बन्धी अध्ययनों में साक्षात्कार के दौरान प्रायः खुले प्रश्नों का प्रयोग किया जाता है।

(2) बन्द प्रश्न इसमें पूछे गये प्रश्न के विकल्प भी दिये रहते हैं और उत्तरदाता को उनमें से एक विकल्प का चयन करना पड़ता है।

3.4.2 साक्षात्कार के प्रकार

(1) मानकीकृत साक्षात्कार - इसमें उत्तरदाता से पूछे जाने वाले प्रश्नों का निर्धारण साक्षात्कार प्रारम्भ करने के पूर्व ही कर लिया जाता है। प्रश्नों की भाषा, प्रश्नों का क्रम तथा संख्या सुनिश्चित रहती है। इसमें साक्षात्कारकर्त्ता को शब्दों को बदलने या प्रश्नों के क्रम को बदलने या नये प्रश्न गठित करने की स्वतंत्रता नहीं दी जाती है। असामान्य व्यवहार तथा नैदानिक साक्षात्कारों में साक्षात्कार का यह रूप बहुत ही कम किया जा सकता है।

(2) अमानकीकृत साक्षात्कार - इसमें प्रश्नों की भाषा, क्रम संख्या आदि का निर्धारण पहले से नहीं किया जाता है। साक्षात्कारकर्त्ता के सामने केवल साक्षात्कार करने का उद्देश्य स्पष्ट रहता है। उसे प्रश्नों की भाषा, क्रम संख्या तथा नये प्रश्न गठित करने की स्वतंत्रता होती है। वह रोगी के अनुसार अपनी बुद्धि-विवके द्वारा प्रश्नों को घटा-बढ़ा सकता है। इसमें पूछे गये प्रश्न मुक्त अथवा खुले हुये होते है।

असामान्य व्यवहार के अध्ययन में साक्षात्कार:- असामान्य व्यवहार के अध्ययन में नैदानिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा इसका प्रयोग बहुत पहले से हो रहा है। साक्षात्कार व्यवहार को समझने का एक महत्त्वपूर्ण ढंग है। असामान्य व्यवहार के अध्ययन में ज्यादातर अमानकीकृत/ असंरचित साक्षात्कार का उपयोग होता है। इसमें प्रश्न भी खुले हुये होते हैं। इससे मानसिक रोगी के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त की जा सके। इन साक्षात्कारों का उद्देश्य रोग का निदान करना हो सकता है जिससे रोगी के मानसिक रोग के स्वरूप तथा रोग के कारणों की जानकारी प्राप्त हो सके। असामान्य व्यवहार अत्यन्त जटिल तथा गहन है। साक्षात्कार के अमानकीकृत होने के कारण तथा खुले प्रश्नों के उपयोग के कारण साक्षात्कारकर्त्ता अत्यन्त गहराई में जा सकता है क्योंकि उसे उत्तरदाता के उत्तरों के आधार पर बीच-बीच में प्रश्न पूछने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है। इस प्रकार वह रोगी के विषय में गहराई से जानकारी प्राप्त कर सकता है।

3.4.3 साक्षात्कार के चरण या साक्षात्कार करने की विधि

साक्षात्कार का उपयोग करने में पर्याप्त अनुभव, कुशलता तथा सतर्कता की आवश्यकता होती है। साक्षात्कार किन उद्देश्यों के लिए किया जा रहा है और किन लोगों का किया जा रहा है, इसके आधार पर एक साक्षात्कार प्रक्रिया के निम्नलिखित चरण हो सकते है।

1. **पूर्व तैयारी**: जब साक्षात्कार विधि का प्रयोग करना होता है तो इसके लिए पूर्व तैयारी करना आवश्यक है। सबसे पहले साक्षात्कारकर्ता को यह निश्चित कर लेना चाहिये कि वह मानकीकृत या अमानकीकृत साक्षात्कार में से किसे चुनेगा। साक्षात्कार के लिए प्रश्न खुले होंगे या बन्द, प्रश्नों की भाषा कैसी होगी, उनकी संख्या कितनी होगी आदि। अध्ययनरत सैम्पल का चयन, साक्षात्कार का स्थान, समय, संभावित अड़चनों, प्रयुक्त उपकरणों आदि के विषय में पूर्व तैयारी करना आवश्यक है।

2. **मित्रतापूर्ण वातावरण का निर्माण**: साक्षात्कारकर्त्ता तथा उत्तरदाता के बीच प्रेमपूर्ण तथा विश्वासपूर्ण सम्बन्ध का स्थापित होना आवश्यक होता है तभी उत्तरदाता से उसके बारे में सही-सही जानकारी प्राप्त की जा सकती है। स्वयं को तटस्थ, सम्मानित तथा साक्षात्कार को गम्भीरता से लेने वाले व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करना चाहिए तथा रोगी के प्रति रूचि भी दिखानी चाहिये। कुल मिलाकर उसे रोगी का विश्वास जीत कर मित्रतापूर्वक व्यवहार दिखाना चाहिये।

3. साक्षात्कार की प्रक्रिया:- जब साक्षात्कार की पूरी तैयारी हो जाये तथा उत्तरदाता के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो जाये तो उससे प्रश्न पूछने आरम्भ करने चाहिए। प्रारम्भ में उसका नाम, स्थान, काम तथा माता-पिता के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करनी चाहिये। इसके पूर्व तैयारी इसके बाद अपने अनुसन्धान की आवश्यकता के अनुरूप प्रश्न पूछना चाहिये। प्रश्नों की भाषा सरल तथा स्पष्ट होनी चाहिये।

4. साक्षात्कार की समाप्ति:-जब अनुसन्धानकर्त्ता को रोगी से उसके बारे में सभी जानकारियॉं मिल जाती है तथा अनुसन्धान से सम्बन्धित कोई पक्ष छूटता नहीं है। तब उसे धन्यवाद एवं मुस्कराहट के साथ साक्षात्कार को समाप्त कर देना चाहिये। आवश्यकता पड़ने पर फिर से मिलने का आश्वासन देते हुये साक्षात्कार समाप्त करना चाहिये।

5. साक्षात्कार अंकन:- अंकन या रिकार्डिंग रोगी के साथ किये गये साक्षात्कार की एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। साक्षात्कार के दौरान ही रोगी द्वारा दी गई जानकारियों का अंकन करना चाहिए, क्योंकि विस्मरण आदि कारक उत्तरों की को अशुद्धता कर सकते है, साथ ही उनका अंकन करते रहना चाहिये। इसके लिये यन्त्रों तथा उपकरणों का उपयोग किया जाना चाहिये।

6. तथ्यों का विश्लेषण:-रोगी द्वारा जो भी जानकारियॉं प्राप्त होती है उसकी कोडिंग, सारणी बनानी चाहिए। उन्हें किसी कोड़ या नम्बर प्रदान करके सांख्यिकीय पद्धतियों से विश्लेषण करना चाहिये।

7. प्रतिवेदन (रिपोर्ट) का प्रस्तुतीकरण:- साक्षात्कार की (प्रतिवेदन) रिपोर्ट सरल ढंग से की जानी चाहिये। इसमे साक्षात्कारकर्त्ता को स्वयं कोई भी सामग्री को नही जोड़ना चाहिये। इसमें साक्षात्कार की वैधता तथा विश्वनीयता का उल्लेख करना जरूरी होता है।

8. निष्कर्ष:- प्रतिवेदन को साक्षात्कारकर्त्ता अपने सहयोगियों तथा उस विषय के अन्य जानकारों के साथ विचार-विमर्श कर सकता है। साक्षात्कार विधि सरल होने के साथ-साथ जटिल भी है इसके लिये पूर्ण सावधानी, सतर्कता तथा धैर्य की आवश्यकता होती है।

3.4.4 गुण

1)साक्षात्कार का उपयोग बडे जन समुदाय पर किया जा सकता है।

2) साक्षात्कार की विधि लचीली होती है जिस कारण अनुसन्धान के उद्देश्य के अनुरूप उसमें परिवर्तन किया जा सकता है।

3) साक्षात्कारकर्त्ता उत्तरदाता की मौखिक प्रतिक्रियाओं को ज्ञात करता है साथ ही उत्तर देते समय उसके व्यवहार का निरीक्षण भी करता रहता है।

4) अधिक गहन साक्षात्कार द्वारा सूक्ष्म जानकारी एकत्रित की जा सकती है।

5) व्यक्तियों के पूर्व अनुभवों, विश्वासों, भावनाओं, अभिवृत्तियों का ज्ञान साक्षात्कार द्वारा प्राप्त करना संभव है।

3.4.5 दोष

1) जब मानसिक रोगियों या समस्याग्रस्त व्यक्तियों के लिए साक्षात्कार का प्रयोग किया जाता है तो इसके लिए पर्याप्त प्रशिक्षण, अनुभव होना जरूरी होता है। इस श्रेणी के साक्षात्कारकर्त्ताओं की कमी रहती है।

2) जो लोग उत्तर देने में संकोच, असुविधा या वास्तविकता को बताने में डरते हैं उनका साक्षात्कार करना कठिन है।

3) साक्षात्कार में उत्तरदाता अनेक बार गुमराह कर सकता है।

4) उत्तरों की गोपनीयता प्रश्नावली की तुलना में कम रहती है।

3.4.6 नैदानिक साक्षात्कार के उद्देश्य

नैदानिक साक्षात्कार का सामान्य उद्देश्य नैदानिक मूल्यांकन के लिए महत्त्वपूर्ण आँकडों को एकत्र करना होता है। इसके अलावा इस तरह के साक्षात्कार के कुछ विशिष्ट उद्देश्य भी होते हैं जो निम्नलिखित है-

i) नैदानिक कार्य को सम्पन्न करने के लिए आपसी संबंध स्थापित करना।

ii) रोगी की समस्याओं के बारे में महत्त्वपूर्ण सूचनायें प्राप्त करना।

iii) अपनी समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए तथा अपने-आप को उन्नत बनाने के लिए।

नैदानिक साक्षात्कार के प्रकार-

नैदानिक साक्षात्कार के कई प्रकार है। जिनमें से दो महत्त्वपूर्ण प्रकार निम्नलिखित है-

1) केस इतिहास साक्षात्कार

2) मानसिक स्थिति परीक्षण।

3.5 केस-इतिहास साक्षात्कार -

केस-इतिहास साक्षात्कार जिसे सामाजिक-इतिहास साक्षात्कार भी कहा जाता है। इस विधि द्वारा रोगी को व्यक्तिगत एवं सामाजिक इतिहास तैयार किया जाता है। इस तरह के साक्षात्कार में बचपन तथा वयस्कावस्था की अनुभूतियों के बारे में सूचना एकत्रित की जाती है। इसमें शैक्षिक, लैंगिंक, मेंिडकल, धार्मिक, माता-पिता के प्रभावों एवं मनोविकृतियों से संबंधित तथ्यों को सम्मिलित किया जाता है। इसमें रोगी की सांवेगिक अनुभूतियों की समस्याओं की खोज एवं पहचान पर कम ध्यान डाला जाता है।

केस इतिहास साक्षात्कार से रोगी के बारे में जो आँकडे तैयार होते है, उसका विशेष फायदा यह होता है कि उसके माध्यम से रोगी के व्यक्तित्व एवं कार्य को समझने में काफी मदद मिलती है।

सुन्डवर्ग (1977) ने केस साक्षात्कार का एक प्रारूप तैयार किया है जिसके माध्यम से रोगी के बारे मे महत्त्वपूर्ण सूचनायें प्राप्त की जा सकती है। इस प्रारूप में निम्नलिखित 16 एकांशों को रखा गया है-

i) पहचान संबंधी आँकडे -इसमें रोगी का नाम, यौन, पेशा, पता, जन्म-तिथि, जन्म स्थान, धर्म तथा शिक्षा आदि के बारे में सूचनायें एकत्रित की जाती है।

ii) उपचार गृह -इसमें आने का कारण तथा वहाँ की सेवाओं के बारे में रोगी की प्रत्याशाओं या उम्मीद।

iii) **वर्तमान परिस्थिति** -इसमें रोगी अपने दिन-प्रतिदिन के व्यवहार के बारे में बतलाता है वह वर्तमान में स्वयं क्या परिवर्तन चाहता है।

iv) **पारिवारिक समूह** -इसमें रोगी से उसके परिवार के सदस्यों के व्यवहारों जैसे- माता के व्यवहार, पिता के व्यवहार तथा परिवार के अन्य सदस्यों के व्यवहारों के बारे में सूचना प्राप्त की जाती है। रोगी अपने परिवार कें लिए सदस्यों की भूमिकाओं को बतलाता है।

v) **प्रारम्भिक स्मृति** -इसमें रोगी अपने बचपन की प्रमुख घटनाओं एवं स्मृतियों के बारे में बताता है।

vi) **जन्म एवं विकास** - इसमें रोगी या उसके बारे में जानकारी रखने वाला कोई भी व्यक्ति यह बतलाता है कि उसने किस उम्र में चलना प्रारंभ किया था, किस उम्र में बोलना प्रारंभ किया था, अपने उम्र के अन्य बच्चों की तुलना में उनकी कौन-कौन सी समस्याएँ थी तथा रोगी अपने बचपन की अनुभूतियों के प्रति कैसा विचार रखता था।

vii) **स्वास्थ्य** -बचपन में उसका स्वास्थ्य कैसा था, अभी उसका स्वास्थ्य कैसा है? किसी गंभीर बिमारी से तो वह प्रभावित नहीं था या है, उसे कोई दवा या अल्कोहल लेने से संबंधित समस्या तो नहीं थी याहै आदि के बारे में रोगी बताता है।

viii) **शिक्षा** - इसमें रोगी अपनी शिक्षा-दीक्षा के स्तर के बारे में बतलाता है तथा वह अपनी विशेष अभिरूचियों एवं उपलब्धियों के बारे में भी बताता है।

ix) **कार्य रिकार्ड** - वह कौन-सा नौकरी या कार्य करता है, उस कार्य से वह संतुष्ट है या नहीं।

x) **अभिरूचियाँ** -इसमें रोगी अपने ऐच्छिक कार्य, पढ़ाई, अभिरूचि, हॉबी आदि के बारे में बतलाता है।

xi) **लैंगिक विकास** -इसमें रोगी अपने प्रथम लैगिंक अनुभूतियों को बतलाता है तथा लैगिंक क्रियाओं के प्रकार के बारे में भी बतलाता है।

xii) **पारिवारिक आँकडे** -इसमें वैवाहिक जिन्दगी की संतुष्टि के बारे में, अपने बच्चों के बारे में तथा उनके साथ सम्बन्धों को बताता है।

xiii) **आत्मवर्णन** - इसमें रोगी अपने कमजोरियों, विशेषताओं एवं अपने आदर्शो के बारे में बतलाता है।

ixx) **पसंद एवं निर्णय** -यहाँ रोगी अपने जीवन के सबसे महत्त्वपूर्ण पसंद, निर्णयों को बताता हैं।

xx) **भविष्य के प्रति सोच** -यहाँ रोगी अगले कुछ वर्षो में क्या घटने की उम्मीद करता है। वह भविष्य के बारे में क्या सोचता है? भविष्य के प्रति कोई आशंका या डर तो नही है।

xxi) **अन्य कोई सूचना** -यहाँ रोगी को अपने बारे में वैसी सूचना देने को कहा जाता है जिसे अबतक उसे पूछा नही गया हो या कोई ऐसी बात जो उसे परेशान करती है और जिसके सम्बन्ध में वह किसी अन्य से बात नहीं कर पाता है।

केस-इतिहास साक्षात्कार में उपरोक्त सूचनाओं को रोगी से ही पूछा जाता है। परन्तु कभी-कभी विशेष परिस्थिति में जैसे जब रोगी छोटा बालक है या किसी कारण से सूचना देने योग्य नहीं है या मानसिक रूप से दुर्बल है तो वैसी परिस्थति में रोगी के परिवार का कोई सदस्य रोगी के बारे में जानकारी देता है।

3.6 व्यक्तित्व मापन सम्बन्धी मूल विवाद-विषय

यह एक एक असंरचित मानसिक स्थिति परीक्षण है मानसिक स्थिति परीक्षा या मानसिक स्थिति साक्षात्कार को साक्षात्कार का ही एक विशेष रूप माना गया है। इस तरह के साक्षात्कार का महत्व अधिक है। मानसिक अस्पतालों में अधिक गंभीर रूप से भर्ती हुए मानसिक रोगियों के लिये किया जाता है। यह एक ऐसा विशेष साक्षात्कार होता है, जिसमें चिकित्सक रोगी के बारे में सभी सूचनाओं को निरीक्षण द्वारा एकत्र करता है। ये साक्षात्कार मेडिकल डाक्टरों द्वारा रोगी का किये गये शारीरिक परीक्षण के समान होता है। इसमें कुछ खास-खास निश्चित प्रश्नों को रोगी से पूछा जाता है। चिकित्सक प्राप्त आँकड़ों के आधार पर एक और अन्त में रोगी के बारे में एक ऐसे निश्चित निदान पर पहुॅचते है। जिससे कि रोगी के लक्षणों, उसके रोग की गंभीरता, इतिहास तथा भविष्य में होने वाले व्यवहार के बारे में पता चलता है। इस तरह की परीक्षा पूरे साक्षात्कार के दौरान चलती है। बेल्स एवं रूस्क (1945) के अनुसार इस तरह के साक्षात्कार में रोगी की अभिव्यक्ति, व्यवहार, संवेग, मनोदशा, चिन्तन, बुद्धि तथा असामान्य व्यवहारों जैसे दुर्भीति एवं व्यामोही विचार आदि पर अधिक ध्यान दिया जाता है।

मानसिक स्थिति परीक्षा में नैदानिक मनोवैज्ञानिक या चिकित्सक मुख्य रूप से निम्नलिखित सूचनायें प्राप्त करने की कोशिश करते है।

1) **सामान्य व्यवहार** -इसके तहत नैदानिक विशेषज्ञ रोगी के हाव-भाव, पोशाक, व्यक्तिगत स्वास्थ्य, उसकी सक्रियता स्तर आदि पर विशेष रूप से ध्यान, देते है और उसके व्यवहार का प्रेक्षण करते है।

2) **बातचीत एवं चिन्तन** - यहॉ नैदानिक विशेषज्ञ इस बात का निरीक्षण करते है कि क्या रोगी बातचीत ठीक तरह से करता है? क्या वह एक सामान्य रूप से बात-चीत करता हैघ् रोगी बहुत देर तक बात-चीत के दौरान चुप रहता है घ् क्या रोगी को अपने भावों को व्यक्त करने में कठिनाई का अनुभव होता है घ्

3) **ध्यान** -नैदानिक मनोवैज्ञानिक रोगी की चेतना से सम्बन्धित प्रश्नों को जानते है। क्या रोगी सतर्क तथा ध्यानमग्न रहता है घ् आदि

4) **प्रत्यक्षण** -क्या रोगी का प्रत्यक्षण सामान्य है? उसमें विभ्रम आदि तो नहीं है।

5) **मनोग्रस्ति एवं बाध्यता** - क्या रोगी में बाध्यतापूर्ण व्यवहार दिखाई देता है। (जैसे, बार-बार अपने नब्ज की जॉच करना) आदि घ् क्या रोगी के दिमाग में एक ही तरह के विचार आते है?

6) **स्मृति - क्या** रोगी पहले घटी घटनाओं के बारे में बतला पाता है? क्या कुछ सेकंड या मिनट पहले की घटनाओं को याद रख पाता है?

7) **ध्यान** - क्या रोगी का ध्यान आसानी से हट जाता है। वह किसी वस्तु या घटना पर ध्यान लम्बे समय तक लगा पाता है

8) **सामान्य ज्ञान** - रोगी से उसके सामान्य ज्ञान से सम्बन्धित सूचनाओं को पूछा जाता है और उसके बारे में निष्कर्ष निकाला जाता है।

9) **बौद्धिक क्षमता** - इसमें रोगी की बुद्धि से सम्बन्धित सूचनाएँ एकत्र की जाती है। इनसे सम्बन्धित प्रश्नों को पूछकर उसके बौद्धिक स्तर का पता लगाया जाता है।

10) **निर्णय क्षमता** -क्या रोगी अपनी समस्याओं को ठीक तरह से बता पाता है? क्या उसके अन्दर निर्णय लेने क्षमता है या नही। चिकित्सक उसकी सूझ एवं निर्णय क्षमता से सम्बन्धित प्रश्न करते है।

दोष

i) मानसिक स्थिति परीक्षण में रोगी जो उत्तर देता है उनकी जाँच या व्याख्या पूर्ण रूप से नहीं हो पाती है।

ii) इस तरह की असंरचित मानसिक स्थिति परीक्षा में सही ऑकडें प्राप्त नहीं हो पाते है। इस कारण उनकी व्याख्या अधूरी ही रहती है।

असंरचित मानसिक स्थिति परीक्षण में कुछ कमियॉ होने के कारण संरचित मानसिक स्थिति परीक्षण विकसित किये गये है। इनमें सबसे लोकप्रिय 'मिनी मेंटल स्टेट्स एक्जामिनेशन' है। इस परीक्षा में कुल 30 एकांश या पद है जिनका उत्तर देने में 10 मिनट का समय लगता है। इसके द्वारा उन्मुखता, पुनःस्मरण, लघुकालीन स्मृति, अवधान/ध्यान, भाषा बोध आदि का निरीक्षण किया जाता है। इस परीक्षा की खासियत यह है कि इसका मानक भी उपलब्ध है। जिसकी तुलना सामान्य व्यक्ति के साथ की जा सकती है। इसके आधार पर एक अर्थपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते है। इस मानसिक स्थिति परीक्षण का दोष यह है कि यह रोगी के लिखित एवं शाब्दिक अनुक्रियाओं पर अधिक बल डालता है। इसलिए इसका उपयोग उन रोगियों के लिए सही नहीं होता है, जिनको केवल एक ही भाषा का ज्ञान होता है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. किसी व्यक्ति या समूह के सम्बन्ध में गहन अध्ययन हेतु एक महत्वपूर्ण विधि ..... है।
2. ..... साक्षात्कार में प्रश्नों की भाषा, क्रम संख्या आदि का निरीक्षण पहले ही कर लिया जाता है।
3. ..... साक्षात्कार का ही एक विशेष प्रारूप है।
4. व्यक्ति द्वारा अपने विचारो, चिन्तन एवं संवेगों का स्वयं निरीक्षण एवं रिकार्डिग ..... कहलाता है।
5. रोशा स्याही धब्बा परीक्षण में कुल ….. .कार्ड होते है। जिसमें ……. .कार्ड सफेद तथा….. .कार्ड रंगीन होते है|

3.7 सारांश

i) नैदानिक मूल्यांकन के अन्तर्गत विधियों का अध्ययन करके रोगी के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।

i) नैदानिक मूल्यांकन एक जटिल प्रक्रिया होती है। जिसमें चिकित्सक रोगी के बारे में अलग-अलग स्रोतों से आँकडे इकट्ठा करके उसके व्यवहार का अध्ययन करता है।

i) नैदानिक मूल्याँकन के अन्तर्गत निम्न प्रविधियाँ सम्मिलित है- केस अध्ययन विधि, नैदानिक साक्षात्कार, निरीक्षण विधि और मनोवैज्ञानिक परीक्षण आदि|

3.8 शब्दावली

1. प्रतिवेदन (रिर्पोट) - किसी भी परीक्षण विधि के सारे चरण पूर्ण हो जाने के बाद उसकी क्रमबद्ध तरीके से प्रस्तुति।
2. दुर्भीति (डर) -किसी निश्चित वस्तु, स्थान आदि के प्रति डर।
3. व्यामोही विचार - दूसरों के प्रति गलत विश्वास
4. मनोग्रसित विचार - किसी विचार का बार-बार मन में आना, जिस पर रोगी का नियंत्रण नहीं रहता है।

5. रक्षायुक्तियां - अपने अहम को बचाने के लिए प्रयोग किये जाने वाले विभिन्न तरीके।
6. नैदानिक हस्तक्षेप - नैदानिक विधियों द्वारा किसी समस्या का उपचार करना।

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. जीवन इतिहास
2. मानकीकृत या संरचित
3. मानसिक स्थिति परीक्षण
4. आत्म विमर्श या आत्म सलाह
5. 10, 5, 5

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान- अरूण कुमार सिंह- मोतीलाल बनारसीदास
2. असामान्य मनोविज्ञानः विषय और व्याख्या- डा0 मो0 सुलेमान, डा0 मो0 तौवाब-मोतीलाल बनारसीदास

3.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1) नैदानिक मूल्यांकन का क्या अर्थ है? इसके विभिन्न चरणों का उल्लेख करिये।
2) नैदानिक साक्षात्कार को परिभाषित करिये? इसके विभिन्न प्रकारों का वर्णन करिये।
3) नैदानिक साक्षात्कार के विभिन्न चरणों को समझाइये तथा इसके उद्देश्यों की व्याख्या करिये।
4) केस अध्ययन साक्षात्कार तथा मानसिक स्थिति परीक्षण के सविस्तार समझाइये।
5) केस अध्ययन विधि से क्या समझते है? इसके गुण एवं दोषों का वर्णन करिये।
6) नैदानिक प्रेक्षण/निरीक्षण के प्रकारों को समझाइये तथा इसके गुण व दोषों की विवेचना करिये|

इकाई 4. निदान : अर्थ एवं वर्गीकरण का उद्देश्य; DSM-IV: विकृति या असामान्यता का वर्गीकरण (Diagnosis: Meaning and Purpose of Classification; DSM-IV: Classification of Abnormality)

इकाई संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 वर्गीकरण
4.3.1 वर्गीकरण के उद्देश्य तथा लाभ
4.4 निदान एवं परिभाषायें
4.5 DSM-IV का वर्गीकरण
4.5.1 प्रथम धुरी या अक्ष
4.5.2 द्वितीय धुरी या अक्ष
4.5.3 तृतीय धुरी या अक्ष
4.5.4 चतुर्थ धुरी या अक्ष
4.5.5 पंचम धुरी या अक्ष
4.6 DSM-IV के गुण
4.7 DSM-IV की आलोचनायें
4.8 DSM-IV की आवश्यकता
4.9 निष्कर्ष
4.10 सारांश
4.11 शब्दावली
4.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.14 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

मानसिक व्यवहारों या विकृतियों का वर्गीकरण करके अर्थात् उन्हें विभिन्न श्रेणियों में बॉटकर हम असामान्य व्यवहार के स्वरूप, कारणों तथा उपचार की एक योजना बना पाते है। इन मानसिक विकृतियों को श्रेणी या वर्ग में बॉटने की प्रविधि को निदान कहा जाता है।

असामान्य व्यवहारों या मानसिक विकृतियों के वर्गीकरण का इतिहास यूनानी चिकित्सक हिप्पोकेट्स ने शुरू किया। उन्होनें इन विकृतियों को उत्साह, विषाद एवं उन्माद तीन श्रेणियों में विभाजित किया। 1856-1926 में क्रिपालिन

ने लक्षणों के आधार पर मानसिक रोगों को अलग-अलग वर्गों में बॉटा और तभी से आधुनिक वर्गीकरण तंत्र की शुरूआत हुई। 1948 में अमेरिकन मनोचिकित्सक संघ (APA) द्वारा इस वर्गीकरण की विधिवत् स्थापना की गयी। 1952 में DSM.I अर्थात् इाइग्नोस्टिक एण्ड स्टैस्टिकल्स मैनुअल ऑफ मेन्टल डिसआडर्स का प्रथम वर्गीकरण तन्त्र प्रकाशित हुआ। इसके बाद DSM.II DSM.III एवं 1994 में DSM-IV प्रकाशित हुआ। ये मानसिक रोगों के वर्गीकरण का एक नवीन एवं वैज्ञानिक वर्गीकरण तंत्र है। इसमें पॉच अलग-अलग धुरी या अक्ष पर मानसिक रोगों के वर्गीकरण को दिखाया गया है। 2000 में DSM-IV का नवीनतम वर्गीकरण भी प्रकाशित हो चुका है जिसे DSM-IV TR कहा जाता है।

इस इकाई के अन्तर्गत हम वर्गीकरण एवं निदान के अर्थ एवं उद्देश्यों को समझ तथा DSM-IV के वर्गीकरण का अध्ययन कर सकेगें।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य है-

i) असामान्य व्यवहारों या विकृतियों के वर्गीकरण एवं निदान के बारे में जानना।

ii) DSM-IV के अन्तर्गत मानसिक विकृतियों को किस प्रकार वर्गीकृत किया है, उसका अध्ययन करना।

4.3 वर्गीकरण

वर्गीकरण का अर्थ होता है कि असामान्य व्यवहारों को कुछ निश्चित आधारों, निश्चित प्रकारों, श्रेणियों या वर्गो में बॉट देना। इससे उनके स्वरूप को ठीक तथा स्पष्ट रूप से समझा जा सके। असामान्य व्यवहारों का वर्गीकरण मनोचिकित्सकों एवं नैदानिक मनोवैज्ञानिकों का एक मुख्य विषय रहा है। वर्गीकरण या श्रेणीकरण करके हम असामान्य व्यवहार या कुसमायोजी व्यवहार के स्वरूप को समझने, उसके कारणों को जानने तथा उसके उपचार के लिए योजना बना पाते है।

4.3.1 वर्गीकरण के उद्देश्य तथा लाभ

वर्गीकरण की आवश्यकता निम्नलिखित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए जरूरी होती है-

1. **निदान के लिए -** जब मानसिक विकृतियों का वर्गीकरण हो जाता है, तो उसके निदान में बहुत मदद मिलती हैं। इससे उस विकृति के लिए उपयुक्त चिकित्सा विधि के चयन में सुविधा होती है।

2. **संचार के लिये-** जब असामान्य व्यवहार का वर्गीकरण किया जाता है, तो उसका वर्ग या श्रेणी स्वयं संचारक बन जाता है। जैसे यदि असामान्य व्यक्ति को मानसिक मन्दता की श्रेणी में रखा जाता है तो वह चिकित्सक के लिए स्वयं संचारक बन जायेगा कि उस रोगी की बौद्धिक योग्यता सीमित है, स्मरण तथा चिन्तन क्षमता बहुत कम है आदि।

3. **वर्णन के लिए-** मानसिक विकृतियों के वर्गीकरण से यह लाभ है कि रोगी के सम्बन्ध में एक विवरण दिया जा सकता है अर्थात् उसकी बीमारी का वर्णन किया जा सकता है जैसे - किसी मानसिक विकृति को किसी खास वर्ग में रखने पर यह विवरण या वर्णन आसान हो जाता है कि उस रोगी का व्यवहार कैसा होगा, वह कैसा व्यवहार करेगा आदि।

4. **भविष्यवाणी के लिये-** मानसिक वर्गीकरण का उद्देश्य उस रोग या रोगी के सम्बन्ध में भविष्यवाणी करना है जैसे- यदि किसी मानसिक विकृति को मनोविकृति की श्रेणी या वर्ग में रखा जाता है तो इसके आधार पर आसानी से ये भविष्यवाणी की जा सकती है कि उपचार के बाद ये विकृति फिर से विकसित हो सकती है।

5. **अनुसंधान में-** वर्गीकरण में समान लक्षण वाले रोगियों को एक वर्ग में रखा जाता है, जिससे अनुसंधानकर्ताओं को सुविधा प्राप्त होती है। वह जान सकते है कि इन सबमें उभयनिष्ठ चीज क्या है? इसके आधार पर अनुसंधान में मदद मिल सकती है।

4.4 निदान

जब मानसिक विकारों का वर्गीकरण विभिन्न श्रेणियों में किया जाता है तो व्यवहारपरक एवं मनोवैज्ञानिक पैटर्न के अनुसार इस श्रेणीकरण को ही निदान कहते है। निदान श्रेणीकरण की एक प्रविधि है। जब निदान मनोवैज्ञानिक विधियों द्वारा किया जाता है तो इसे मनोनिदान कहते है।

परिभाषायें -

कोलमैन के अनुसार **''निदान का अर्थ किसी रोग विशेष का लेबल लगाना मात्र नहीं है, बल्कि रोग विशेष के लक्षणों की पूरी जानकारी प्राप्त करना है तथा रोग के बढ़ने में उसके जैविक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक कारकों का मूल्यांकन करके उसका उपचार करना है।**''

सैलिगमैन एवं रोजेनहान (1998) के अनुसार **''व्यवहार परक एवं मनोवैज्ञानिक पैटर्न के अनुसार मनोवैज्ञानिक विकृतियों के श्रेणीकरण को निदान कहते है।**''।

4.5 DSM IV का वर्गीकरण

DSM IV का प्रकाशन 1994 में हुआ। ये मानसिक रोगों के वर्गीकरण का एक नवीन एवं वैज्ञानिक वर्गीकरण तंत्र है। इसमें मानसिक रोगों को वर्गीकृत करने के लिए एक बहुआयामीय वर्गीकरण तंत्र का उपयोग किया गया है।

इस तंत्र में व्यक्ति को पाँच अलग-अलग विमाओं (9 axis) पर रेट किया जाता है। इसमें 2 विमाओं में मानसिक रोगों के वर्गीकरण को दर्शाया गया है तथा अन्य तीन विमाओ axis (III,IV,V) में कई अन्य तरह की अतिरिक्त संगत सूचनाओं को इक्ठ्ठा करने की कोशिश की जाती है।

इस तंत्र के द्वारा ये पता चलता है कि मानसिक रोगो को समझने के लिए उस रोग के लक्षण के अलावा अन्य सूचनाओं के पूरे मूल्यांकन में महत्व देना चाहिए।

DSM IV का वर्गीकरण

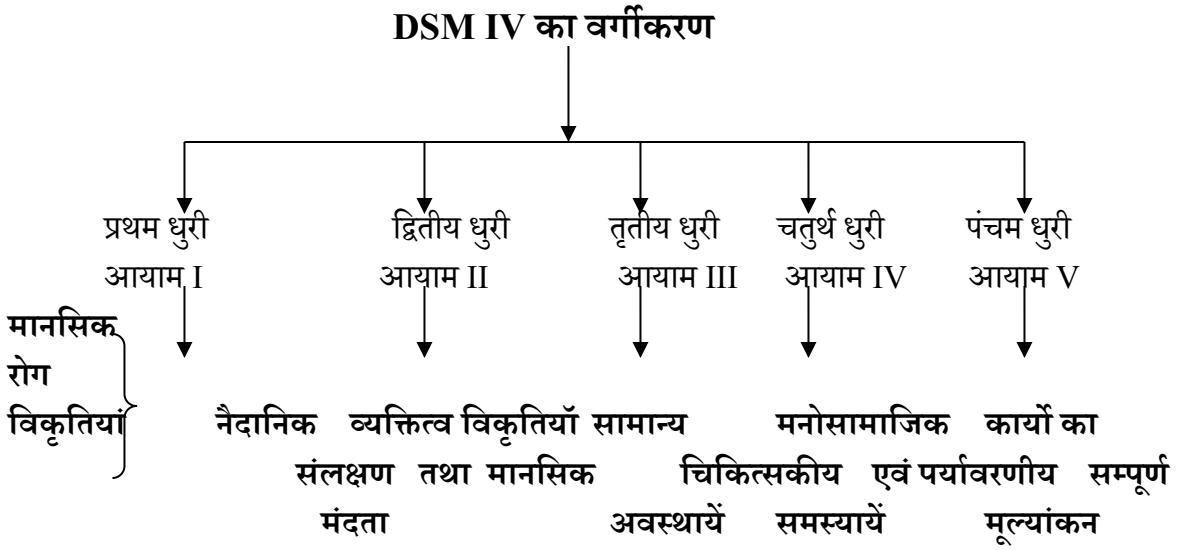

अब हम मानसिक विकारों के नवीनतम वर्गीकरण DSM. IV के अन्तर्गत आने वाले पॉच अक्षों या आयामों का वर्णन करेंगें।

प्रथम धुरी (AXIS-I) या आयाम मे व्यक्तित्व विकृतियों तथा मानसिक दुर्बलता को छोड़ कर अन्य सभी मानसिक रोगों को रखा गया है।

द्वितीय धुरी (AXIS-II) या आयाम में व्यक्तित्व विकृतियों तथा मानसिक दुर्बलता के रोगियों का वर्णन है। इस प्रकार प्रथम तथा द्वितीय अक्ष असामान्य व्यवहार का वर्गीकरण प्रस्तुत करते है। शेष तीन अक्षो (धुरियों) के रोगी के लक्षणों के अतिरिक्त अन्य पक्षों के महत्त्व को समझने के लिए रखा गया है।

तृतीय धुरी (AXIS-III) या आयाम रोगी की सामान्य चिकित्सीय दशा से सम्बन्धित है जो उसके मानसिक रोग से जुड़ी हुई हो सकती है। उदाहरणार्थ, रोगी को पहले कभी दिल का दौरा पड़ा हो इत्यादि।

चतुर्थ धुरी (AXIS-IV) या आयाम में रोगी की मनो-सामाजिक तथा वातावरण सम्बन्धी समस्याओं का वर्णन है, जैसे निवास की समस्या, कोई दुःखद या अनचाही घटना, पारिवारिक तनाव इत्यादि। अनेक रोगियों में रोग के कारण समायोजन की कमी से सामाजिक समस्यायें उत्पन्न हो सकती है।

पंचम धुरी (AXIS-V) या आयाम में व्यक्ति के क्रिया-कलापों का मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, व्यावसायिक आधार पर समग्र मूल्यांकन किया जाता है। इसे GAF कहा जाता है, अर्थात **Global Assessment of Functioning**। इसके द्वारा मूल्यांकन 1 से 100 अंको के मध्य रेटिंग के रूप में होता है। कम रेटिंग गम्भीर असामान्यता को व्यक्त करती है, जैसे-जैसे अंक बढ़ते है, यह व्यक्ति की उच्च स्तरीय समायोजनशीलता को व्यक्त करते है। उदाहरण - यदि रोगी के 8 अंक आते है तो वह बार-बार आत्महत्या का प्रयास कर सकता है तथा

आक्रामक व्यवहार दिखा सकता है और यदि वह 90 से ऊपर अंक प्राप्त करता है तो वह मानसिक रूप से स्वस्थ होगा।

इस प्रकार DSM. IV में प्रत्येक रोगी को इन सभी पाँचों आयामों से सम्बन्धित जानकारी एकत्रित की जाती है। अब हम प्रत्येक अक्ष (धुरी-AXIS) के बारे में विस्तार से अध्ययन करेंगें।

4.5.1 प्रथम धुरी या अक्ष (AXIS-I) आयाम-

व्यक्तित्व विकृतियों तथा मानसिक दुर्बलता को छोड़कर बचे हुये समस्त असामान्य व्यवहारों को प्रथम धुरी या अक्ष में वर्गीकृत किया गया है। मुख्य प्रकार निम्नवत है -

i) शैशवकाल, बचपन अथवा किशोरावस्था की प्रथम बार निदान की गई विकृतियाँ मानसिक दुर्बलता को छोड़कर (जिसे अक्ष. IV में रखा गया है) शैशव, बचपन तथा किशोरावस्था के मानसिक विकार इस श्रेणी में आते है। इसके अन्तर्गत सीखने सम्बन्धी विकृतियाँ जैसे पढ़ने/गणित/लिखने आदि के दोष, गति सम्बन्धी दक्षता की विकृतियाँ जैसे गति सम्बन्धी समायोजन की विकृतियॉं, ध्यान न लगना, भोजन खिलाने अथवा खाना खाने सम्बन्धी शैशवकालीन व बचपन की विकृतियॉं, विभिन्न प्रकार के टिक्स (tics) भाषा द्वारा सम्प्रेषण की विकृतियॅा, मल-मूत्र त्याग सम्बन्धी दोष तथा शैशवकालीन व बाल्यकाल की अन्य विकृतियाँ, मूकता इत्यादि।

ii) प्रलाप व मूर्च्छा, चित्त विक्षेप, स्म्रति ह्नास तथा अन्य संज्ञानीय विकृतियाँ ,साधारण चिकित्सीय दशा, मादक द्रव्यों के सेवन अथवा मादक द्रव्य न मिलने से उत्पन्न मूर्च्छा, स्मृति ह्रास की स्थितियाँ।

iii) मादक पदार्थो के सेवन सम्बन्धी विकृतियाँ . शराब, कोकीन, एम्फीटामिन, कैफीन, भांग, अफीम, गांजा, चरस, धतूरे आदि पदार्थो में से एक या अधिक के सेवन से व्यक्ति की दैहिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक दशाओं में अनुपयुक्त दोषपूर्ण स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती है।

(iv) साधारण चिकित्सीय दशा से उत्पन्न मानसिक विकृतियाँ . किसी विशिष्ट चिकित्सीय दशा के कारण उत्पन्न मानसिक विकार इस वर्ग के अन्तर्गत आते है।

(v) मनोविदलता एवं अन्य मनोविकृतियाँ - इसके अन्तर्गत मनोविदलता, व्यामोह, सूक्ष्म मनोविक्षिप्तता तथा साधारण चिकित्सीय दशाओं एवं मादक द्रव्यों से उत्पन्न मनोविकार आते है।

इन रोगियों में वास्तविकता को परखने तर्क, पूर्ण चिन्तन-बोलने एवं व्यवहार करने, सहजता आदि क्षमताओं में गम्भीर विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती है।

मनोविकृति एक क्रियागत अथवा गैर-आंगिक विकृति है, जिसमें रोगी का सम्बन्ध वास्तविकता से टूट जाता है। मनोविदलता या सीजोफ्रेनिया इसका मुख्य प्रकार है, ये एक गम्भीर मानसिक विकृति है, जिसमें प्रतिगमन मनोरचना की प्रधानता होती है। रोगी का सम्बन्ध वास्तविकता से टूट जाता है। मनोविदलता के कई प्रकार है- जैसे - स्थिर व्यामोह मनोविदलता, हेबीक्रेनिक आदि। मनोविकृति का दूसरा प्रकार व्यामोह या पैरानायड है। इसमें कई प्रकार के व्यामोह विकसित हो जाते है। जैसे - लैंगिक व्यामोह, धार्मिक व्यामोह आदि।

ये व्यामोह रोगी के भीतर व्यवस्थित रूप में होते है जिसके आधार पर रोगी का निदान संभव होता है। इसमें रोगी की बौद्धिक क्षमता में कमी नहीं आती और वह सामान्य व्यक्ति की तरह दिखाई देता है।

(vi) भावात्मक विकृतियाँ (मनःस्थिति विकृतियाँ)- इसके अन्तर्गत विषाद के रोगी, उत्साह के रोगी, उत्साह-विषाद दोनों के बारी-बारी से उपस्थित होने वाले रोगी तथा साधारण चिकित्सीय दशाओं एवं मादक द्रव्यों से उत्पन्न भावात्मक रोगी आते है। मनोविकृति का तीसरा मुख्य प्रकार द्विध्रुवीय विकृति है। इसमें रोगी की मनोदशा अत्यधिक सुखद से अत्यधिक दुखद के बीच बदलती रहती है। उत्साह अवस्था में उसकी मनोगतिक क्रियाये बढ जाती है। जैसे -आशावादी विचार, उत्तेजना आदि जबकि विषाद अवस्था में वह निष्क्रिय तथा निराशावादी हो जाता है।

(vii) चिन्ता विकृतियाँ - असंगत भय, मनोग्रस्तता-बाध्यता विकृति, सामान्यीकृत चिन्ता विकार, किसी साधारण चिकित्सीय दशा से उत्पन्न चिन्ता विकृति, मादक पदार्थो के सेवन से उत्पन्न चिन्ता-विकार से सम्बन्धित रोगी इसके अन्तर्गत आते है। दुर्भीति या फोबिया एक मानसिक रोग है। यह एक प्रकार की चिन्ता विकृति है इसमें किसी वस्तु या परिस्थिति के प्रति रोगी को अत्यधिक भय उत्पन्न हो जाता है, जो कि वास्तव में खतरनाक नहीं होता है। चिन्ता विकृति का दूसरा महत्वपूर्ण प्रकार मनोग्रसित-बाध्यता है। मनोग्रस्ति एक मानसिक क्रिया या विचार है, जो रोगी की इच्छा के विरूद्ध आता है, ये विचार अतार्किक होता है और उस पर उसका कोई नियंत्रण नहीं होता है। बाध्यता का अर्थ है कि किसी क्रिया को बार-बार करने के लिए बाध्य (मजबूर) होना। यह क्रिया भी अतार्किक होती है और रोगी के नियंत्रण में नहीं होती।

जैसे- बार-बार हाथ धोना, बार-बार बन्द ताले को देखना आदि। सामान्यीकृत चिन्ता विकार से सम्बन्धित रोगियों में चिन्ता इतनी अधिक बढ़ जाती है कि उसके लिये किसी उत्तेजना परिस्थिति की आवश्यकता नहीं होती है।

(viii) शारीरिक लक्षणों से युक्त विकृतियाँ -इन रोगियों में शारीरिक लक्षण तो विद्यमान रहते हैं किन्तु उनका कारण दैहिक नहीं होता। इस रोग में व्यक्ति शारीरिक लक्षणों या समस्याओं की शिकायत करता है, परन्तु वास्तव में उसका कोई दैहिक आधार नहीं होता है। जैसे - रोगी में अंधेपन की शिकायत होने पर उसकी आँखों में किसी प्रकार की कोई समस्या नहीं होती है। इन शारीरिक लक्षणों के विकसित होने में मनोवैज्ञानिक द्वन्द्वों का हाथ होता है।

(ix) कृत्रिम विकृतियाँ -शारीरिक अथवा व्यवहार जनित लक्षण रोगी अपनी इच्छा से उत्पन्न करता है जिसे एक बेचारा रोगी व्यक्ति समझा जाता है, वह प्रायः सफेद झूठ बोलता है। इस श्रेणी में उन रोगियों को रखा जाता है जो जानबूझकर असामान्य दैहिक या मनोवैज्ञानिक लक्षण अन्य लोगों को दिखाते है, ताकि लोग उन्हें बीमार समझ कर उन पर ध्यान दें।

x) वियोजनात्मक विकृतियाँ -इसके अन्तर्गत वियोजनात्मक स्मृति ह्रास विकृति, फ्यूगए वियोजनात्मक बहु-व्यक्तित्व, डिपर्सोनलाइजेशन विकृति आदि आते है। इन रोगियों में चेतना, स्मृति अथवा व्यक्तित्व अस्थायी रूप से परिवर्तित हो जाता है। इनमें स्मरण का ह्रास, चेतना का ह्रास, स्वयं की पहचान को भूल जाना, घर से दूर भाग कर चला जाना और अपनी पूर्व पहचान भूल जाना, एक ही व्यक्ति का दो या तीन या अधिक व्यक्तित्वों में बदल जाना और एक व्यक्तित्व को दूसरे की चेतना का बिलकुल न होना आदि लक्षण आते है।

(xi) कामजनित एवं लैंगिक विकृतियाँ - इसके अन्तर्गत सेक्स से सम्बन्धित अनेक विकृतियाँ जैसे सेक्स की अत्यधिक इच्छा, सेक्स की इच्छा न रखना, सेक्स से दूर भागना या डरना, स्वयं को सेक्स के लिए सक्षम न समझना, शीघ्र पतन हो जाना, सेक्स के प्रति ग्लानि व घृणा रखना इत्यादि लक्षण विद्यमान रहते है। इसके अतिरिक्त बच्चों

के साथ मैथुल, जननेन्द्रियों के अतिरिक्त शरीर के अन्य अंग से सेक्स इच्छाओं को पूरा करना (जूता, बाल, रूमाल, इत्र, वस्त्र, अथवा शरीर के अंग पैर आदि) जननेन्द्रियों को विपरीत लिंग के लोगों या बच्चों को प्रदर्शित करना, परपीड़न में काम-तृप्ति, स्वपीड़न के रूप में कामतृप्ति, शव-प्रेम, पशु मैथुन, नपुंसकता, बलात्कार, सगे लोगो के साथ संभोग (भाई-बहिन, पिता-पुत्री)ए तांक झाँक करके कामतृप्ति, समलैंगिकता तथा विपरीत लिंग के व्यक्ति के समान वस्त्र धारण करना आदि भी सेक्सुअल विकृतियों के रूप में है।

(xii) भोजन सम्बन्धी विकृतियाँ -इसके अन्तर्गत खाने की आदत से सम्बन्धित विकृतियों को रखा गया है, भूख का मर जाना या विशेष प्रकार के भोजन का त्याग अर्थात् एनोराक्सिया नरवोसा अर्थात् बुल्मिया नरवोसा इसके प्रमुख प्रकार है।

(xiii) निद्रा जनित विकृतियाँ -अनिद्रा, सोते समय श्वास का रूकना, सोने व जागने के क्रम में व्यवधान, भयावह स्वप्नों से नींद भंग होना, निद्रा विचरण अर्थात् नींद में चलना, अन्य मानसिक रोग के कारण नींद सम्बन्धी विकार, साधारण चिकित्सीय दशा तथा मादक द्रव्यों के सेवन से नींद सम्बन्धी विकार इसके अन्तर्गत आते है।

(xiv) आवेग नियंत्रण विकृतियाँ -इन मानसिक विकारों में रोगी का अपने आवेगों पर नियंत्रण नहीं रहता है। इस विकृतियों के अन्तर्गत बीच-बीच में अत्यधिक उत्तेजित हो जाना, चोरी का बाध्यात्मक व्यवहार (क्लिप्टोमेनिया),आग लगाना (पायरोमेनिया), बाध्यात्मक रूप से जुआ खेलना आदि आवेगों पर नियंत्रण न रख सकने के कारण उत्पन्न विकार सम्मिलित है।

(xv) समायोजनात्क विकृतियाँ - इन विकृतियों में रोगी किसी भी क्षेत्र में पर्याप्त समायोजन नहीं कर पाता है। समायोजनात्मक विकृति चिन्ता, विषादात्मक मूड, आचरण की विकृति, संवेग व आचरण दोनो के साथ इन रोगियों में पाई जा सकती है।

(xvi) अन्य दशायें जो नैदानिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हों -इस श्रेणी में वे सभी अवस्थायें आती है जिन्हें मानसिक रोग की श्रेणी में तो नहीं रखा जा सकता है परन्तु फिर भी वे व्यक्ति के लिए समस्या उत्पन्न करती है जैसे नौकरी छूट जाना, शैक्षिक व्यवसायिक समस्यायें आदि।

4.5.2 द्वितीय धुरी या अक्ष (Axis-II)

DSM-IV में इस वर्ग के अन्तर्गत व्यक्तित्व विकृतियो तथा मानसिक दुर्बलता को सम्मिलित किया गया है। ये दशायें बाल्यावस्था अथवा किशोरावस्था में उत्पन्न हो सकती है और प्रौढ़ जीवन में भी बनी रह सकती है। मानसिक रोगों के वर्गीकरण में व्यक्तित्व विकृतियों का रखना महत्वपूर्ण माना गया है।

(i) व्यक्तित्व विकृतियाँ - व्यक्तित्व विकृतियाँ एक प्रकार की मानसिक विकृतियाँ होती है, परन्तु इनमें अन्य विकृतियों से कम विचलन होता है। इसमें व्यक्ति के शीलगुण इस हद तक असमायोजित हो जाते है, जिसके कारण उसका सामाजिक तथा व्यवसायिक व्यवहार गड़बड़ हो जाते है अर्थात् इस तरह के विचार उसके मन में आते है जो उसके समायोजन में बाधा डालते है, जिसके कारण आपसी सम्बन्ध भी खराब हो जाते है। इसके अन्तर्गत असामाजिक व्यक्तित्व, मनोग्रस्ति-बाध्यता व्यक्तित्व, पराश्रित व्यक्तित्व विकृति आदि आते है।

(ii).मानसिक मन्दता या मानसिक दुर्बलता - इसके अन्तर्गत वे व्यक्ति रखे जाते है जिनकी बुद्धि लब्धि सामान्य से कम होती है। ऐसे रोगी समाज में एक सामान्य व्यक्ति की तरह से जीवन-यापन नहीं कर पाते है। इस विकृति के निम्न कारण हो सकते है।

1. वंशानुगत प्रभाव से
2. जन्म से पूर्व या जन्म के समय या 18 वर्ष से पहले मानसिक विकास रूक जाना

मानसिक मन्दता में व्यक्ति की बुद्धिलब्धि 70 से कम होती है। उसके दैनिक कार्य बाधित हो जाते है आदि। इन रोग में समायोजन हीनता के कारण अन्य रोगों की तरह चिन्ता, संवेगात्मक असंतुलन या व्यक्तित्व विघटन नहीं होता है। इनमें बुद्धि का सीमित तथा अपर्याप्त विकास होता है। मात्रात्मक स्तर पर मानसिक मन्दता के निम्नलिखित प्रकार है-

a) **जड़ -** जिसकी बुद्धि लब्धि 25 से भी कम होती है।
b) **मूढ़ -** जिसकी बुद्धि लब्धि 25 से 50 के बीच होती है।
c) **मूर्ख -** जिसकी बुद्धि लब्धि 51 से 70 के बीच होती है।

4.5.3 तृतीय धुरी या अक्ष (Axis-III)-

वर्गीकरण के इस भाग में सामान्य चिकित्सीय दशाओं का वर्णन किया जाता है। मानसिक रोगी यदि पहले कभी किसी शारीरिक रोग से पीड़ित रहा है उसका विवरण दिया जाता है। जैसे-क्या वह तपेदिक, हृदय रोग, डाइबिटीज या अन्य रोगों से ग्रस्त रहा है। वर्तमान में उसे कौन-सी शारीरिक बीमारी आदि। इन बीमारियों के कारण उसे क्या-क्या समस्यायें महसूस होती है आदि।

4.5.4 चतुर्थ धुरी या अक्ष (Axis-IV)-

वर्गीकरण के इस आयाम में रोगी की मनो-सामाजिक तथा पर्यावरण जनित समस्याओं का विवरण निहित है। इससे रोगी के निदान तथा उपचार में सहायता मिलती है। इससे सम्बन्धित निम्नलिखित समस्यायें है-

a) माता-पिता, परिवार के अन्य सदस्य से सम्बन्धित समस्यायें
b) सामाजिक वातावरण से सम्बन्धित समस्यायें
c) शैक्षिक समस्यायें
d) व्यवसाय से सम्बन्धित समस्यायें
e) निवास की समस्या
f) स्वास्थ्य-सेवाओं की उपलब्धि की समस्या
g) कानून/अपराध से सम्बन्धित समस्या
h) अन्य मनो-सामाजिक एवं वातावरण सम्बन्धित समस्यायें

4.5.5 पंचम धुरी या अक्ष (Axis-v)-

इसमें व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक सामाजिक तथा व्यावसायिक क्रिया-कलाप के आधार पर उसका समग्र मूल्यांकन किया जाता है। इसमें शारीरिक या वातावरण जनित कारणों से उत्पन्न अवरोधों को नहीं रखा गया है। कार्य-कलापों का समय मूल्यांकन एक स्केल पर किया जाता है जिसे GAF Scale कहा जाता है। इस पैमाने पर प्राप्त विभिन्न अंकों का मूल्यांकन नीचे बनी मापनी द्वारा दिखाया गया है।

समग्र निर्धारण की क्रियात्मक मापनी

GLOBAL ASSESSMENT OF FUNCTIONING SCALE (GAF SCALE),

100 | 91	प्रत्येक क्षेत्र से सम्बन्धित समायोजित क्रियायें अधिक मात्रा में विद्यमान, मानसिक रोग का कोई लक्षण नहीं, मानसिक दृष्टि से अत्यन्त स्वस्थ व्यक्तित्व
90 | 81	मानसिक रोग का कोई लक्षण नहीं या हल्का लक्षण जैसे परीक्षा के समय हल्की चिन्ता, छोटी-मोटी खटपट के अलावा सामाजिक सम्बन्ध प्रेमपूर्वक
80 | 71	यदि कोई लक्षण है तो अस्थायी तौर पर ही, सामाजिक, व्यवसायिक तथ स्कूल से सम्बन्धित केवल छोटी-मोटी समस्यायें है।
70 | 61	कुछ हल्के लक्षण जैसे थोड़ा विषाद या नींद में कमी, सामाजिक, व्यवसायिक अथवा स्कूल से सम्बन्धित कुछ कठिनाइयों का होनाय क्रिया-कलाप अर्थपूर्ण तथा सामाजिक सम्पर्क भी ठीक-ठाक
60 | 51	मध्यम स्तरीय लक्षणय आपसी सम्बन्धों में कुछ अधिक कठिनाइयों की उपस्थिति

50 | 41	गम्भीर लक्षण जैसे आत्महत्या के विचार, अनचाही क्रियाओं की बाध्यता, सामाजिक, व्यवसायिक, स्कूल की गम्भीर समस्याये जैसे-मित्र न होना, किसी व्यवसाय को बनाये रखने में अक्षम
40 | 31	वास्तविकता के परखने में कुछ कमी, बातचीत में स्पष्टता व संगति की कमी, मित्रों से दूर भागना, परिवार को अनदेखा करना, विषाद की अधिकता, परिवार व स्कूल से दूर भागना इत्यादि
300 | 21	व्यामोह की उपस्थिति, निर्णय का अभाव, दिन भर लेटा रहना, कोई काम न करना, आत्महत्या का विचार
20 | 11	स्वयं व दूसरों को चोट पहुंचाना, आत्महत्या के प्रयत्न करना, शारीरिक स्वच्छता पर ध्यान न देना, बातचीत अस्पष्ट व मूकता की दशा, आक्रामक व्यवहार, अत्यधिक उत्तेजनापूर्ण उत्साह प्रदर्शन
10 | 1	स्वयं व दूसरे को चोट पहुँचाने का निरन्तर प्रयास, अत्यन्त आक्रामक व्यवहार स्वयं को स्वच्छ रखने में असमर्थ, आत्महत्या का निरन्तर प्रयत्न और मृत्यु की संभावना

1) GAF Scale पर कम अंक गम्भीर असामान्यता के द्योतक है। जैसे-जैसे अधिक अंक मिलते जाते है, समायोजनशीलता बढ़ती जाती है। इस प्रकार 91-100 अंक प्राप्त व्यक्ति सर्वाधिक समायोजित स्वस्थ प्रभावकारी तथा और 1-10 तक अंक पाने वाला व्यक्ति सर्वाधिक मानसिक रोगों से ग्रस्त होगा।

4.6 DSM -IV के गुण

1. DSM दृIV के पॉचों आयाम या अक्ष अधिक विशिष्ट, विस्तृत एवं वैज्ञानिक आंकड़ों पर आधारित है।
2. इसमें लगभग 300 मानसिक विकृतियों का वर्णन है जो अपने आपमें एक उच्च रिकॉर्ड है।
3. इसमें प्रत्येक मानसिक विकृति के निदान के लिए कुछ स्पष्ट कसौटी बनी है।
4. इसमें प्रत्येक विकृति की नैदानिक विशेषताओं का उल्लेख है तथा इसमें विशिष्ट आयु, संस्कृति, प्रचलन, जटिलतायें एवं पारिवारिक पैटर्न आदि का भी उल्लेख किया गया है।

5. इसमें विभिन्न मानसिक विकृतियों का वर्गीकरण बहुत गहनता से किया गया है ।

4.7 DSM-IV की आलोचनायें -

1. DSM दृIV में वर्गीकरण की जितनी श्रेणियॉ है उनके द्वारा मानसिक रोगों का वर्णन होता है, उनकी व्याख्या नही होती है।

2. इसमें केवल व्यक्तिगत व्यवहार का लेखा जोखा दिखाया जाता है।

3. इसमें बाल्यावस्था की बहुत सारी समस्याओं को मनोचिकित्सकीय विकृति में लाने का प्रयास किया गया है परन्तु उसका कोई उपयुक्त कारण नही बतलाया गया है ।

DSM -IV की आवश्यकता

WHO ने 1993 में ICD-10 को प्रकाशित किया, जिसमें स्पष्ट वर्गीकरण नहीं हो सका अतः DSM IV की आवश्यकता हुई।

1) निदान कार्य के आनुभाविक आधार को बढ़ाने के विचार से DSM IV का निर्माण आवश्यक हो गया।

2) DSM III तथा DSM II R में मानसिक विकृतियों के वर्गीकरण में अक्ष II, अक्ष IV तथा अक्ष V में मापनी सम्बन्धी त्रुटि के कारण DSM IV का निर्माण किया गया।

4.8 निष्कर्ष:-

DSM-IV में विभिन्न मानसिक रोगियों का वर्गीकरण बहुत गहनता से किया गया है। कई बार मनोचिकित्सक इतना सूक्ष्म वर्गीकरण करने में कठिनाई का अनुभव करते है। इस दिशा में और अधिक चिन्तन एवं अनुसन्धान की आवश्यकता है। DSM-IV पर एक आरोप यह है कि यह व्यक्ति की मानसिक दशा का विवरण समय के एक विशेष बिन्दु के लिये देता है, तथा उसके पूर्ण इतिहास पर बल नहीं देता है, जोकि अत्यन्त महत्वपूर्ण है। DSM-IV में रोग के कारण पक्ष पर विशेष ध्यान व महत्त्व नही दिया गया है।

इन अभावों के बावजूद DSM-IV में व्यक्ति के बहुआयामी या धुरीय विशलेषण पर जोर देना इसका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण गुण है। इससे असामान्य व्यवहार को समझने तथा रोगी के उचित मूल्यांकन की सम्भावनायें निहित है। DSM-IV से DSM.प्प्प् की तुलना में अधिक स्पष्ट तथा विस्तृत जानकारी प्राप्त की जा सकती है। DSM-IV की विश्वसनीयता भी अधिक है। ये तो आने वाला भविष्य ही बता पायेगा कि DSM-IV के आधार पर असामान्य व्यवहार के सम्बन्ध में जानकारी, असामान्यता की रोकथाम तथा उपचार हेतु किस सीमा तक उपयोगी तथा महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी। वास्तव में मानव मनोविज्ञान और विशेषकर असामान्य व्यवहार इतना जटिल, सूक्ष्म तथा गहन है कि इसको समझने हेतु लगातार प्रयास जरूरी है।

अभ्यास प्रश्न

1. समग्र मूल्यांकन मापनी द्वारा व्यक्ति के क्रिया-कलापो का मूल्यांकन …….. द्वारा किया जाता है।
2. DSM-IV में मानसिक विकारों …… अक्षो या धुरी में विभाजित किया है।
3. तृतीय धुरी या अक्ष के अन्तर्गत …….. .समस्यायें आती है।
4. क्लिप्टोमेनिया को …….. विकृतियो के अन्तर्गत रखा गया है |
5. मानसिक मन्दता के निम्नतम स्तर, जिसे जड़ कहा जाता है। इसकी बुद्धि लब्धि ……. होती है

4.10 सारांश

a) असामान्य व्यवहार या मानसिक विकृतियों के वर्गीकरण का तात्पर्य इसके भिन्न-भिन्न वर्गो या प्रकारों से है।

a) व्यवहारपरक एवं मनोवैज्ञानिक पैटर्न के अनुसार मनोवैज्ञानिक विकृतियों के वर्गीकरण को निदान कहते है।

a) वर्गीकरण के कई उद्देश्य है -1. निदान के लिए 2. संचार के लिए 3. वर्णन के लिए 4. भविष्यवाणी के लिए 5. अनुसंधान के लिए

a) DSM-IV मानसिक विकारों के वर्गीकरण का तंत्र है जिसमें इन विकृतियों को लक्षणों के आधार पर 5 अलग-अलग धुरियों या अक्ष या आयाम पर रखा गया है।

a) इसमें प्रथम व द्वितीय धुरी में विभिन्न मानसिक रोगों को वर्गीकृत किया है। तृतीय, चतुर्थ व पंचम धुरी में रोगी का चिकित्सकीय आधार, मनोसामाजिक व पर्यावरण आधार तथा मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा व्यवसायिक क्रिया कलापों के आधार पर मूल्यांकन किया जाता है।

4.11 शब्दावली

DSM-IV TR Diagnostic & Statistical Manual of Mental Disorder Text Revision
प्रतिगमन - एक रक्षायुक्ति या अहं प्रतिरक्षा रचना होती है। इसमें व्यक्ति जीवन की समस्याओं के समाधान हेतु या तनावपूर्ण परिस्थितियों से बचने के लिए बचपन की ओर लौटने की प्रवृत्ति रखता है।

4.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अंको
2. पाँच
3. सामान्य चिकित्सकीय अवस्थायें
4. आवेश नियंत्रण विकृतियाँ
5. 25 से कम

4.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान- अरूण कुमार सिंह-मोतीलाल बनारसीदास
2. आधुनिक नैदानिक मनोविज्ञान- डा0एच0के0 कपिल-हर प्रसाद भार्गव

3. असामान्य मनोविज्ञान- विषय और व्याख्या- डा0मुहम्मद सुलेमान, डा0 मुहम्मद तौवाव -मोतीलाल बनारसीदास

4.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मानसिक विकृतियों के वर्गीकरण से क्या तात्पर्य है? इन विकृतियों को किस-किस आधार पर वर्गीकृत किया जाता है?

2. निदान को परिभाषित करिये। निदान की आवश्यकता एवं उद्देश्यों पर प्रकाश डालिये।

3. DSM-IV के वर्गीकरण तंत्र की विशेषतायें बताइये। इसमें विभिन्न मानसिक विकृतियों को किस तरह वर्गीकृत किया गया है, समझाइये|

इकाई 5. मनोचिकित्सा: अर्थ एवं प्रकृति, हस्तक्षेप के मॉडल एवं मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा (Psychotherapy: Meaning and Nature, Models of Intervention and Psychoanalytic Therapy)

इकाई संरचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 मनोचिकित्सा या मनोपचार
5.3.1 मनोचिकित्सा अर्थ एवं प्रकृति
5.3.2 मनोचिकित्सा का स्वरूप
5.3.3 मनोचिकित्सा के उद्देश्य
5.4 नैदानिक हस्तक्षेप के मॉडल
5.4.1 नैदानिक हस्तक्षेप माँडल के उद्देश्य
5.4.2 नैदानिक हस्तक्षेप के प्रमुख मॉडल
5.4.2.1 मनोगत्यात्मक मॉडल
5.4.2.2 व्यवहारात्मक मॉडल
5.4.2.3 परिघटनात्मक माँडल
5.4.2.4 अन्तवैयक्तिक माँडल
5.5 मनोविश्लेषणवादी या मनोगत्यात्मक चिकित्सा
5.5.1 मनोविश्लेषणवादी चिकित्सा के उद्देश्य
5.5.2 मनोविश्लेषणवादी चिकित्सा के चरण
5.5.3 मनोविश्लेषणवादी चिकित्सा के गुण व दोष
5.6 सारांश
5.7 शब्दावली
5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

मनोचिकित्सा का उद्देश्य व्यक्तित्व समायोजन प्राप्त करने में रोगी की सहायता करना है। इसमें मनोवैज्ञानिक प्रविधियों द्वारा व्यक्ति की मानसिक समस्याओं एवं विकृतियों में चिकित्सक तथा रोगी के बीच पारस्परिक क्रिया आयोजित की जाती है जिसमें रोगी अपने विचारों व भावों को व्यक्त करता है। मनोचिकित्सा के अन्तर्गत

मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा आती है जिसमें अचेतन मन की दबी इच्छाओं एवं उलझनों को सुलझाकर उनका उपचार किया जाता है।

नैदानिक मनोविज्ञान में नैदानिक माँडलों का अत्यन्त महत्व है। ये एक ऐसा ढॉचा होता है, जिसमें मानव व्यवहार की व्याख्या अलग-अलग मनोवैज्ञानिकों द्वारा विभिन्न ढंग से की जाती है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के निम्नलिखित उद्देश्य है-

1. मनोचिकित्सा एवं मनोविश्लेषणवादी चिकित्सा का अर्थ, स्वरूप एवं उद्देश्यों का अध्ययन करना।
2. नैदानिक हस्तक्षेप के प्रमुख माँडलों का अध्ययन करना ।

5.3 मनश्चिकित्सा या मनोपचार

मानसिक एवं सांवेगिक रूप से अस्वस्थ व्यक्तियों का मनोवैज्ञानिक विधियों से उपचार करने को मनश्चिकित्सा कहा जाता है। इसे नैदानिक हस्तक्षेप भी कहा जाता है क्योंकि इसमें नैदानिक मनोवैज्ञानिक अपनी व्यवसायी या पेशेवर क्षमता का उपयोग करते है और मानसिक या सांवेगिक रूप से अस्वस्थ व्यक्ति के व्यवहार को बदलने की कोशिश करते है। मनश्चिकित्सा का उपयोग उन मानसिक रोगियों के लिए लाभकारी होता है जो मनः स्नायुविकृति से पीड़ित होते है। इसका उपयोग मनोविक्षिप्ति या मनोविकृति के रोगियों के साथ भी किया जाता है परन्तु ऐसे रोगियों को इसके साथ-साथ औषधि देना भी जरूरी होता है।

रौटर ,(1976) के अनुसार, **''मनश्चिकित्सा मनोवैज्ञानिक की एक सुनियोजित क्रिया होती है जिसका उद्देश्य व्यक्ति की जिन्दगी में ऐसा परिवर्तन लाना होता है जो उसकी जिन्दगी को भीतर से अधिक खुश तथा अधिक संरचनात्मक या दोनों ही बनाता है।**

5.3.1 अर्थ एवं प्रकृति

निटजील, वर्नस्टीन एवं मिलिक (1991) के अनुसार, ''मनश्चिकित्सा में कम-से-कम दो व्यक्ति होते है जिसमें एक को मनोवैज्ञानिक समस्याओं से निबटने की विशेष योग्यता एवं प्रशिक्षण प्राप्त होता है और दूसरा समायोजन मे समस्या का अनुभव करता है और वे दोनों इस समस्या को कम करने के लिए एक विशेष संबंध कायम करने की कोशिश करते है। इस संबंध के अर्न्तगत कई मनोवैज्ञानिक विधियों का उपयोग किया जाता है तथा रोगी के व्यवहार में परिवर्तन लाने का प्रयास किया जाता है।''

मनश्चिकित्सा में रोगी तथा चिकित्सक के बीच वार्तालाप होता है जिसके माध्यम से रोगी अपनी सांवेगिक समस्याओं एवं मानसिक चिन्ताओं को अभिव्यक्त करता है। चिकित्सक द्वारा उसे विशेष सहानुभूति, सुझाव एवं सलाह दिया जाता है ताकि उसका आत्म-विश्वास एवं आत्म-सम्मान कायम रह सके। धीरे-धीरे जिससे रोगी की समस्याएँ समाप्त होते चली जाती है और उसमें ठीक ढंग से समायोजन करने की क्षमता फिर से विकसित हो जाती है।

5.3.2 मनोपचार का स्वरूप

मनोपचार या मनश्चिकित्सा या नैदानिक हस्तक्षेप के मुख्य निम्नलिखित तीन भाग है-

1. सहभागी - मनश्चिकित्सा में दो सहभागी होते है. पहला सहभागी क्लायंट या रोगी होता है। **क्लायंट** वह व्यक्ति होता है जिसमें सांवेगिक या मानसिक अस्थिरता इतनी अधिक बढ जाती है कि उसे अपनी समस्याओ के समाधान के लिये चिकित्सक की मदद लेनी पडती है। मनश्चिकित्सा का दूसरा सहभागी **चिकित्सक होता** है। चिकित्सक वह व्यक्ति होता है जो क्लायंट या रोगी को उसकी समस्याओं से निबटने में मदद करता हो।

चिकित्सक के लिए निम्नलिखित व्यवसायिक गुण होने चाहिए|

1.वह प्रशिक्षित हो, वह क्लायंट की समस्याओं को समझ सके और उसके साथ ठीक ढंग से अन्तःक्रिया कर सके। उसमें क्लायंट की समस्याओं को ठीक ढंग से सुनने, समझने तथा संवेदनशीलता का भाव दिखाने की क्षमता होनी चाहिए।

2.चिकित्सीय संबंध -चिकित्सक तथा क्लायंट के बीच विशेष संबंध होता है, जिसे चिकित्सीय संबंध कहा जाता है। कोरचिन के अनुसार चिकित्सीय संबंध में आसक्ति (लगाव) तथा अनासक्तिक (अलगाव) का संतुलन होना चाहिए। एक उत्तम चिकित्सीय संबंध में निम्नलिखित गुण होने चाहिये-

1. चिकित्सक तथा रोगी दोनों ही चिकित्सा को सफल बनाने में व्यक्तिगत प्रयास करना चाहिये।
2. चिकित्सा के दौरान चिकित्सक तथा रोगी दोनो को ही समान दृष्टिकोण रखना चाहिये।
3. चिकित्सक तथा रोगी को एक-दूसरे की भलाई के लिए ध्यान देना चाहिये।

3.मनश्चिकित्सा की प्रविधि -मनोपचार या मनश्चिकित्सा की प्रमुख प्रविधियाँ इस प्रकार है-

a) सूझ उत्पन्न करना - इस प्रविधि में रोगी में आत्म-मूल्यांकन तथा आत्म-ज्ञान विकसित करने की कोशिश की जाती है। इसमें चिकित्सक रोगी को ये समझाता है कि वे क्यों इस तरह का व्यवहार करते है। यदि वे ऐसा समझ जाते हैं तो इससे नये व्यवहार की उत्पत्ति उसमें होती है जिसे सूझ कहा जाता है।

b) **सांवेगिक अशांति को कम करना -** मनश्चिकित्सा में रोगी के सांवेगिक अशांति की बहुत कम कर दिया जाता है ताकि वह चिकित्सा में आगे ठीक ढंग से सहयोग कर सके तथा अपने व्यवहार में स्थायी परिवर्तन लाने का प्रयास करें। जब रोगी यह समझता है कि चिकित्सक उसका एक व्यक्तिगत दोस्त है जिस पर भरोसा किया जा सकता है, तो उसमें स्वयं ही सांवेगिक स्थिरता उत्पन्न होती है।

c) विरेचन को प्रोत्साहित करना -चिकित्सक की उपस्थिति में रोगी को उसके संवेगों, भावों आदि को खुलकर व्यक्त करने के लिए कहा जाता है। इस प्रक्रिया को विरेचन कहा जाता है। इस तरह से विरेचन की प्रक्रिया द्वारा कुछ वैसे दबे हुए संवेग की अभिव्यक्ति होती है जिसे स्वयं रोगी बहुत समय पहले से नहीं जानता था। चिकित्सक ऐसे संवेगों को अभिव्यक्त करने में रोगी को भरपूर प्रोत्साहन देता है।

d) नयी सूचना देना -मनश्चिकित्सा द्वारा चिकित्सक रोगी को कुछ नयी-नयी सूचनाओं को देता है ताकि रोगी के वर्तमान व्यवहार में परिवर्तन किया जा सके।

e) रोगी में उम्मीद एवं विश्वास विकसित करना - अन्त में मनश्चिकित्सा से रोगी में परिवर्तन के लिए विश्वास तथा उम्मीद उत्पन्न हो जाती है। अपने विवेक द्वारा चिकित्सक हर तरह से परिस्थिति को इस ढंग से मोड़ते

है कि रोगी में यह विश्वास उत्पन्न हो जाए कि उसे मदद की जा रही है। धीरे-धीरे उसके व्यवहार में धनात्मक परिवर्तन होने लगते है तथा उनकी सांवेगिक समस्याएँ कम हो जाती है।

मनोपचार या मनश्चिकित्सा एक लम्बे समय तक चलने वाली प्रक्रिया है जिसमें चिकित्सक रोगी के साथ परस्पर मधुर सम्बन्ध बनाते है। जिससे रोगी की सांवेगिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं का हल हो पाता है।

5.3.3 मनश्चिकित्सा के उद्देश्य या लक्ष्य-

मनोपचार या मनश्चिकित्सा के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य है-

1) रोगी के अभिप्रेरण व साहसशक्ति को बढाना, ताकि वो सही व्यवहार कर सके ।
2) भावों की अभिव्यक्ति द्वारा सांवेगिक समस्याओं को कम करने में मदद करना।
3) अपनी आदतों को बदलने में मदद करना।
4) रोगी के आन्तरिक संघर्षो को एवं व्यक्तिगत तनाव को कम करना।
5) व्यर्थ के कार्यो एवं लक्ष्यों से उसके मन को हटाकर उसको अपनी सामर्थ्य पहचानने में सहायता करना।
6) रोगी को अपने वातावरण की वास्तविकताओं के साथ अच्छी तरह समायोजन करने में सहयोग प्रदान करना।
7) शारीरिक अवस्थाओं में परिवर्तन करना
8) रोगी में अनुपयुक्त व्यवहार को बढ़ाने वाले कारकों को दूर करना।
9) रोगी के सामाजिक वातावरण को परिवर्तित करना।
10) चेतन की वर्तमान अवस्था को परिवर्तित करना।

5.4 नैदानिक हस्तक्षेप के मॉडल -

नैदानिक मनोविज्ञान में मॉडल से तात्पर्य एक ऐसे ढाँचा से होता है जिसके द्वारा नैदानिक मनोविज्ञान में विशेषज्ञों द्वारा मानव व्यवहार की व्याख्या की जाती है। मॉडल से इस तथ्य की व्याख्या होती है कि कोई भी व्यवहार किस तरह से विकसित होता है और फिर वह किस तरह से समस्याक हो जाता है। इसके साथ ही समस्यात्मक व्यवहार का मूल्यांकन, उपचार का भी वर्णन होता है।

नैदानिक हस्तक्षेप के मॉडल

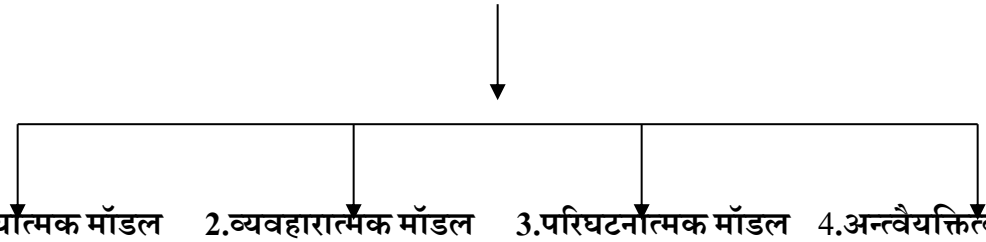

1.मनोगत्यात्मक मॉडल	2.व्यवहारात्मक मॉडल	3.परिघटनात्मक मॉडल	4.अन्त्वैयक्तित्वमॉडल
a)फायडिन मनाविश्लेषण	a)क्रिया प्रसूत सीखना	a)रोजर्स का आत्मसिद्धउपागम	
b)संबंधित मनोगत्यात्मक सिद्धान्त	b)क्लासिकी अनुबन्धन	b)मैस्लो का मानवीय अभिप्रेरणा का उपागम	
	c)सामाजिक सीखना	c)केली का वैयक्तिक संरचना उपागम	

5.4.1 नैदानिक हस्तक्षेप मॉडल के उद्देश्य

नैदानिक मनोविज्ञान में मॉडल के निम्नलिखित उद्देश्य है-

a) मॉडल नैदानिक मनोविज्ञानिकों के चिन्तनों को संगठित करने में मदद करता है।

b) मॉडल नैदानिक मनोविज्ञानिकों के निर्णयों एवं हस्तक्षेपों को निर्देशित करता है।

5.4.2 नैदानिक हस्तक्षेप के प्रमुख मॉडल

5.4.2.1 मनोगत्यात्मक मॉडल - इस मॉडल का सिगमंड फ्रायड ने प्रतिपादन किया था। इसमें उन्होने मानसिक रोगों के मनोवैज्ञानिक कारणों पर बल डाला। इस मॉडल की निम्नलिखित पूर्वकल्पनाएँ है जिसके आधार पर नैदानिक मनोविज्ञान मानव-व्यवहार की व्याख्या करते है तथा समस्यात्मक व्यवहार का उपचार भी करते है-

a) मानव व्यवहार का निर्धारण वैसे आवेगो, अभिप्रेरणों इच्छाओं एवं संघर्षो से होता है जो उसके चेतन में नही होते बल्कि अचेतन स्तर पर होते है।

b) सामान्य तथा असामान्य दोनो तरह के व्यवहार मन के भीतर होने वाले संघर्षो, इच्छाओं, आवेगों आदि के द्वारा उत्पन्न होते है

c) इन अंतरा मानसिक क्रियाओं का व्यक्ति सीधे प्रत्यक्षण नहीं कर सकता है परन्तु जब तक इनका स्पष्ट प्रत्यक्षीकरण नहीं किया जाता है, मानव व्यवहार को नहीं समझा जा सकता है और उसके समस्यात्मक व्यवहार का उपचार भी नहीं किया जा सकता है।

मनोगत्यात्मक मॉडल के अर्न्तगत निम्न दो उपागम आते है जिनके द्वारा इस मॉडल की व्याख्या की गयी है-

1. फ्रायडियन मनोविश्लेषण - उलमान्न एवं क्रैसनर (1975) ने फ्रायडियन उपागम या मनोविश्लेषण का एक मेडिकल मॉडल के रूप में वर्णन किया है। इस मॉडल के निम्नलिखित चार प्रकार है-

a) मानसिक नियतिवाद - इसके अर्न्तगत इस बात पर बल डाला जाता है कि मानव व्यवहार का कोई-न-कोई कारण अवश्य होता है। यह कारण ऐसा हो सकता है कि उसे बाहर से देखा नहीं जा सकता है तथा स्वयं व्यवहार करने वाले व्यक्ति को इसका पता न हो। कभी-कभी आकस्मिक व्यवहार भी अर्थपूर्ण होते है क्योंकि उनसे व्यक्ति में छिपी हुई दमित इच्छाओं तथा आवेगो के बारे में पता चलता है। व्यक्ति का इस प्रकार का व्यवहार इन्हीं संघर्षो एवं दमित इच्छाओं के कारण करता है। ऐसे छिपे हुए मानसिक संघर्षो एवं इच्छाओं को फ्रायड ने अचेतन कहा है। अपने संबंधी का नाम भूल जाना, दूसरे से ली गई पुस्तक को उन्हें लौटाना भूल जाना, किसी के यहाँ जाकर उसके पास रूमाल छोड़ आना आदि ये व्यवहार किसी न किसी अचेतन इच्छा से निर्देशित होते है और इनका कोई न कोई अर्थ अवश्य होता है।

b) मानसिक संरचना: मानसिक संरचना के अर्न्तगत **इदम, अंह एवं परांह** आते है और मानव व्यवहार इन्ही तीनों के अन्तःक्रिया का परिणाम होता है।

इदम सुखमय नियमों द्वारा निर्धारित होता है क्योंकि यह अपनी जन्मजात इच्छाओं की तुरन्त संतुष्टि चाहता है, चाहे परिणाम कुछ भी हो।

इदम के बाद **अहं** विकसित होता है। यह इदम् एवं पराहम के बीच एक बॉंध की तरह कार्य करता है। एक साल की अवस्था होने पर अहं का विकास प्रारंभ हो जाता है। अहं को बाहरी माँगो या वातावरण के माँगों से समायोजन स्थापित करना होता है, इसलिए यह वास्तविकता के नियम द्वारा निर्देशित होता है। इस तरह से अहं वातावरण के माँगों के साथ समायोजन स्थापित करने में बुद्धि, तर्क शक्ति आदि का सहारा लेता है तथा साथ-ही-साथ इदम् की माँगो पर एक नियंत्रण भी रखता है।

पराहं -तीसरा प्रमुख पहलू है जिसमें परिवार एवं संस्कृति द्वारा सिखाये गये नैतिकता एवं मूल्य आदि आते है। व्यवहार की उत्पत्ति इदम, अहं तथा पराहं के बीच की अन्तःक्रिया के कारण होता है। जब इन तीनों का लक्ष्य अलग-अलग होता है, तो इसमें आंतरिक मानसिक संघर्ष उत्पन्न होता है। जिसका ठीक से समाधान नहीं होने पर व्यक्ति में असामान्यता विकसित हो जाती है।

c) दुष्चिन्ता एवं रक्षा प्रक्रम - दुष्चिन्ता से तात्पर्य डर एवं आशंका से होता है। इसे मनोविश्लेषणात्मक भाषा में मानसिक दर्द भी कहा गया है। दुष्चिन्ता के कारण व्यक्ति में व्याकुलता तथा दर्द होता है, इसलिए व्यक्ति का अहं उससे अपने आप को बचाने के लिए कुछ उपाय ढूँढता है। अहम इससे बचने के लिये कुछ तर्क संगत उपाय ढूँढता है। परन्तु जब वह इसमें सफल नहीं हो पाता है तो कुछ अतर्कसंगत उपायों को अपनाता है, इन अतर्कसंगत उपयों को अहं रक्षा प्रक्रम कहा जाता है। ऐसे उपाय अचेतन स्तर पर होते है। जैसे-दमन, प्रतिक्रिया निर्माण, प्रक्षेपण, यौक्तिकीकरण, विस्थापन, प्रतिगमन आदि

d)मनोलैंगिक अवस्थाएँ -फ्रायड के अनुसार जैसे-जैसे जन्म के बाद बच्चे का विकास होता जाता है, वैसे-वैसे वह विभिन्न मनोलैंगिक अवस्थाओं से होकर गुजरता है। प्रत्येक अवस्था में बच्चा का शरीर के किसी एक भाग में सबसे अधिक आनंद मिलता है। ऐसी अवस्थाएँ निम्नांकित पाँच है-

i) मुखावस्था -यह जन्म से प्रथम दो साल की अवधि की अवस्था होती है और इसमें कामोत्तेजक क्षेत्र मुँह होता है और बच्चा चूसने, निगलने, दाँत काटने आदि जैसी क्रियाओं से आनन्द प्राप्त करता है।

ii) गुदावस्था -यह अवस्था दो साल से तीन साल की होती है तथा इसमें कामोत्तेजक क्षेत्र शरीर का गुदा क्षेत्र होता है। इस अवस्था में बच्चे मल-मूत्र त्यागने से संबंधित क्रियाओं से आनंद उठाते है।

iii) लिंग प्रधानावस्था या लैंगिक अवस्था - यह अवस्था तीन साल से पाँच साल तक की होती है तथा इसमें कामोत्तेजक क्षेत्र जनेन्द्रिय होते है। इस अवस्था में बच्चे अपने जनेन्द्रिय को छूते है, मलते है तथा खींचते है जिनसे उनके जनेन्द्रिय में संवेदन उत्पन्न होता है और उन्हें लैंगिक आनन्द की प्राप्ति होती है। इसी अवस्था में लड़का में मातृ मनोग्रन्थि तथा लड़कियों में पितृ मनोग्रन्थि का विकास होता है।

iv) अव्यक्तावस्था या विलीनावस्था -यह अवस्था छह साल से प्रारंभ होकर बारह वर्ष की आयु तक की होती है। इस अवस्था में बच्चों में छिपी हुई लैंगिक इच्छाएँ होती है। इस अवस्था में बच्चे अपनी लैंगिक इच्छाओं को अनैतिक समझकर उनका दमन कर देते हैं तथा अन्य बाहरी चीजों एवं घटनाओं मे अधिक रूचि दिखलाना आरंभ कर देते है।

v) जनेन्द्रियावस्था -मनोलैंगिक विकास की यह अंतिम अवस्था है जो तेरह वर्ष की आयु से प्रारंभ होकर निरंतर चलती रहती है। इस अवस्था में व्यक्ति में यौग अंग परिपक्व हो जाते है तथा उन्हें विषमलिंग कामुकता से आनन्द आता है।

फ्रायड का मत है कि प्रत्येक अवस्था में व्यक्ति को उचित संतुष्टि मिलनी आवश्यक है। यदि किसी अवस्था में उसे उचित संतुष्टि प्राप्त नहीं होती है, तो उसका व्यवहार उसी अवस्था पर स्थायीकृत हो जाता है। जैसे-यदि किसी बच्चों को मुखावस्था में उचित संतुष्टि नहीं मिलती है तो उसमें अत्यधिक खाने की प्रवृत्ति, पान खाने की प्रवृत्ति, खाते समय अँगुली चाटने की प्रवृत्ति, अधिक बोलने की प्रवृत्ति जैसा व्यवहार देखने को मिलता है।

2. संबंधित मनोगत्यात्मक उपागम -फ्रायड द्वारा प्रतिपादित मौलिक विचारों का बाद में संशोधन किया गया। इरिक्सन, एडलर, ओटो रैंक, युंग, सुल्लीभान, अन्ना फ्रायड तथा कोहट आदि ऐसे मनोवैज्ञानिक है जिन्होनें उनके मौलिक विचारों को संशोधित किया। इन लोगों ने फ्राइड के विचारों में निम्न संशोधन किये-

a) फ्रायड ने अभिप्रेरण में अचेतन मूलप्रवृत्ति को महत्त्वपूर्ण बताया था। इस बिन्दु पर फ्रायड के विचारों से असहमति।

b) मानव व्यवहार पर सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों के प्रभाव को बताया।

c) इन मनोवैज्ञानिकों द्वारा व्यक्तित्व के चेतन पहलुओं पर ज्यादा ध्यान दिया।

d) व्यक्तित्व विकास बाल्यावस्था में ही पूरा नहीं होता है बल्कि वयस्कावस्था में भी चलता रहता है।

इनके अनुसार व्यक्तित्व विकास में सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। इरिक इरिक्सन द्वारा व्यक्तित्व विकास के लिए आठ मनोसामाजिक अवस्थाओं का वर्णन किया है जो फ्रायड के पाँच मनोलैंगिक अवस्थाओं से अधिक विस्तृत एवं महत्त्वपूर्ण है। इरिक्सन का मत है कि मनोसामाजिक विकास के प्रत्येक अवस्था में व्यक्ति में एक सामाजिक संकट उत्पन्न होता है, जिसका यदि वह सफलतापूर्वक समाधान कर लेता है तो व्यक्ति में धनात्मक परिणाम होते है और वह अगली अवस्था में सामाजिक संकट के साथ ठीक ढंग से निबट पाता है। यदि वह इस संकट से ठीक ढंग से निबट नहीं पता है तो इससे उसके व्यक्तित्व का आगे का विकास रूक जाता है।

एलडर के अनुसार व्यक्तित्व विकास का सबसे महत्त्वपूर्ण कारक मूलप्रवृत्ति न होकर हीनता बतलाया गया है। एलडर ने व्यक्तित्व विकास में सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों पर अधिक बल डाला है। उन्होनें कहा कि परिवार में व्यक्ति के जन्म क्रम का प्रभाव व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है। एलडर के समान रैंक ने भी फ्रायड द्वारा यौन एवं आक्रामकता को मानव व्यवहार का प्रमुख आधार नहीं माना।

दोष-

a) मनोगत्यात्मक मॉडल में इदम, अहं, पराहं, अचेतन अभिप्रेरणा तथा दमन आदि ऐसे ही संप्रत्यय है जिनकी माप नही की जा सकती है।

b) इस मॉडल में मानव के नकारात्मक पहलू पर जैसे लैंगिक एवं आक्रमक मूलप्रवृत्तियों पर अधिक बल डाला गया है जबकि आंतरिक वृद्धि, आन्तरिक शक्ति तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों को ध्यान नही रखा गया।

5.4.1.2 व्यवहारात्मक मॉडल या अधिगम सिद्धान्त मॉडल

व्यवहारात्मक मॉडल ने मानव के व्यवहार उसका पर्यावरणीय एवं व्यक्तिगत अवस्थाओं जो उसे प्रभावित करता है, के संबंध पर अधिक बल डालता है। इस मॉडल की मुख्य मान्यता यह है कि मानव व्यवहार सीखना या अधिगम द्वारा प्रभावित होता है जो एक विशेष सामाजिक परिस्थिति में होता है। इस मॉडल को कभी-कभी सीखना या अधिगम सिद्धान्त मॉडल भी कहा जाता है। व्यवहारात्मक मॉडल मेंवैयक्तिक विभिन्नता तथा लोगों के बीच

समानता की व्याख्या की जाती है। वैयक्तिक विभिन्नता का अर्थ है, इसकी व्याख्या व्यक्ति के सीखने के अपूर्व अनुभवो के रूप में की जाती है।

विशेषताऐं-

a) व्यवहारात्मक मॉडल में व्यवहार के निर्धारण में पर्यावरणी कारकों पर अधिक बल डाला जाता है, न कि वंशानुगत एवं जैविक कारकों पर।

b) व्यवहारात्मक मॉडल में नैदानिक मूल्यांकन के आधार पर यह पता लगाया जा सकता है कि रोगी के वर्तमान समस्या को कैसे सीखा और वह समस्या किस तरह से बनी हुई है, इसकी पहचान करके उसके व्यवहार को सुधारा जाता है।

c) व्यवहारात्मक मॉडल में नैदानिक मूल्यांकन तथा उपचार दोनों एक दूसरे से जुड़े होते है।

व्यवहारात्मक मॉडल के रूपान्तरण

1. क्रियाप्रसूत सीखना -व्यवहारात्मक मॉडल के क्रियाप्रसूत रूपान्तर का विकास बी0एफ0 स्कीनर द्वारा किया गया। स्कीनर का मत है कि किसी व्यवहार की उत्पत्ति, तथा उससे उत्पन्न परिवर्तन को समझने के लिए यह आवश्यक है कि पर्यावरणी उद्दीपकों तथा उससे उत्पन्न होने वाले व्यवहारों के बीच के संबंध को समझा जाए। इस उपागम में उद्दीपकों, अनुक्रियाओं एवं उनके परिणामों के कार्यवाही संबंध पर बल डाला गया है। उदाइरण-माना कोई व्यक्ति किसी परिस्थिति में आक्रामक व्यवहार करता है। इस उपागम में यह आक्रामक व्यवहार तथा उसके परिणाम के बीच संबंध जोड़कर उसकी व्याख्या की जाएगी। इस आक्रामक व्यवहार के बाद उसे पुरस्कार मिलता है या उसे किसी प्रकार का लाभ होता है अर्थात् उसक परिणाम सुखद होता है, तो उसकी व्याख्या यह होगी कि व्यक्ति ने आक्रमक व्यवहार करना सीख लिया है।

2. क्लासिकी अनुबंधन या प्रतिवादी सीखना - इसे पैवलव द्वारा प्रतिपादित किया गया। व्यवहारात्मक मॉडल के इस रूपान्तर का उपयोग अधिकतर दुष्चिन्ता विकृतियों से उत्पन्न समस्याओं को दूर करने में किया गया है। इस रूपान्तर में अनुबंधित उद्दीपक तथा स्वाभाविक उद्दीपक के बीच साहचर्य के सीखने पर बल डाला जाता है। इस तरह के सीखने की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें अनुबंधित उद्दीपक द्वारा ही अनुक्रिया की उत्पत्ति होती है। इसके अनुसार व्यक्ति अंधेरे से डरना इसलिए सीख जाता है, कि व्यक्ति में अंधेरे में तरह-तरह के डर-उत्पन्न करने वाले उद्दीपक जैसे डरावना स्वप्न, डरावना स्वप्नचिन्तन आदि उत्पन्न होने लगते है।

जैसे यदि कोई व्यक्ति सामाजिक परिस्थति से अपने आप को डर से दूर रखता है, तो इसका कारण ऐसी परिस्थिति में उसमें उत्पन्न नकारात्मक एवं दर्दनाक अनुभव हो सकते है। (जैसे-ऐसी सामाजिक परिस्थिति में यदि पहले उसका काफी मजाक उड़ाया गया हो) यह क्रिया प्रसूत अनुबंधन का उदाहरण होगा। परन्तु उसमें इस तरह की सामाजिक परिस्थिति से डर इसलिए भी उत्पन्न हो सकता है क्योंकि हो सकता है कि ऐसी अनुभवो से उत्पन्न बेचैनी का सम्बन्ध या साहचर्य सामाजिक पार्टी के साथ स्थापित हो चुका हो। यह क्लासिकी अनुबंधन का उदाहरण होगा।

स. सामाजिक सीखना या संज्ञानात्मक व्यवहारपरक सीखना - इस मॉडल का प्रतिपादन अलवर्ट वैण्डुरा तथा वाल्टर मिसकेल ने किया था। उन्होने अपने उपागम में प्रेक्षणात्मक सीखने पर बल डाला है। वैण्डुरा का मत है कि व्यक्ति न केवल क्रियाप्रसूत एवं क्लासिकी अनुबंधन द्वारा प्रत्यक्ष रूप से सीखता है बल्कि जब वह दूसरों के

व्यवहारों को प्रेक्षण करता है, उसके द्वारा भी सीखता है। इन्होंने अपने एक प्रयोग में दिखलाया है कि जब मानव प्रयोज्य को मॉडल दिखाया जाता है तो वह उसके व्यवहार को केवल देखकर ही सीख लेते है। इसके लिए किसी अभ्यास या पुरस्कार की भी जरूरत नहीं पड़ती है। **वैण्डुरा, रॉस एवं रॉस (1963)** ने अपने अध्ययन में पाया है कि जिन बच्चों ने मॉडल को **'बोबो'** नामक गुड़िया के प्रति आक्रामक व्यवहार करते पाया, वे उसके प्रति वैसा ही व्यवहार करना सीख गये तथा जिन बच्चों ने मॉडल को बोबो के प्रति शांतिपूर्ण व्यवहार करते हुए देखा, वे उसके प्रति वैसा ही व्यवहार करना सीख गये।

इस मॉडल की नैदानिक हस्तक्षेप अर्थात् उपचार में महत्त्वपूर्ण भूमिका है। व्यवहारात्मक मापन में व्यवहारात्मक साक्षात्कार, रेटिंग मापनी, आत्म रिपोर्ट प्रश्नावली, प्रत्यक्ष प्रेक्षण तथा मनोदैहिक अनुक्रियाओं के द्वारा व्यवहार की माप की जाती है। व्यवहारात्मक मापन का मुख्य कार्य व्यवहार चिकित्सा में मदद पहुँचाना होता है।

गुण:-

a) इस मॉडल की विश्वसनीयता तथा वैधता अधिक है क्योंकि इसके द्वारा व्यवहार की उत्पत्ति तथा परिवर्तन की व्याख्या वस्तुनिष्ठ एवं प्रयोगात्मक ढंग से की गयी है

b) इस मॉडल में जितने भी संप्रत्यय लिये गये है उन्हें अनुभव के आधार पर इसके अर्न्तगत रखा गया है।

दोष-

a) व्यवहारात्मक मॉडल में वैयक्तिक व्यवहार की व्याख्या की जाती है परन्तु स्वयं व्यक्ति की उपेक्षा की जाती है।

b) व्यवहारात्मक मॉडल में जो भी कार्यविधि एवं परीक्षण का उपयोग किया जाता है, वे कम वैध एवं वैज्ञानिक है।

5.4.1.3 परिघटनात्मक मॉडल

परिघटनात्मक मॉडल के अनुसार वातावरण में मौजूद उद्दीपकों को प्रत्यक्षीकरण के आधार पर मानव व्यवहार का निर्धारण होता है। इस मॉडल में इस बात पर बल डाला जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति वातावरण को अपने-अपने ढंग से देखता है और उसके व्यवहार में इसकी छवि साफ दिखाई देती है। इसे एक उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझाया जा सकता है-मान लिया जाय कि दो छात्र शिक्षक का भाषण सुन रहे है। हो सकता है कि इसमें एक को वह भाषण काफी रूचिकर लगा तथा दूसरे को उस भाषण में नीरसता का अनुभव हुआ। परिघटनात्मक मॉडल के अनुसार ऐसा इसलिए होता है क्योंकि प्रत्येक छात्र ने शिक्षक के भाषण को अपने-अपने ढंग से सुना और महसूस किया।

गुण-

a) मानव एक सक्रिय चिन्तनशील प्राणी होता है और वह स्वयं, अपने द्वारा किये गये कार्यो के लिए जवाबदेह होता है। वह अपने व्यवहार के बारे में पूरी तरह से सचेत होकर कोई निर्णय लेता है।

b) कोई भी व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के व्यवहार को तभी समझ सकता है जब उसमें उस दूसरे व्यक्ति की आँखों से वातावरण को देखने की क्षमता होती है। इसका मतलब मानव व्यवहार तभी समझने योग्य होता है जब उसे उस व्यक्ति के नजर से देखा जाय जिसका प्रेक्षण किया जा रहा है।

स्रोत:- परिघटनात्मक मॉडल के निम्नलिखित स्रोत है-

a) रोजर्स का आत्म-सिद्धि उपागम - प्रत्येक व्यक्ति में वृद्धि करने एवं आगे की ओर बढ़ने की एक जन्मजात प्रवृत्ति होती है। इसी अभिप्रेरण से मानव के सभी तरह के व्यवहार प्रेरित होते है। इस अभिप्रेरण को आत्म-सिद्धि कहा जाता है। । इस तरह का प्रयास व्यक्तिं जन्म से ही करता है और पूरी जिन्दगी चलते रहता है।

रोजर्स के अनुसार व्यक्ति का सबसे प्रमुख अभिप्रेरण, आत्म-सिद्धि अभिप्रेरण होता है। इस तरह के अभिप्रेरण द्वारा दो तरह की आवश्यकताओं की उत्पत्ति होती है-

1. स्वीकारात्मक सम्मान की आवश्यकता: स्वीकारात्मक सम्मान से तात्पर्य दूसरों के द्वारा स्वीकार किये जाने, दूसरों का स्नेह पाने एवं उनके द्वारा पसंद किये जाने की इच्छा से होती है। ऐसी आवश्यकता तब देखने को मिलती है जब दूसरों से सम्मान मिलता है और संतुष्टि होती है और जब ये सम्मान नहीं मिलता है तो व्यक्ति में असंतोष होता है। **2. दूसरे व्यक्तियों से सम्मान:** आत्म सम्मान से तात्पर्य इस बात से होता है कि व्यक्ति में अपने आप को सम्मान एवं स्नेह देने की आवश्यकता होती है। व्यक्ति में जब अच्छे या सुखद अनुभव होते है तब यह आवश्यकता उत्पन्न होती है। जब व्यक्ति को समाज में कुछ महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों से मान-सम्मान मिलता है, तो इसमें धनात्मक आत्म-सम्मान की भावना या प्रेरणा उत्पन्न होती है।

रोजर्स के अनुसार, यदि व्यक्ति की अनुभूतियों एवं आत्म-संप्रत्यय में संगति या समानता होती है तो इससे एक स्वस्थ व्यक्तित्व का विकास होता है और वह सामान्य सामाजिक व्यवहार करेगा। इस तरह के स्वस्थ व्यक्तित्व को रोजर्स ने एक सफल व्यक्ति कहा। यदि व्यक्ति की अनुभूतियों एवं आत्म-संप्रत्यय में असंगति होती है या अंतर होता है, इससे उसने चिन्ता उत्पन्न होती है और व्यक्ति के व्यवहार में असामान्यता आने लगती है।

b) मैसलो का मानवीय अभिप्रेरणा का सिद्धान्त - मैस्लो के अनुसार मानव व्यवहार का कोई ना कोई लक्ष्य या उद्देश्य होता है। एक स्वस्थ व्यक्ति अपने लक्ष्यों को इस प्रकार प्राप्त करता है, कि उसके जीवन में व्यक्तित्व में समायोजन बना रहे। जब कोई व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति ठीक तरह से नहीं कर पाता है तो उसमें मानसिक तनाव, चिन्ता तथा अन्य मानसिक विकृतियों आदि की सम्भावना बढ़ जाती है। मैस्लों ने इस सिद्धान्त में मानव के धनात्मक एवं सर्जनात्मक पहलू पर बल डाला है। उन्होनें अपने सिद्धान्त में पॉच तरह की मुख्य आवश्यकताओं को बताया है। इन आवश्यकताओं को उन्होनें एक पदानुक्रम (बढ़ते क्रम में) बताया है।

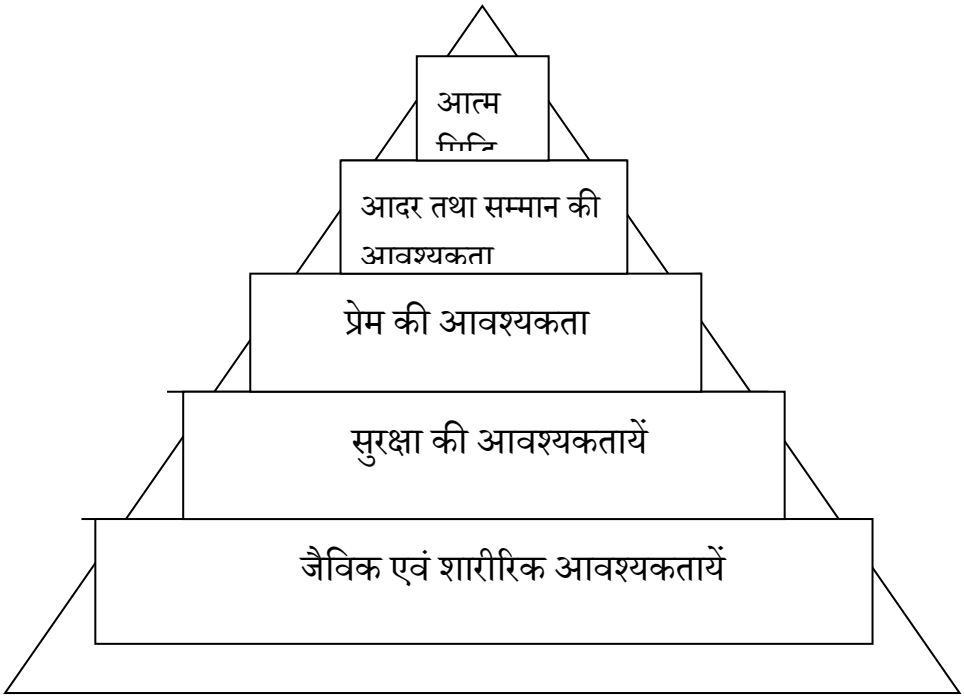

मैस्लो के अनुसार आवश्यकताओं की पदानुक्रमिक व्यवस्था

मैस्लो के अनुसार

पहले स्तर पर व्यक्ति की **जैविक एवं शारीरिक आवश्यकतायें** होती है। जैसे-भूख, प्यास काम (सेक्स) सम्बन्धी आवश्यकतायें। सबसे पहले व्यक्ति इन आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

दूसरे स्तर पर **सुरक्षा की आवश्यकतायें** होती है। जब प्रथम स्तर की आवश्यकतायें पूरी हो जाती है, तब उसे अपनी शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक सुरक्षा की आवश्यकता पड़ती है। जैसे- मकान, वस्त्र आदि।

तीसरे स्तर पर मैस्लो ने **प्रेम की आवश्यकता** को रखा। जब व्यक्ति की प्रथम व द्वितीय स्तर की आवश्यकतायें पूरी हो जाती है, तब उसे प्रेम की आवश्यकता होती है। जैसे - मित्र, सम्बन्धी एवं जीवन साथी आदि।

चौथे स्तर पर व्यक्ति अपने अन्दर **आदर तथा सम्मान की आवश्यकता** की पूर्ति चाहता है। इसके लिए वह समाज में सम्मान एवं प्रतिष्ठा पाने के लिए प्रयास करता है।

पाँचवे तथा अन्तिम स्तर पर मैस्लो ने **आत्स सिद्धि (आत्म वास्तविकरण)** को स्थान दिया है। ये व्यक्ति के जीवन का चरम बिन्दु है। एक परिपक्व व्यक्ति में आत्म सिद्धि के लक्षण होते है और ये बहुत ही कम व्यक्तियों के अन्दर मिलते है। इसके लिए मैस्लो ने उन व्यक्तियों का अध्ययन किया था, जिन्होने अपनी क्षमताओं को पूर्ण रूप से पहचाना था। जैसे- एब्राहम लिंकन, बीथोवेन, रूजवेल्ट, आइस्टीन आदि।

मैस्लो ने आत्मसिद्धि आवश्यकता को उच्च स्तर की माना है। व्यक्ति की ऊपरी आवश्यकताओं की पूर्ति तब संभव हो पाती है, जब तक की उसकी निचले स्तर की आवश्यकताये पूरी न हो जायें। उन्होनें कहा कि प्रत्येक व्यक्ति में

सम्पूर्ण सिद्धि की अन्तःशक्ति होती है। फिर भी व्यक्ति इस स्तर पर तब तक नहीं पहुॅच सकता जब तक उसके निचले स्तर की आवश्यकतायें पूरी ना हो जायें।

c) केली का वैयक्तिक संरचना उपागम- केली के अनुसार मानव व्यवहार की व्याख्या व्यक्तिगत संरचना के आधार पर की। वैयक्तिक संरचना से तात्पर्य एक ऐसे साधन से होता है जिसके सहारे व्यक्ति अपने वातावरण की घटनाओं की व्याख्या करता है तथा उसे समझने की कोशिश करता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यवहार के परिणाम को ध्यान में रखता है और उसे पूरा करता है। व्यक्ति अपनी जिन्दगी की घटनाओं को समझने की कोशिश करता है तथा उसके बारे में पूर्वानुमान लगाता है। जब कुछ कारण से व्यक्ति अपनी सामाजिक अनुभवों के बारे में गलत एवं दोषपूर्ण संरचना विकसित कर लेता है तो उसका व्यवहार समस्यात्मक हो जाता है। यदि किसी व्यक्ति में व्यक्तिगत संरचना की संख्या कम है तो वह कुछ सीमित संरचनाओं की ही घटनाओं को ही समझकर उनका अनुमान लगा पायेगा और सही व्यवहार नही कर पायेगा। केली के अनुसार व्यक्ति में अपने इस व्यक्तिगत संरचना को बदलने की भी क्षमता होती है और व्यक्ति इसमें परिवर्तन करके उपयुक्त व्यवहार कर सकता है।

गुणः-

a) परिघटनात्मक मॉडल व्यक्ति के अनुभवों को काफी महत्त्व देता है।

b) परिघटनात्मक मॉडल में मानव जीवन की अन्तःशक्ति तथा उसके आगे बढने की क्षमता पर बल डाला गया है।

दोषः-

a) इस मॉडल में चेतन अनुभूति पर अधिक बल डाला है तथा अचेतन, अभिप्रेरण, परिस्थिति के प्रभाव तथा कुछ जैविक कारकों की अनदेखी की गयी है।

b) परिघटनात्मक मॉडल के अनुसार आत्म-सिद्धि व्यक्ति की एक जन्मजात प्रवृत्ति होती है, इससे विकास के कारण का तो पता चला है परन्तु उसके विकास की व्याख्या नहीं हो पायी है।

5.4.1.4 अन्तर्वैयक्तिक मॉडल

इस मॉडल के अनुसार रोगी की नैदानिक समस्या की व्याख्या उसके भूत एवं वर्तमान के सम्बन्धो के आधार पर और रोगी की अन्य व्यक्तियों के साथ सम्बन्धों के आधार पर की जाती है। व्यक्ति अन्तवैयक्तिक (आपसी) समायोजन के माध्यम से अन्तःक्रियाओं को करता है।

अन्तःवैयक्तिक समायोजन का तात्पर्य दो व्यक्तियों के बीच एक समायोजन से होता है। वे दो व्यक्ति आपस में संचार एवं अन्तःक्रिया का एक विशेष पैटर्न बना लेते है। ये पैटर्न उन्हें लक्ष्य की प्राप्ति तथा आवश्यकताओं की पूर्ति में तथा आवसी सम्बन्ध बनाने में मदद करता है। जब व्यक्ति के यह अन्तःवैयक्तिक सम्बन्ध किसी कारणवश खराब या दोषपूर्ण हो जाते है, तो उसमें कई तरह की मानसिक समस्यायें उत्पन्न होने लगती है।

बचपन में जब माता-पिता बच्चों में आत्म-प्रत्यय (स्वयं को पहचानने की क्षमता) को ठीक तरह से विकसित नहीं होने देते है, तो ऐसे बच्चे दूसरों के साथ स्वस्थ्य सम्बन्ध नहीं बना पाते है और उनमें असमायोजित व्यवहार विकसित हो जाता है। जब व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के व्यवहार के बारे में दोषपूर्ण पूर्वकल्पना बना लेता है तो उसके

अन्तःवैयक्तिक सम्बन्ध कमजोर हो जाते है और उसके इस गलत विश्वास के कारण उसके अन्दर कई समस्यायें उत्पन्न हो जाती है।

जब व्यक्ति को ऐसा लगता है कि वह समाज के साथ समायोजन नहीं कर पा रहा है। जबकि वह सामाजिक भूमिकाओं का पूरी तरह से निर्वाह कर रहा है तो उससे उसके समाज के अन्य लोगों के साथ अन्तःवैयक्तिक सम्बन्ध कमजोर पड़ जाते है और कई मानसिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

इस मॉडल के आधार पर जो चिकित्सा की जाती है उसे अन्तःवैयक्तिक चिकित्सा कहते है। इसका उपयोग व्यक्तित्व विकृतियों, विषाद आदि के रोगियों के उपचार में किया जाता है। इस चिकित्सा पद्धति में रोगी की उन समस्याओं पर विचार किया जाता है कि रोगी कि वे कौन-कौन सी समस्यायें है जिनके कारण उसके अन्तवैयक्तिक सम्बन्ध खराब हो गये है? रोगी को कुछ ऐसे तरीको को बताया जाता है जिनके द्वारा वे इन सम्बन्धों को सुधार सके।

इस मॉडल का प्रतिपादन फ्रायड के शिष्य अल्फ्रेड एडलर, इरिक फोम, कैरेन हार्नी, सुलिमान तथा इरिक इरिक्सन ने किया। इसमें मनोवैज्ञानिकों ने इस बात पर बल डाला कि नैदानिक समस्याओं की उत्पत्ति में सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारको की मुख्य भूमिका होती है।

गुण:-

a) अन्तर्वैयक्तिक मॉडल में व्यक्ति के निकट व्यक्तिगत संबंध पर ध्यान दिया जाता है और उसकी समस्याओं को समझने की कोशिश की जाती है। इसलिए इस मॉडल की व्यवहारिक उपयोगिता अधिक है।

b) इस मॉडल में व्यक्ति की सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों को ध्यान में रखा जाता है और उसकी समस्याओं का उपचार किया जाता है।

दोष:-

a) अन्तर्वैयक्तिक मॉडल अन्तर्वैयक्तिक संबंधों के बारे पूरी जानकारी नही देता है इसलिए इस मॉडल द्वारा नैदानिक समस्याओं की व्याख्या पूरी तरह नहीं होती है।

b) इस मॉडल द्वारा नैदानिक समस्याओं एवं उसके उपचार की विधियों की जो व्याख्या होती है उसमें वस्तुनिष्ठता कम है।s

5.5 मनोविश्लेषणवादी या मनोगत्यात्मक चिकित्सा

मनोपचार की सबसे पुरानी चिकित्सा विधि है। फायड को मनश्चिकित्सा का संस्थापक कहा जाता है। फ्रायड ने अपने रोगियों को गहन निरीक्षण किया। इस निरीक्षण के आधार पर उन्होंने मानव संरचना, मनोविकृति के स्वरूप तथा मनोवैज्ञानिक उपचार के बारे में बहुत सी उपकल्पनायें बनाई। उन्होंने अपने इस प्रयास के द्वारा मनोविश्लेषण को मनोपचार की एक महत्त्वपूर्ण प्रविधि के रूप में विकसित किया। इसके सन्दर्भ में 1990 में उसकी पुस्तक **''दी इन्टरप्रेटेशन ऑफ ड्रीम''** प्रकाशित हुई।

मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा का मुख्य लक्ष्य रोगी को अपने आप को उत्तम ढंग से समझने में मदद करने से होता है ताकि वह रोगी पहले से अधिक समायोजी ढंग से सोच सके तथा व्यवहार कर सके। इस चिकित्सा में पूर्वकल्पना यह होती है कि जब रोगी यह देख पाता है कि कुसमायोजी ढंग से व्यवहार करने का क्या वास्तविक कारण है (जो

प्रायः अचेतन में होते है) तथा जब वे यह देखते है कि वे कारण बहुत ठोस एवं वैध नहीं है, तो वे अपने आप कुसमायोजी ढंग से व्यवहार करना बंद कर देते है। इस तरह से रोगी को लक्षण अपने आप दूर हो जाता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार मानव व्यक्तित्व का केन्द्रीय आधार बिन्दु इदम या इड है। इसका मूल स्वभाव **काम (सेक्स)** सम्बन्धी इच्छाओं तथा आवेशों को पूरा करना है। यह सुखवादी सिद्धान्त पर कार्य करता है अर्थात् केवल खुशी चाहता है। यह व्यक्ति के व्यवहार को अचेतन रूप से अभिप्रेरित करता है।

जैसे शिशु बड़ा होता जाता है तो वह अपने जीवन की वास्तविकताओं को समझने लगता है। वह अपने संवेगों व आवेगों पर नियंत्रण करना सीखता है और उसमें अहम या इगो विकसित होता है। इससे वह अपने परिवार तथा समाज के प्रति समायोजन करना सीखता है। आगे चलकर व्यक्ति के पराहम या सुपर इगो का विकास होता है जो व्यक्ति के व्यवहार का नैतिक कसौटी पर मूल्यांकन करता है। यह व्यक्ति को अनैतिक व्यवहार या समाज द्वारा वर्जित व्यवहार करने की अनुमति नहीं देता है। परन्तु व्यक्ति के इन व्यवहारों या आवेगों का मूल स्रोत इदम होता है। इसलिये पराहम चेतन स्तर पर से उसकी इन सभी अनैतिक इच्छाओं या आवेगों को दबा देता है और अचेतन भाग में डाल देता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार, अचेतन मन में जाकर भी व्यक्ति की ये अनैतिक इच्छायें या आवेग समाप्त नहीं होते है और विभिन्न तरह से इन्हें व्यक्त करते रहते है। ये इच्छायें पराहम् को चकमा तथा झांसा देने लगती है।

फ्रायड के अनुसार, जब एक सामान्य व्यक्ति की अनैतिक इच्छायें या आवेग इसके अहम तथा पराहम के नियंत्रण में नहीं आते और उन्हें चकमा देने लगते है तो वह पराहम के डर से भी चिन्तित होने लगता है और उसमें समाज के डर के कारण चिन्ता उत्पन्न होने लगती है। यदि किसी व्यक्ति में ऐसा मानसिक संघर्ष (अनैतिक इच्छाओं की तीव्रता तथा पराहम के प्रबल रूप के कारण) लगातार चलता रहता है, तो उसकी चिन्ता धीरे-धीरे दुश्चिता तंत्रिका ताप का रूप ले लेती है।

फ्रायड के अनुसार मनोविश्लेषणात्मक परिस्थिति कुछ ऐसी होती है। रोगी का अहम् उसके आन्तरिक मानसिक संघर्षो या द्वंद्वों से कमजोर पड़ जाता है। इन मानसिक संघर्षो में इदम की नाजायज माँग (मूलप्रवृन्तिक माँग) और पराहम की नैतिकतापूर्ण मॉग का ही जोर रहता है। इन्हीं संघर्षो से निबटने के लिए व्यक्ति को चिकित्सक की आवश्यकता पड़ती है। इसमें चिकित्सक तथा रोगी एक दूसरे को मदद करते है तथा अपना कार्य प्रारम्भ कर देते है। इदम तथा पराहम के संघर्षो के कारण व्यक्ति का अहम बीमार पड़ जाता है। रोगी चिकित्सक के सामने उन सभी सामग्रियों को रख देता है जो उसे परेशान करती है। चिकित्सक उन सभी अचेतन मन की सामग्रियों को रोगी के सामने रखकर उनकी व्याख्या करता है। इससे रोगी की उसकी बातें समझ में आने लगती है और अपनी भूल तथा अज्ञानता का अहसास होने लगता है। अन्त में चिकित्सक की मदद से अन्त में रोगी के अहम् को अपनी खोई हुई मानसिक ऊर्जा पर नियंत्रण करना आ जाता है और उसका व्यवहार सामान्य होने लगता है।

5.5.1 मनोविश्लेषणात्मक उपचार के निम्नांकित तीन मुख्य उद्देश्य है-

a) रोगी के समस्यात्मक व्यवहार को समझकर उसमें बौद्धिक एवं सांवेगिक सूझ विकसित करना।

b) रोगी में सूझ विकसित होने के बाद उस सूझ के कारण के बारे में पता लगाना ।

c) धीरे-धीरे रोगी के इदम तथा पराहं की क्रियाओं पर अहं के नियंत्रण को बढ़ाना ।

5.5.2 मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा के चरण-

इस चिकित्सा में ऐसे संघर्ष, इच्छायें, डर आदि जो रोगी के अचेतन मन में होते है उन्हें बाहर निकालकर उसमें सूझ विकसित करने की कोशिश की जाती है ताकि उससे उत्पन्न होने वाले संवेगात्मक एवं समायोजन संबंधी कठिनाइयों को रोगी ठीक ढंग से सुलझा सके। इस प्रविधि में चिकित्सक को मनोविश्लेषक कहा जाता है तथा इस विधि को निर्देशात्मक चिकित्सा भी कहा जाता है। इनमें प्रमुख चरण निम्नांकित है-

1) स्वतंत्र साहचर्य की अवस्था - फ्रायड की चिकित्सा प्रणाली की सबसे पहली अवस्था स्वतंत्र साहचर्य की होती है। रोगी को एक मन्द प्रकाश कक्ष या कमरा में एक आरामदेह एवं गद्दीदार कोच पर लेटा दिया जाता है तथा चिकित्सक रोगी के पीछे बैठ जाता है। चिकित्सक रोगी से कुछ देर तक सामान्य ढंग से बातचीत करता है और रोगी से यह अनुरोध करता है कि उसके मन में जो कुछ भी आता जाए, उसे वह बिना किसी संकोच के कहता जाए, चाहे वे विचार सार्थक हों या निरर्थक हों, नैतिक हों या अनैतिक हों। रोगी की बातों को चिकित्सक ध्यानपूर्वक सुनता है। इस प्रविधि की स्वतंत्र साहचर्य की विधि कहा जाता है जिसका उद्देश्य रोगी के अचेतन में छिपे अनुभवों, मनोलैंगिक इच्छाओं एवं मानसिक संघर्षो को कुरेदकर चेतन स्तर पर लाना होता है।

2) प्रतिरोध की अवस्था -प्रतिरोध की अवस्था स्वतंत्र साहचर्य की अवस्था के बाद उत्पन्न होती है। रोगी जब अपने मन में आने वाले विचारों को कहकर चिकित्सक को सुनाता है, तो इसी प्रक्रिया में एक ऐसी अवस्था आ जाती है जहाँ वह अपने मन के विचारों को व्यक्त नहीं करना चाहता है और वह या तो अचानक चुप हो जाता है या कुछ बनावटी बात जान-बूझकर करने लगता है। इस अवस्था को प्रतिरोध की अवस्था कहा जाता है। प्रतिरोध की अवस्था तब उत्पन्न होती है जब रोगी के मन में शर्मनाक एवं चिन्ता उत्पन्न करने वाली बात आ जाती है जिसे वह चिकित्सक को नहीं बतलाना चाहता है। चिकित्सक इस प्रतिरोध की अवस्था को खत्म करने का प्रयास करता है ताकि चिकित्सा को आगे बढ़ाया जा सके। प्रतिरोध को खत्म करने के लिए वह सुझाव, सम्मोहन, लिखकर विचार व्यक्त करने, पेंन्टिंग, चित्रांकन आदि का सहारा लेता है। वह रोगी के साथ से घनिष्ठ संवेगात्मक संबंध स्थापित कर लेता है। चिकित्सक रोगी का विश्वासपात्र बनता है ताकि प्रतिरोध की इच्छाओं को आसानी से व्यक्त कर सके। प्रतिरोध समाप्त करना चिकित्सक के लिए चुनौतीपूर्ण कार्य होता है, जिसे काफी सावधनीपूर्वक करना होता है।

3) स्वप्न-विश्लेषण की अवस्था -रोगी के अचेतन में जो दमित इच्छायें, बाल्यावस्था की मनोलैंगिक इच्छाएँ एवं मानसिक संघर्ष होते है उन्हें विश्लेषण स्वप्न का अध्ययन करके बाहर लाने का प्रयास करता है। फ्रायड के अनुसार स्वप्न में व्यक्ति अपने अचेतन की दमित इच्छाओं केा पूरा करता है। इसलिए रोगियों के स्वप्नों का विश्लेषण करके चिकित्सक उसके अचेतन के संघर्षो एवं चिन्ताओं के बारे में जान पाते है। रोगी के स्वप्नों के अव्यक्त विषयों के अर्थ को विश्लेषक समझता है जिससे रोगी के मानसिक संघर्ष एवं संवेगात्मक कठिनाई के वास्तवित कारण को समझने में मदद मिलती है।

4) स्थानातरण की अवस्था -जैसे-जैसे रोगी एवं चिकित्सक के बीच विश्वास एवं लगाव हो जाता है उनके बीच सांवेगिक नये संबंध भी उभर कर सामने आ जाते है। रोगी के जैसे संबंध या मनोवृत्ति अपने शिक्षक, माता या पिता के प्रति होती है, वैसी ही मनोवृत्ति या संबंध वह चिकित्सक के प्रति विकसित कर लेता है। इसे ही स्थानान्तरण

कहा जाता है। स्थानान्तरण विकसित होने से रोगी शांत मन से एवं पूर्व विश्वास के साथ अपने विचारों की अभिव्यक्त करता है। उसे यह विश्वास हो जाता है कि चिकित्सक एक ऐसा व्यक्ति है जिनके सामनें वह अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं एवं मानसिक द्वन्दों के बारे में खुलकर अभिव्यक्त कर सकता है।

स्थानान्तरण के तीन प्रकार होते है।

a) धनात्मक स्थानान्तरण -इसमें रोगी चिकित्सक के प्रति अपने स्नेह एवं प्रेम की प्रतिक्रियाओं को दिखलाता है। इसमें चिकित्सा का वातावरण पहले से और भी अधिक सौहार्द्रपूण बन जाता है और रोगी सुरक्षित अनुभव करता है तथा वह अचेतन की दमित इच्छाओं की अभिव्यक्ति खुलकर करता है।

b) ऋणात्मक स्थानान्तरण -इसमें रोगी चिकित्सक के प्रति अपनी घृणा एवं संवेगात्मक अलगाव की प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति करता है। चिकित्सक रोगी के घृणा एवं आक्रामक व्यवहारों का केन्द्र होता है। इसलिए यहाँ उन्हें काफी सूझ-बूझ से काम लेना पड़ता है तथा वह रोगी का विश्वासपात्र बनकर उसके घृणा भावों को समझता है ताकि चिकित्सा आगे की ओर बनी रहे।

c) प्रति स्थानान्तरण -इसमें विश्लेषक ही रोगी के प्रति स्नेह, प्रेम एवं संवेगात्मक लगाव दिखाता है। प्रतिस्थानान्तरण की स्थिति से चिकित्सक की अक्षमता का पता चलता है और ऐसे चिकित्सक के बारे में फ्रायड ने कहा है कि उन्हें पहले अपना मनोविश्लेषण करवा लेना चाहिए। ऐसे विश्लेषक या चिकित्सक को आदर्श नहीं माना जाता है।

d) समापन की अवस्था -चिकित्सा के अन्त में विश्लेषक के सफल प्रयास के बाद रोगी को अपने संवेगात्मक कठिनाई एवं मानसिक संघर्षो के अचेतन कारणों का एहसास होता है। जिससे रोगी में सूझ का विकास होता है। सूझ का विकास हो जाने से उसके आत्म प्रत्यक्षण तथा सामाजिक प्रत्यक्षण में परिवर्तन आ जाता है। इससे रोगी की मनोवृत्ति, विश्वास एवं मूल्यों में धनात्मक परिवर्तन होता है। जब रोगी में सूझ का विकास हो जाता है, तब चिकित्सक रोगी से धीरे-धीरे संबंध-विच्छेद करने का प्रयास करता है। यहाँ चिकित्सक को सावधानी बरतनी पड़ती है कि वह संबंध-विच्छेद अचानक न करे क्योकि ऐसा करने से कभी-कभी रोगी में नये लक्षण प्रकट को जाते है।

गुणः-

a) मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा द्वारा चिकित्सा अचेतन की दमित इच्छाओं, संघर्षो एवं उलझनों को सुलझाया जाता है, इसलिए इससे जो उपचार होता है, वह अधिक स्थायी होता है। इस विधि में अचेतन की गहराइयों में जाकर उसे कुरेदा जाता है तथा संवेगात्मक कठिनाइयों एवं मानसिक उलझनों के कारण का पता लगाया जाता है, इसलिए इसे गहरी चिकित्सा भी कहा जाता है।

b) इस विधि द्वारा मानसिक रोग के कारण का पहले पता लगा लिया जाता है और बाद में उसका उपचार उसी के अनुसार किया जाता है। इसी कारण यह विधि चिकित्सा की अन्य विधियों से उत्तम मानी जाती है।

c) यह प्रविधि हिस्ट्रीरिया, विषाद, अन्तर्मुखी तथा कम अभिप्रेरित रोगियों के लिए सबसे अधिक प्रभावकारी माना गया है।

दोष:-

a) इस विधि द्वारा उपचार में काफी समय लगता है। समय अधिक लगने के कारण रोगी चिकित्सा से उबने लगता है और उसकी कठिनाइयाँ घटने के बजाय बढ़ने लगती है।

b) इस उपचार विधि में समय अधिक लगने से विश्लेषक अधिक रोगियों का उपचार चाह कर भी नहीं कर पाता है।

c) यह विधि खर्चीली भी काफी अधिक है।

d) इस विधि का उपयोग काफी छोटे बालकों या काफी बूढ़े लोगों पर सफलतापूर्वक नहीं किया जा सकता है क्योंकि इस तरह के लोग चिकित्सा के दौरान उतना सहयोग नहीं कर पाते है जितनी जरूरत पड़ती है।

e) इसके लिए विश्लेषक को कुशल एवं प्रशिक्षित होना अनिवार्य है। सभी तरह के चिकित्सक इस विधि का संचालन सही-सही ढंग से नहीं कर पाते है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. मनोविश्लेषणवादी चिकित्सा को .....भी कहा जाता है।
2. मनोचिकित्सा .....के उपचार की विधि है।
3. मनोवश्लेषणवादी चिकित्सा का प्रतिवादन.....ने किया।
4. व्यवहारात्मक माँडल में व्यवहार के निर्धारण में .....पर बल डाला जाता है।
5. मैसलों ने.....उपागम का प्रतिपादन किया|

5.6 सारांश

1. मनोपचार या मनश्चिकित्सा एक उपचार पद्धति है। जिसमें मानसिक एवं सांवेगिक रूप से अस्वस्थ्य व्यक्तियों का उपचार किया जाता है।

2. मनोपचार के तीन महत्त्वपूर्ण पहलू होते है। 1. सहभागी 2. चिकित्सकीय सम्बन्ध 3. मनचिकित्सा की प्रविधि

3. नैदानिक मनोविज्ञान में कई तरह के माँडल है। जिनमें प्रमुख रूप से चार है 1. मनोगत्यात्मक माँडल 2. व्यवहारात्मक माँडल या अधिगम सिद्धान्त माँडल 3. परिघटनात्मक माँडल 4. अन्तवैयक्तिक माँडल

4. प्रत्येक माँडल द्वारा नैदानिक समस्या के स्परूप को समझने तथा उसका उपचार करने में विशेष योगदान दिया जाता है।

5. मनोगत्यात्मक माँडल के अनुसार सामान्य तथा असामान्य व्यवहार दोनों की उत्पत्ति मन के भीतर होने वाले मानसिक संघर्षो, दमित इच्छाओं तथा आवेगों द्वारा होती है।

6. व्यवहारात्मक माँडल की मान्यता ये है कि मानव व्यवहार अधिगम (सीखना) द्वारा प्रभावित होता है। जो एक विशेष सामाजिक परिस्थिति में होता है।

7. परिघटनात्मक माँडल के अनुसार व्यक्ति अपने वातावरण में उपस्थित उद्दिपकों का जिस तरह से प्रत्यक्षण करता है। उसका व्यवहार उसी तरह का होता है अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति वातावरण के उद्दीपकों का प्रत्यक्षण अपने-अपने ढंग से करता है।

8. अन्तवैयक्तिक माँडल के अनुसार जब व्यक्ति की सामाजिक अंतक्रिया दोषपूर्ण हो जाती है। अर्थात् जब उसके समाज के खास व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध असंतोषजनक हो जाते है तो उसमें असमायोजित व्यवहार उत्पन्न हो जाता है।

9. मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा का प्रतिपादन फ्राइड ने किया। इसमें व्यक्ति की दमित इच्छाओं, चिन्तन एवं डर को अचेतन स्तर से बाहर निकालकर उसमें सूझ विकसित की जाती है ।

5.7 शब्दावली

1. स्नायु विकृति या चिन्ता विकृति - साधारण मानसिक विकृति है। इससे पिड़ित व्यक्ति का मुख्य लक्षण चिन्ता है। वह चिन्ता से ग्रस्त रहता है परन्तु उसका कारण उसे पता नहीं रहता है।

2. हिस्टीरिया - एक मानसिक रोग है। इससे व्यक्ति एक या अधिक शारीरिक लक्षणों से पीड़ित होता है। परन्तु इसके कायिक आधार नहीं पाये जा सकते है।

3. रक्षा प्रक्रम - ये मानसिक प्रक्रियाये है। जब इस (मनोरचनायें) तथा पराहम् की खीचतान के कारण व्यक्ति में मानसिक संघर्ष उत्पन्न होते है, तब इस मनोरचनाओं के माध्यम से इगो अपने आपको चिन्ता या तनाव से बचाने का प्रयास करता है।

4. स्वाभाविक उद्दीपक - जो उद्दीपक बिना किसी पूर्व प्रशिक्षण के प्राणी में अनुक्रिया उत्पन्न करता है। जैसे भोजन एक स्वाभाविक उद्दीपक है।

5. अनुबन्धिक उद्दीपक - एक ऐसा उद्दीपक जिसे स्वाभाविक उद्दीपक के साथ लगातार कुछ प्रयासों तक दिया जाता है, तो वह स्वाभाविक उद्दीपक के समान ही अनुक्रिया करने लगता है।

6. अनुबन्धित उद्दीपक - एक ऐसा उद्दीपक जिसे स्वाभाविक उद्दीपक के साथ लगातार कुछ प्रयासो तक दिया जाता है तो वह स्वाभाविक उद्दीपक के समान ही अनुक्रिया करने लगता है। जैसे- भोजन के साथ यदि घंटी को लगातार बजाया जाये ।

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. मनोगत्यात्मक चिकित्सा
2. कुसमायोजी एवं मानसिक विकृतियों
3. फ्रायड
4. पर्यावरणीय कारको
5. मानवतावादी

5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान- अरूण कुमार सिंह-मोतीलाल बनारसीदास
2. आधुनिक नैदानिक मनोविज्ञान- डा0एच0के0 कपिल-हर प्रसाद भार्गव

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मनोचिकित्सा से क्या समझते है? इसके उद्देश्यों एवं चरणों का वर्णन करियें।
2. मनोविश्लेषणवादी चिकित्सा का अर्थ बताइये। इस चिकित्सा के चरणों एवं गुण दोषों की व्याख्या करियें।
3. नैदानिक हस्तक्षेण के माँडलों से क्या तात्पर्य है? इनके विभिन्न प्रकारों का सविस्तार वर्णन करिये ।

इकाई 6. व्यवहार चिकित्सा: क्रमबद्ध असंवेदीकरण, संज्ञानात्मक-व्यवहार, रोगी-केन्द्रित, गेस्टाल्ट एवं अस्तित्ववादी चिकित्सा (Behavior Therapy: Systematic Desensitization, Cognitive Behavior, Client-Centered, Gestalt and Existential Therapy)

इकाई संरचना

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 व्यवहार चिकित्सा
6.3.1 क्रमबद्ध असंवेदीकरण
6.3.2 संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा
6.3.2.1 रैसनल इमोटिव चिकित्सा
6.3.2.2 बैक की संज्ञानात्मक चिकित्सा
6.3.2.3 तनाव टीका चिकित्सा
6.3.2.4 बहुआयामी चिकित्सा
6.4 मानवतावदी-अनुभवात्मक चिकित्सा
6.4.1. क्लांयट या रोगी केन्द्रित चिकित्सा
6.4.2 गैस्टाल्ट चिकित्सा
6.4.3 अस्तित्ववादी
6.5. सारांश
6.6. शब्दावली
6.7. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.8. संदर्भ ग्रन्थ सूची
6.9. निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

व्यवहार चिकित्सा नैदानिक मनोविज्ञान में प्रयोग की जाने वाली एक लोकप्रिय पद्धति है। ये रूसी मनोवैज्ञानिक पैवलोव के सिद्धान्तों पर आधारित है। इस चिकित्सा पद्धति आधारभूत मान्यता है कि असामान्य व्यवहार का कारण व्यक्ति के द्वारा अपेक्षित समायोजनपूर्ण प्रतिक्रियाओं को न सीख पाना है।

इस चिकित्सा पद्वति में रोगी को सही प्रकार की प्रतिक्रियाओं को सिखाया जाता है। जिससे वह छूटी हुई सही प्रतिक्रियाओं को सीख सके। इसमें रोगी के उपचार के लिये उसके लक्षणों को दूर करने का सीधा प्रयास किया जाता है। इसके द्वारा असमायोजित (गलत) आदतों को कमजोर किया जाता है और उनको त्याग दिया जाता है।

इसमें समायोजित (सही) आदतों की शुरूआत की जाती है तथा उन्हें मजबूत किया जाता है। इस पूरी प्रक्रिया के पीछे अनुबन्धन की विधि को अपनाया जाता है।

संज्ञानात्मक चिकित्सा में रोगी के संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं को ध्यान में रखकर उसे चिकित्सा दी जाती है। रोगी के गलत संज्ञान या चिंतन को दूर करके उसकी जगह पर सही चिंतन को विकसित किया जाता है ताकि वो समायोजी व्यवहार कर सके।

व्यवहार चिकित्सा को व्यवहार परिमार्जन भी कहते है अर्थात् इसमें रोगी का उपचार उसके व्यवहार में परिवर्तन करके किया जाता है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य हैं-

a) व्यवहार चिकित्सा का अध्ययन करना।

b) संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा के प्रकारों का अध्ययन करना ।

6.3 व्यवहार चिकित्सा -

इस चिकित्सा के अनुसार अतीत में (पहले) सीखी गई असमायोजित अनुक्रियाओं को भुलाया जा सकता है या सुधारा जा सकता है। व्यवहार चिकित्सा का मुख्य उद्देश्य ऐसी समायोजी अनुकूलित अनुक्रियायें उत्पन्न करना है जो रोगी की कुसमायोजी अनुक्रियाओं का स्थान ले सके। व्यवहारवादी चिकित्सक विशेष रूप से नये अधिगम (सीखना) पर बल देते है, ताकि रोगी कुसमायोजी अनुक्रियाओं को भूल जायें और नई समायोजी अनुक्रियायें सीख लें।

व्यवहार चिकित्सा में कुसमायोजित व्यवहार के जगह पर समायोजित व्यवहार को मजबूत करने की कोशिश की जाती है ताकि व्यक्ति सामान्य ढंग से जीवन निर्वाह करें। कुसमायोजित व्यक्ति वैसे व्यक्ति को कहा जाता है जो जिन्दगी की समस्याओं से निबटने के लिए पर्याप्त सामर्थ्य किसी कारणवश नहीं विकसित कर पाये या ना सीख पाये।

व्यवहार चिकित्सा के उद्देश्य:-

a) व्यवहार चिकित्सा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति द्वारा किये गए असमायोजित व्यवहार को बदलना होता है।

b) व्यवहार चिकित्सा में रोगी के वर्तमान समस्याओं पर बल डाला जाता है न कि उसके बचपन के अनुभव पर।

व्यवहार चिकित्सा पद्धति में अनेक निम्नलिखित प्रतिक्रियाओं का उपयोग किया जाता है-

1. **सरल क्लासिकल अनुबन्धनः-** इसमें दो असम्बन्धित उत्तेजनाओं को जोड़ने का प्रयास किया जाता है। उदाहरण- जिन बच्चों को नींद में पेशाब करने की आदत हो जाती है, उनके लिये यदि उसी वक्त बिजली का हल्का झटका घंटी के साथ दिया जाता है। लगातार ऐसा करने से धीरे-धीरे उसकी बिस्तर गीला करने की आदत छूट जाती है। इसमें उसके मूत्र त्याग का सम्बन्ध उस घंटी के साथ जुड़ जाता है।

2. आपरेन्ट अनुबन्धनः- इसमें व्यक्ति के सामने कई प्रलोभन (लालच) प्रस्तुत किये जाते है। जिससे वह सही प्रतिक्रियाओं को सीख कर उन्हें मजबूत कर सके। उदाहरणः- गम्भीर मानसिक रोगियों पर एक अध्ययन किया गया। जिसमें ऐसे रोगी थे जो बिना किसी की सहायता के भोजन नहीं कर पाते थे। उन्हें स्वयं खाना खाने की आदत के लिए भोजन के समय नर्स सूचना देती थी कि ''भोजन तैयार है'' और साथ ही भोजन कक्ष का दरवाजा खोल दिया जाता था, 30 मिनट के बाद दरवाजा बन्द कर दिया जाता है, उसके बाद कोई रोगी खाना नहीं खा सकता था। इन रोगियों को बार-बार याद दिलाने और जबरदस्ती भोजन के लिये ले जाने वाला व्यवहार छोड दिया गयाय धीरे-धीरे भोजन कक्ष का दरवाजा केवल 20 मिनट, फिर 10 मिनट और 5 मिनट के लिए खुला रखा। इसका परिणाम यह हुआ कि केवल 3-4 दिन में ही सभी रोगी स्वयं जाकर भोजन करने लगे।

3. विरक्तिः-इसमें किसी दण्ड के माध्यम से व्यक्ति के व्यवहार में सुधार किया जाता है। इसमें व्यक्ति का व्यवहार किसी पुरस्कार से नहीं बल्कि दण्ड या कष्ट से सम्बन्धित हो जाता है।

उदाहरणः यदि किसी बच्चे में मिट्टी खाने की आदत पड़ जाती है तो उसकी मिट्टि में मिर्च या कोई कड़वी वस्तु मिला दी जाती है। जिससे वह धीरे-धीरे अपनी मिट्टि खाने की आदत छोड़ देता है।

4. आदान प्रदान अवरोधन उपचार पद्धतिः-इस चिकित्सा पद्धति के प्रतिपादक जे. ओल्प है। उनके अनुसार रोगी द्वारा व्यवहार में परिवर्तन करने का निश्चय व विश्राम के माध्यम से रोग को दूर किया जा सकता है। इस पद्धति में रोगी के सामने समायोजित प्रतिक्रिया की ठीक विरोधी प्रतिक्रिया को उपस्थित किया जाता है। जिससे वह असमायोजित प्रतिक्रिया को पूरा ही न कर पाये।

उदाहरणः- जोन्स (1924) ने एक प्रयोग किया है जिसमें एक बच्चा जिसे जानवरों से डर लगता था, उसके सामने भोजन करते समय एक जानवर को बन्द पिजडें में रखकर लाया जाता था। धीरे-धीरे उसे उस बच्चे के नजदीक लाया गया। कुछ दिनों के बाद बच्चे का भय उस जानवर के प्रति खत्म हो गया।

6.3.1 क्रमबद्ध असंवेदीकरण

व्यवहार चिकित्सा की यह विधि सबसे लोकप्रिय एवं महत्तवपूर्ण विधि है जिसका प्रतिपादन **साल्टर (1949)** तथा **ओल्प (1958)** द्वारा किया गया। इस विधि का उपयोग तब किया जाता है जब रोगी में परिस्थिति के प्रति ठीक तरह से अनुक्रिया करने की क्षमता होती है। क्रमबद्ध असंवेदीकरण मुख्य रूप से चिंता कम करने की एक प्रविधि है जो इस नियम पर आधारित है कि एक ही समय में व्यक्ति चिंता तथा विश्राम दोनों की अवस्था में एक साथ नहीं हो सकता है। इसमें रोगी को पहले विश्राम की अवस्था में होने का प्रशिक्षण दिया जाता है और जब वह इस विश्राम की अवस्था में होता है, तो उसमें चिंता उत्पन्न करने वाले उद्दीपकों को बढ़ते क्रम में दिया जाता है। अन्त में, रोगी चिंता उत्पन्न करने वाले उद्दीपकों के प्रति असंवेदित हो जाता है क्योंकि रोगी उन्हें विश्राम की अवस्था में उन्हें ग्रहण करने का अनुभव प्राप्त कर चुका होता है।

क्रमबद्ध असंवेदीकरण की प्रक्रिया द्वारा व्यवहार में परिवर्तन करने के निम्नलिखित चरण हैः-

1. आराम करने का प्रशिक्षण -इस अवस्था में रोगी को विश्राम करने का प्रशिक्षण दिया जाता है। यह कार्य चिकित्सा के पहले 5-6 सत्रों में पूरा किया जाता है। इस सत्रों में रोगी को अपनी मांशपेशियों को संकुचित

करने और अचानक उन्हें ढीला करने का प्रशिक्षण तब तक दिया जाता है जब तक कि रोगी पूरी तरह से विश्राम में नहीं आ जाता है। क्रमिक विश्राम प्रशिक्षण को जैकोवसन द्वारा 1938 में प्रतिपादित किया गया था। इस विधि में विभिन्न तरह के अभ्यासों के माध्यम से रोगी को मानसिक एवं शारीरिक रूप से आराम करने का प्रशिक्षण दिया जाता है।

2. चिंता सूची का निर्माण -इस अवस्था में चिकित्सक उन उद्दीपकों की एक सूची तैयार करता है जिनसे रोगी में चिंता उत्पन्न होती है। इस सूची में चिन्ता उत्पन्न करने वाले उद्दीपकों को बढ़ते हुए क्रम में रखा जाता है। अर्थात् सबसे कम चिंता उत्पन्न करने वाले उद्दीपक को सबसे नीचे, उससे अधिक चिंता उत्पन्न करने वाले उद्दीपक या परिस्थिति को उससे ऊपर और इसी तरह क्रमिक रूप से एक के बाद एक करते हुए सबसे अधिक चिंता उत्पन्न करने वाले उद्दीपक या परिस्थिति को सबसे ऊपर में रखा जाता है।

3. असंवेदीकरण की कार्य-विधि- इसमें रोगी को आराम से आँख बन्द करके कुर्सी पर बैठा दिया जाता है। इसके बाद उसके सामने चिकित्सक चिन्ता उत्पन्न करने वाली परिस्थिति का वर्णन करता है और रोगी से कहा जाता है कि वह उस परिस्थिति में अपने आपको रखकर उसकी कल्पना करे ! उसे बताया जाता है कि उस परिस्थिति की कल्पना करके यदि उसे डर लगने लगे तो वह अपना दायां हाथ उठाये ! यदि रोगी हाथ उठाता है तो चिकित्सक उसे उस परिस्थिति की कल्पना बन्द करने का आदेश देता है। इससे उसमें शारीरिक शिथिलता आ जाती है। थोडी देर बाद फिर उससे थोड़ा बढ़ी हुई चिन्ताजनक परिस्थिति की कल्पना करने को कहा जाता है तो वह चिन्ता उत्पन्न करने वाली स्थिति के प्रति असंवेदीकरण हो जाता है। चिकित्सक तब तक अपने सत्र को जारी रखता है जब तक रोगी पूरी तरह से उस परिस्थिति में शान्त रहने में सफल नहीं हो जाता है। जिससे सबसे अधिक चिन्ता उसमें उत्पन्न हो जाती है।

उदाहरणः यदि किसी व्यक्ति को पानी से डर लगता है तो चिकित्सक सबसे पहले उसे एक आरामकुर्सी में बैठाकर उससे 10-15 सेकेण्ड तक ये कल्पना करने को कहता है कि वह पानी में है! उसे कई दिनों तक इसी तरह की कल्पना करायी जाती है। फिर धीरे-धीरे समय को बढ़ा दिया जाता है! धीरे-धीरे उसके सामने चिन्ता स्तर को भी बढा दिया जाता है अर्थात् उससे कहा जाता है कि वो कल्पना करें कि वह डूब रहा है! यदि इस परिस्थिति में उसे डर लगता है तो उसे फिर से पुरानी स्थिति में ले आते है। इस तरह कई सत्र करवाये जाते है और धीरे-धीरे वह पानी के प्रति असंवेदनशील बन जाता है और उसका डर खत्म हो जाता है

।

असंवेदीकरण प्रविधि के दो मुख्य रूप है-

1. सामूहिक असंवेदीकरण -इस प्रारूप में कई रोगियों को जिनके लक्षण लगभग समान होते है एक साथ बिठाकर चिन्ता उत्पन्न करने वाली परिस्थितयों या उद्दीपकों का एक सामान्य बढ़ते क्रम में तैयार किया जाता है। पदानुक्रम में ऊपर की ओर बढ़ना उस बिन्दु पर रोक दिया जाता है जब उन रोगियों में से सबसे कम चिन्तित रोगी को सफलता मिल जाती है।

2. इन विवो असंवेदीकरण- यह एक बहुत लोकप्रिय प्रारूप है जिसमें जीवन की वास्तविक परिस्थिति में विभिन्न तरह के चिन्ता उत्पन्न करने वाले उद्दीपकों से क्रमिक ढंग से रोगी का सामना कराया जाता है। इसमें मांशपेशियों को नरम करने का प्रशिक्षण चिकित्सक देते है जो रोगी को विभिन्न तरह के वातावरण में ले जाकर

चिंता कम कराने का कार्य करते है। इस प्रारूप का उपयोग दुर्भीति (डर) के गंभीर रोगी के उपचार में काफी किया है।

गुण -

1. क्रमबद्ध असंवेदीकरण की प्रविधि एक लाभदायक चिकित्सीय विधि है। इस प्रविधि का उपयोग उन चिन्ता समस्याओं को दूर करने के लिए किया जाता है जिनमें चिन्ता करने वाली परिस्थिति या उद्दीपक स्पष्ट होता है। इसलिए दुर्भीति के रोगियों के उपचार में इस विधि को काफी सफलता मिली है ओल्प ने 91 प्रतिशत रोगियों को इस विधि द्वारा रोगमुक्त किया !
2. क्रमबद्ध असंवेदीकरण का उपयोग उस परिस्थति में भी किया जाता है जहाँ व्यक्तियों में चिन्ता स्पष्ट न होकर छिपी होती है। जैसे व्यक्ति को ध्यान केन्द्रित करने में कठिनाई होना, खराब स्मृति, बोलने में धाराप्रवाहिता की कमी, लैंगिक अनिच्छा, पेशीय कार्यो की असंगतता आदि है। इन लक्षणों के उपचार में क्रमबद्ध असंवेदीकरण का उपयोग किया जाता है।

दोष-

1. सभी तरह के रोगियों की चिन्ताओं तथा डर का उपचार नहीं किया जा सकता है।
2. ऐसी रोगी जिन्हें विश्राम की अवस्था में आने में काफी कठिनाई महसूस होती है।
3. ऐसे रोगी जो चिन्ता उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों के बारे में वास्तविक सूचना न देकर गलत सूचना देते है।
4. ऐसे रोगी जिनकी कल्पना शक्ति कमजोर होती है।

6.3.2 संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा

व्यवहार चिकित्सा में रोगी का उपचार उसके व्यवहार में परिवर्तन करके किया जाता है परन्तु रोगी के आंतरिक घटनाओं जैसे उसके चिंतन, प्रत्यक्षण, मूल्यांकन तथा आत्म-कथनों आदि पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है। संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा में रोगी की इन संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं को ध्यान में रखते हुए चिकित्सा की जाती है। यह एक ऐसी व्यवहार चिकित्सा है जिसमें मानसिक रोग का कारण संज्ञान या चिन्तन माना जाता है। इसमें रोगी गलत चिन्तन तथा विश्वास का त्याग करके उसकी जगह पर उपयुक्त चिन्तन एवं विश्वास अपनाता है और समायोजी व्यवहार करने में सफल हो पाता है।

स्वरूप -

संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा में असामान्य या कुसमायोजित व्यवहार का कारण गलत संज्ञान या चिंतन माना जाता है।

1. इस चिकित्सा में रोगी के इस गलत संज्ञान या चितन को दूर करके उसके जगह पर सही संज्ञान या चिंतन विकसित करने की कोशिश की जाती है। जिसे संज्ञानात्मक पुनर्सरचना कहा जाता है।

लक्ष्य

1. रोगी के लक्षणों को दूर करके उन्हें समस्या समाधान में मदद करना।

2. रोगी में कुछ इस ढंग की युक्तियाँ विकसित की जाती है, जिसके सहारे वह अपने भविष्य की समस्याओं से निबट सके।

3. रोगी को इस ढंग से मदद करना ताकि वह अपने अतार्किक तथा आत्म-हीनता की सोच से हटकर तार्किक तथा धनात्मक विचारों पर अपना ध्यान लगा सके।

संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा के प्रकार

1. रैसनल-इमोटिव चिकित्सा
2. बेक का संज्ञानात्मक चिकित्सा
3. तनाव-टीका चिकित्सा
4. बहुआयामी चिकित्सा

6.3.2.1 रैसनल-इमोटिव चिकित्सा

इस चिकित्सा विधि का प्रतिपादन एल्वर्ट इल्लिस (1958, 1973,1975) द्वारा किया गया। इसे संक्षेप में RET कहा जाता है। इस चिकित्सा विधि की पूर्वकल्पना यह होती है कि रोगी का सांवेगिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं का कारण आंतरिक एवं अतर्कसंगत विचार एवं विश्वास होते है। यह विश्वास तथा विचार व्यक्ति में होता है तथा जो उन्हें यह सोचने के लिए मजबूर करता है कि उनकी खुशी के लिए उनकी इच्छाओं को पूरा करना जरूरी है। यहाँ चिकित्सक रोगी के ऐसे अविवेकपूर्ण व्यवहार तथा विश्वासों की खोजबीन करता है, चिकित्सक रोगी के मन में ऐसे विश्वासों को हटाकर उनमें नया विश्वास तथा आशा विकसित करता है ताकि वह फिर से समायोजित या अनुकूलित व्यवहार करने लगे। इस तरह से चिकित्सक रोगी के विश्वास तथा आत्म कथनों को बदलकर फिर से बनाने का प्रयास करता है।

1. पहली विधि तो यह है जिसमें रोगी के सामने विवेकपूर्ण तथ्य लाये जाते है और उसके गलत विश्वासों और नकारात्मक सोच को बदला जाता है

2. दूसरी विधि वह है कि जिसमें चिकित्सक रोगी को कुछ सजृनात्मक कार्य करने को देता है जिससे उसके व्यवहार एवं चिन्तन में परिवर्तन आता है। जैसे-चिकित्सक रोगी को गृह-कार्य के रूप में कुछ कार्य या अभ्यास करने को दे देता है। अपने गलत विश्वास के विरूद्ध कार्य करते समय रोगी को मन-ही-मन यह सोचने के लिए कहा जाता है, '' मैं सचमुच में एक अच्छा काम कर रहा हूँ।''

गुणः-

1. RET अत्यधिक क्रोध, विषाद तथा समाज-विरोधी व्यवहार को कम करने में प्रभावी होता है।

प1. RET द्वारा उन लोगों की भी मदद की जाती है जो सांवेगिक रूप से बीमार न होकर स्वस्थ है परन्तु दिन-प्रतिदिन की समायोजन में कुछ सामान्य कठिनाई होती है।

दोषः-

1. सामाजिक चिन्ता को कम करने में RET अन्य दूसरी प्रविधि जैसे-क्रमबद्ध असंवेदीकरण की तुलना में कम लाभदायक है।

6.3.2.2. बेक का संज्ञानात्मक चिकित्सा

इस चिकित्सा विधि का प्रतिपादन ए0टी0 बेक (1979) द्वारा विषादी रोगियों के चिन्ता विकृतियों तथा दुर्भीति के उपचार के लिए किया गया था। बेक की इस चिकित्सा पद्धति की पूर्वकल्पना यह है कि जब रोगी का स्वयं अपने बारे में, अपने वातावरण के बारे में तथा अपने भविष्य के बारे में अतार्किक चिन्तन होता है तो विषाद जैसी समस्या उत्पन्न होती है। इस तरह की अतार्किक चिन्तन रोगी को अपने बारे में, अपनी दुनिया के बारे में तथा अपने भविष्य के बारे में निराशवादी ढंग से सोचने के लिए मजबूर करता है। बेक ने इन तीन तरह के अतार्किक एव गलत चिन्तन को **'संज्ञानात्मक त्रिक'** कहा है।

विषादी रोगियों में विकृत चिन्तन के कई प्रकारों का वर्णन किया है, जिनमें निम्नांकित प्रमुख है।

1. मनचाहा अनुमान- इसमें रोगी अपर्याप्त या अतर्कसंगत सूचनाओं के आधार पर अपने बारे में अनुमान लगाता है। जैसे-यदि किसी व्यक्ति को यह विचार आता है कि वह बेकार है क्योंकि उसे किसी शादी में नहीं बुलाया गया तो यह मनचाहा अनुमान का उदाहरण होगा।

2. आवर्धन- इसमें रोगी किसी छोटी घटना को बढ़ा-चढ़ा कर सोचता है और बताता है। जैसे-यदि कोई व्यक्ति यह सोचता है कि उसके द्वारा बनाया गया मकान बेकार हो गया क्योंकि उसमें पूजाघर के लिए कोई जगह नहीं बच सका, तो इस तरह का चिंतन आवर्धन का उदाहरण होगा।

3. न्यूनीकरण- इसमें रोगी बडी घटना को बहुत छोटा कर उसके बारे में विकृत ढंग से सोचता है। यह आवर्धन के विपरीत है। जैसे-यदि कोई छात्र यह सोचता है कि वह केवल भाग्य के भरोसे परीक्षा में सफल हो पाया है जबकि वह मूर्ख एवं बुद्धिहीन है, तो यह न्यूनीकरण का उदाहरण होगा।

इस चिकित्सा में रोगी को कुछ ऐसे व्यवहार करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है जिसमें वे अपने बारे में कुछ ऐसी सूचना इकट्ठा कर सके जिससे वे स्वयं ही अपने गलत विश्वास को हटा सके। संज्ञानात्मक चिकित्सा में रोगी के निम्न उपायों पर बल डाला जाता है।

1. संज्ञान, संवेग तथा व्यवहार के बीच संबंधों की पहचान करना।
2. गलत विश्वासों एवं विकृतियों मे परख करना।
3. कुछ 'गृह-कार्यो' को करना जिससे रोगी में निराशावादी सोच नही आ पाती और वह नये चिंतन उपायों का रिहर्सल करता है।

6.3.2.3. तनाव-टीका चिकित्सा

यह चिकित्सा विधि एक तरह का आत्म-निर्देशन विधि है। इस चिकित्सा में पूर्वकल्पना यह होती है कि रोगी की समस्या का मूल कारण उसके व्यर्थ या बेकार के विश्वास होते है जो व्यक्ति में नकारात्मक सांवेगिक अवस्था एवं कुसमायोजित व्यवहार उत्पन्न करते है। इस चिकित्सा विधि में यह निश्चित किया जाता है कि रोगी किन-किन तरह

के तनावों से ग्रस्त रहा है। उसके संज्ञान में किस तरह से परिवर्तन लाया जा सकता है ताकि वह इन तनावों के साथ ठीक ढंग से समायोजन करके चिन्तामुक्त हो सके।

चरणः इस चिकित्सा विधि के निम्नलिखित चरण हैः-

1. तैयारी की अवस्था - इस अवस्था में चिकित्सक तथा रोगी एक साथ मिलकर समस्या या तनाव उत्पन्न करने वाले उद्दीपकों या परिस्थितियों का पता लगाते है चिकित्सक एवं रोगी दोनों मिलकर कुछ ऐसे नये आत्म-कथन तैयार करते है जो रोगी के लिए अधिक समायोजी साबित होता है

2. अभ्यास की अवस्था - इस अवस्था में रोगी समायोजित आत्म-कथनों को सीखता है तथा तनाव उत्पन्न करने वाली काल्पनिक परिस्थिति मे ही अभ्यास करता है।

3. उपयोग एवं अभ्यास की अवस्था -इस अवस्था को इस ढंग से व्यवस्थित किया जाता है कि रोगी को पहले हल्का-फुल्का तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थिति में रखा जाता है और जैसे-जैसे उसमें आत्म-विश्वास आता जाता है, उसे गंभीर रूप से उत्पन्न करने वाले तनाव में रखकर उसमें आत्म-विश्वास एवं नये-नये समायोजी विश्वास उत्पन्न करने की कोशिश की जाती है।

तनाव टीका चिकित्सा का सफलतापूर्वक उपयोग कई तरह की नैदानिक समस्याओं के उपचार में किया गया है। जैसे-मैकेनवाम (1975) ने इस विधि का उपयोग चिंता के उपचार मेंय टर्क (1974) ने इसका उपयोग दर्द निवारण में उपचार में सफलतापूर्वक किया है।

6.3.2.4. बहुआयामी चिकित्सा

इस तरह के संज्ञानात्मक-व्यवहारपरक चिकित्सा पद्धति का विकास **लेजारस (1973,1989)** द्वारा किया गया है। इस चिकित्सा पद्धति में नैदानिक मनोवैज्ञानिक कई तरह की चिकित्सीय पद्धतियों को एक साथ मिलाकर रोगी का उपचार करते है। लेजारस के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में निम्नलिखित सात विमायें होती है।

1. व्यवहार
2. भावनात्मक प्रक्रियाएँ
3. संवेदन
4. प्रतिमा
5. संज्ञान
6. अन्तर्वैयक्तिक संबंध
7. औषध

इन सातों का संक्षेप में लेजारस ने **BASIC ID** के रूप में बताया है। लेजारस के इस चिकित्सा पद्धति की मान्यता यह है कि एक चिकित्सक को इन सातों या उनमें से कुछ क्षेत्रों की समस्याओं की पहचान करके उसी के अनुसार चिकित्सा पद्धति का उपयोग करना चाहिए। सबसे पहले चिकित्सक इस समस्याओं की पहचान करता है और उन्हें एक क्रम में व्यवस्थित करता है। उसके बाद इनके समाधान के लिये चिकित्सा विधि को अपनाता है।

लाभ-

a) बहुआयामी चिकित्सा का एक प्रमुख लाभ यह है कि इसमें रोगी की समस्याओं की पहचान अलग-अलग विमाओं के आधार पर की जाती है और उसी के अनुरूप चिकित्सा की जाती है। इसलिये इससे रोगी की समस्याओं का उपचार पूरी तरह से सम्भव हो पाता है।

b) इससे रोगी पर स्थायी प्रभाव पड़ता है और उसमें समायोजी लक्षण तेजी से विकसित होते है।

6.4 मानवतावादी-अनुभवात्मक चिकित्सा -

मानवतावादी-अनुभवात्मक चिकित्सा एक सूझ केन्द्रित चिकित्सा है। इस चिकित्सा पद्धति में व्यक्ति को एक लगातार आगे बढ़ने वाला प्राणी माना जाता है। इसके अनुसार व्यक्ति अपने भीतर छिपी अन्तःशक्ति का अनुभव करके अपने व्यवहार का मार्गनिर्देशन भी करते रहता है। जब उसकी इस समझ में गड़बड़ी उत्पन्न होती है तो व्यक्ति में असामान्य व्यवहार की उत्पत्ति होती है।

उद्देश्य

a) इस चिकित्सा में क्लायंट या रोगी को एक व्यक्ति के रूप में पहचानने व आगे बढ़ने पर बल डाला जाता है। इसमें चिकित्सक रोगी को उसके अन्दर की शक्ति को पहचानने पर बल देते है एवं उस तक पहुँचने में उसे मदद करते है।

b) इस चिकित्सा में क्लायंट तथा चिकित्सक के बीच का संबंध एक मुख्य कारक होता है जिसके सहारे धीरे-धीरे रोगी में सुधार होता है। यह एक वास्तविक आपसी संबंध होता है

c) क्लायंट के भविष्य के लिए उसके बीते अनुभव महत्वपूर्ण नहीं होते है केवल वर्तमान को ध्यान में रखा जाता है।

d) अधिकतर क्लायंट सामान्य लोगों के ही समान होते है। परन्तु वातावरण के प्रति उनका प्रत्यक्षण (नजरिया) भिन्न होता है और वे वैसा ही व्यवहार करते है। चिकित्सक वातावरण को रोगी की नजरों से देखकर ही उनकी समस्याओं को समझने की और समाधान का प्रयास करते है।

मानवतावादी-अनुभवात्मक चिकित्सा के अर्न्तगत निम्नलिखित तीन चिकित्सा पद्धतियॉ है-

a) क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा

b) गेस्टाल्ट चिकित्सा

c) अस्तित्ववादी चिकित्सा

6.4.1. क्लायंट-केन्द्रित चिकित्सा

इस चिकित्सा का प्रतिपादन कार्ल रोजर्स ने 1940 में किया था। इसे ''**व्यक्ति केन्द्रित चिकित्सा**'' या ''**अनिर्देशित चिकित्सा**'' भी कहा जाता है।

रोजर्स के अनुसार

a) स्वस्थ्य लोग अपने व्यहार से पूरी तरह अवगत होते है।

b) स्वस्थ्य लोग जन्मजात रूप से समायोजित एवं प्रभावी होते है। वे तभी असमायोजित एवं अप्रभावी हो जाते है जब उनकें सीखने में कहीं गलती हो जाती है।

c) स्वस्थ्य लोगों का जीवन उद्देश्यपूर्ण तथा लक्ष्य निर्देशित होता है।

d) चिकित्सक को क्लायंट को स्वतंत्र होकर निर्णय लेने के लिए तैयार करना चाहिए।

चिकित्सक के गुणः-

अगर चिकित्सक द्वारा सही एवं ठीक परिस्थिति या अवस्था उत्पन्न की जाती है, तब क्लायंट में परिवर्तन होगा। रोजर्स के इस चिकित्सा पद्धति के दौरान ऐसी छह विमाए है जिनमें चिकित्सा के वक्त परिवर्तन होते है।

a) **आत्मअभिज्ञा में वृद्धि-** इसमें क्लायंट अपनी वर्तमान अनुभूतियों पर ध्यान केन्द्रित करता है और उन भावों को समझने व पहचानने लगता है जिसका उसे पहले ज्ञान नहीं था। इससे क्लायंट में आत्म-ज्ञान में काफी बढोत्तरी होती है।

b) **स्वयं को स्वीकार करना-** रोजर्स की इस चिकित्सा के दौरान धीरे-धीरे क्लायंट अपने भावों एवं व्यवहारों का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेना अधिक शुरू कर देता है तथा अन्य लोगों तथा परिस्थिति पर दोष मढ़ना धीरे-धीरे कम कर देता है।

c) **सोच में बदलाव-** इस चिकित्सा पद्धति में रोगी की पुरानी सोच में बदलाव लाकर नई सोच विकसित की जाती है। जब व्यक्ति वातावरण को एक निश्चित तरीके से देखता है, तो इससे समस्या उत्पन्न होती है इसमें चिकित्सक द्वारा रोगी को उसकी परिस्थिति के अनुसार देखने व सोचने को कहा जाता है।

d) **आराम में वृद्धि-** रोजर्स द्वारा प्रतिपादित चिकित्सा में जैसे-जैसे चिकित्सीय बढता जाता है, क्लायंट को अपने अन्दर बदलाव दिखाई देता है और वह आराम या सुख-चैन का अनुभव करता है।

e) **आत्म-निर्भरता में वृद्धि-** जैसे जैसे चिकित्सा सत्र आगे बढ़ता है, क्लायंट दूसरों पर निर्भरता कम होने लगती है तथा उसे अपनी क्षमताओं पर विश्वास होने लगता है।

f) **क्लायंट के व्यवहारों में परिवर्तन-** क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा में क्लायंट के व्यवहारों में काफी परिवर्तन आ जाते है। वह स्वयं को पहचान कर, अपने बारे में सोचने लगता है। धीरे-धीरे उसके व्यवहार में तनाव की कमी देखी जाती है।

गुणः-

1. क्लांयट केन्द्रित चिकित्सा पद्धति सरल होती है। इसमें क्लायंट या रोगी की ही व्यक्तिगत पहल रहती है और उसमें सुधार आने लगता है।
2. साधारण कुसमायोजित व्यवहार के लिए नैदानिक मनोविज्ञानिकों द्वारा एक उत्तम प्रविधि मानी गयी है।

दोषः-

a) क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा गंभीर मानसिक रोगों के लिए ठीक नहीं होती है। उनमें व्यक्तिगत पहल एवं स्वयं को पहचानने की क्षमता नहीं होती है।

b) इसमें क्लायंट की समस्याओं का समाधान गहराई तक नही हो पाता है। इस कारण क्लायंट के रोग के लक्षण को फिर से लौट आने की संभावना होती है।

6.4.2. गेस्टाल्ट चिकित्सा

गेस्टाल्ट चिकित्सा का प्रतिपादन **फ्रेडेरिक एस0 (फ्रिज) पर्ल्स (1967, 1970)** द्वारा किया गया है। 'गेस्टालट' पद का अर्थ होता है-सम्पूर्ण (whole)। रोजर्स के समान पर्ल्स का भी यह विश्वास था कि व्यक्ति में एक जन्मजात अच्छाई होती है और उसकी इस प्रकृति को अभिव्यक्त करने का मौका दिया जाना चाहिए। जब व्यक्ति किसी कारण से इस जन्मजात गुण को अभिव्यक्त नही कर पाता तो वह कुंठित हो जाता है, जिसके कारण अनेक मनोवैज्ञानिक समस्याएँ होने लगती है।

लक्ष्य -

गेस्टाल्ट चिकित्सा का मुख्य लक्ष्य रोगी को आगे बढ़ने की प्रक्रिया को फिर से चालू करना होता है। इस लक्ष्य की प्राप्ति दो तरह से की जाती है।

a) रोगी अपनी आवश्यकताओं, इच्छाओं को समझे व स्वीकार करे।

b) इसमें व्यक्ति द्वारा उन्हें दूसरे लोगो से लिये गये अनुभवों तथा मूल्यों को बताया जाता है जो कि उनके व्यक्तित्व का एक हिस्सा बन जाते है।

गेस्टाल्ट चिकित्सा में वर्तमान अनुभवों पर बल डाला जाता है न कि दमित आवेगों या स्मृतियों की प्राप्ति पर तथा भविष्य के बारे में अनुमान लगाने पर।

पर्ल्स के अनुसार रोगी के वास्तविक जिन्दगी को खुशहाल बनाने एवं चिकित्सा में विकास के लिए यह आवश्यक है कि रोगी को वर्तमान की अनुभूतियों के बारे में जानकारी बढे। वे अपने कार्यो के उत्तरदायित्व को समझें।

गेस्टाल्ट चिकित्सा के तीन निम्नलिखित संप्रत्यय है -

a) वर्तमान के अनुभव- गेस्टाल्ट चिकित्सा में वर्तमान महत्तवपूर्ण होता है इस चिकित्सा का उद्देश्य इसी वर्तमान रोगियों के विश्वास को मजबूत करना होता है। चिकित्सा के दौरान चिकित्सक भरपूर यह कोशिश करता है कि रोगी का ध्यान उनके वर्तमान भावों, चिन्तनों एवं अनुभवों पर रहे।

b) जानकारी- जानकारी से तात्पर्य अनुभूतियों को स्वीकार करने की क्षमता से होती है।

c) उत्तरदायित्व- गेस्टाल्ट चिकित्सा का यह एक महत्तवपूर्ण संप्रत्यय है जिसमें व्यक्ति अपनी क्रियाओं एवं भावों की जिम्मेदारी स्वयं लेता है।

लेविटस्काई एवं पर्ल्स (1970) के अनुसार गेस्टाल्ट चिकित्सा के प्रमुख नियम इस प्रकार है।

a) रोगी से केवल वर्तमान काल में बातचीत करने के लिए कहा जाता है। पुरानी यादों तथा भविष्य को लेकर कोई बातचीत नहीं की जाती है।

b) बातचीत किसी के बारे में नहीं बल्कि समानान्तर स्तर पर की जाती है।

c) रोगी में उत्तरदायित्व (जिम्मेदारी) का भाव उत्पन्न करने के लिए उसे ''मै' शब्द का प्रयोग अधिक-से-अधिक करने के लिए कहा जाता है।

d) रोगी से लगातार केवल वर्तमान अनुभवों पर ध्यान लगाने को कहा जाता है।

e) कोई गप-शप या इधर-उधर की बात नहीं की जाती है।

f) यह कोशिश की जाती है कि रोगी कोई प्रश्न न करें क्योंकि प्रश्नों के माध्यम से वह अपने पुराने विचारों को व्यक्त कर सकता है।

गुण-

a) गेस्टाल्ट चिकित्सा में वर्तमान अनुभव तथा जानकारी पर ध्यान दिया जाता है रोगी के व्यवहार में परिवर्तन करने के लिए उसके पुरानी अनुभूतियों का विश्लेषण आवश्यक नहीं है।

b) गेस्टाल्ट चिकित्सा की संचालन विधियाँ काफी सरल एवं सुगम है इसका परिणाम यह होता है कि इस तरह की चिकित्सा बहुत उपयोगी सिद्ध होती है।

दोष

a) इस चिकित्सा की विधि में बहुत अधिक विभिन्नता है इसलिये इसके आधार पर सही एवं वस्तुनिष्ठ आँकड़े प्राप्त करने में मुश्किल आती है।

b) गेस्टाल्ट चिकित्सा में रोगी के वर्तमान पर बल डाला जाता है तथा उसके भूत एवं भविष्य पर ध्यान नही दिया जाता है।

6.4.3. अस्तित्ववादी चिकित्सा

इस चिकित्सा विधि का प्रतिपादन **विन्सवैन्गर (1942) तथा मे, एन्जिल एवं एलेनवर्गर (1958)** ने किया। इसमें व्यक्ति की वैयक्तिकता तथा उसके मूल्यों एवं भावों को समझा जाता है और रोगी के स्वस्थ अस्तित्व के लिए एक माहौल तैयार किया जाता है। इसमें व्यक्ति की स्वतंत्र इच्छाओं तथा उत्तरदायित्व पर अधिक बल डाला जाता है। अस्तिववादी मनोवैज्ञानिकों का मत है कि आधुनिक मनुष्य वास्तविकताओं से बहुत दूर चला गया है, उसका परम्परागत विश्वास खत्म हो चुका है और उसके अस्तित्व की क्षति हुई है। मनुष्य के सामने अनेक कठिनाईयॉ तथा समस्याये है परन्तु वह फिर भी स्वयं के अस्तित्व के प्रति जागरूक है, यह विशेषता केवल मनुष्य के पास है उसमें चिन्तन की योग्यता है और यह उसे स्वयं निर्णय करना है कि उसे किस तरह का व्यक्ति बनना है। मनुष्य का मुख्य उद्देश्य है जीवन मूल्यों की खोज करना।

अस्तित्ववादी मनौवैज्ञानिकों के अनुसार व्यक्ति को जीवित रहने के लिए अस्तित्ववादी चिन्ताओं से अवगत कराना पड़ता है। ये चिन्तायें निम्न है-

a) कि हमलोग एक दिन मर जाऐंगें, अस्तित्ववादी चिंता उत्पन्न करता है।

b) कि हमलोग अकेले है, अस्तित्ववादी चिंता उत्पन्न करता है।

c) आकस्मिक परिस्थितियों जैसे दुर्घटना आदि के साथ हमलोग लड़ नहीं सकते है, अस्तित्ववादी चिन्ता उत्पन्न करता है।

d) आगे हमें अपनी जिन्दगी को सँवारना है, अस्तित्ववादी चिंतन उत्पन्न करता है।

चिकित्सा का उद्देश्य व्यक्ति को इस तरह की चिंताओं से मुक्त करना होता है। यहाँ चिकित्सक रोगी को उसके आस-पास की वास्तविकताओं पर ध्यान देने को कहते है और व्यक्ति को उसके आंतरिक पहलुओं पर ध्यान देने तथा सुधारने में मदद करते है।

लक्ष्य -

a) चिकित्सक उसे जिन्दगी के सही अर्थ समझाते है। वह क्लायंट के पुराने एवं वर्तमान पसंदगियों या चयनों से रोगो को सामना कराते है। इन दोनों में से रोगी के वर्तमान चयनों को वे अधिक महत्तवपूर्ण मानते है।

b) अस्तित्ववादी चिकित्सक रोगी या क्लायंट को एक खुला एवं स्नेहपूर्ण वातावरण में रहने तथा दूसरों के साथ मधुर समबन्ध रखने की प्रेरणा देते है ताकि रोगी की यह चिन्ता दूर हो सके कि वह अकेला है।

c) अस्तित्ववादी चिकित्सा का लक्ष्य रोगी को उसके भीतर छिपी हुई अन्तःशक्ति से पहचान कराना है।

गुण-

a) अस्तित्ववादी चिकित्सा पहली चिकित्सा है जिसमें रोगी को अपने भीतर छिपी अन्तःशक्ति की पहचान करायी जाती है और जीवन का अर्थ बताया जाता है।

b) इस तरह की चिकित्सा में क्लायंट अपने अस्तित्व को वास्तविक ढंग से समझने की कोशिश करता है इसलिए इससे अस्तित्ववादी स्नायुविकृति के लक्षणों को दूर करने में काफी मदद मिलती है।

c) इसमें चिकित्सक व्यक्ति के जीवन मूल्यों पर ध्यान देते है तथा व्यक्ति को सार्थक जीवन बिताने में सहायता करते है।

दोष

a) इस चिकित्सा की इस आधार पर आलोचना की है कि इसके पीछे कोई व्यवस्थित वैज्ञानिक आधारशिला नहीं है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. व्यवहार चिकित्सा में ..... व्यवहार को परिवर्तित करके उसकी जगह पर .....व्यवहार को सिखलाने का प्रयत्न किया जाता है।
2. व्यवहार चिकित्सा का सबसे पहला सैद्धान्तिक स्रोत ..... द्वारा प्रतिपादित सीखने का सिद्धान्त है।
3. क्रमबद्ध असंवेदीकरण चिकित्सा विधि का प्रतिपादन .....ने किया था।
4. संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा में रोगात्मक व्यवहार का कारण .....माना जाता है।
5. रैसनल इमोटिव चिकित्सा का प्रतिपादन ..... ने किया।
6. बेक चिकित्सा पद्धति का प्रतिपादन .....रोगियों के उपचार में किया जाता है|

6.5 सारांश

1. व्यवहार चिकित्सा में मानसिक रोगियों का उपचार ऐसी प्रविधियों से किया जाता है जिसका आधार पैवलोव व स्किनर का अनुबन्धन सिद्धान्त है।

2. क्रमबद्ध असंवेदीकरण चिकित्सा विधि का प्रतिपादन साल्टर तथा ओल्प ने किया। इसमें रोगी को पहले विश्राम की अवस्था में लाने का प्रशिक्षण दिया जाता है और इसके बाद चिन्ता उत्पन्न करने वाले उद्दीपकों को बढ़ते क्रम में दिया जाता है। अन्त में वह चिन्ता वाले उद्दीपकों के प्रति असंवेदीकृत हो जाता है।

3. संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा पद्धति भी व्यवहार चिकित्सा के सिद्धान्तों पर आधारित है। इसमें संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं (चिन्तन, कल्पना) पर विशेष रूप से बल दिया गया है। इसके प्रमुख प्रकार है

a) रैसनल इमोटिव चिकित्सा b)बेक संज्ञानात्मक चिकित्सा c) तनाव टीका चिकित्सा d) बहुआयामी चिकित्सा ।

6.6 शब्दावली

1. एगेरोफोबिया- जिसमें खुले या सार्वजनिक स्थान से भय लगता है।
2. आत्म अभिज्ञा- स्वयं के बारे में अवगत होना अर्थात् अपने भावों तथा अनुभूतियों को समझना।
3. अनुबन्धन- ये एक ऐसी प्रक्रिया है। जिसके द्वारा उद्दीपको तथा अनुक्रिया के बीच एक सम्बन्ध स्थापित होता है।
4. स्नायुविकृति- इसे चिन्ता विकृति कहा जाता है। यह एक साधारण मानसिक विकृति है। इसमें व्यक्ति की ज्ञानात्मक, संवेगात्मक तथा क्रियात्मक प्रतिक्रियाओं में साधारण सी असामान्यता आ जाती है ।

6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. असमायोजित, समायोजित
2. पैवलोवियन अनुबन्धन
3. साल्टर तथा वोल्प
4. गलत संज्ञान या चिंतन
5. एल्बर्ट एलिस
6. विषाद, चिन्ता एवं दुर्भीति

6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान- अरूण कुमार सिंह-मोतीलाल बनारसीदास

2. आधुनिक नैदानिक मनोविज्ञान- डा0एच0के0 कपिल-हर प्रसाद भार्गव

3. असामान्य मनोविज्ञान- विषय और व्याख्या- डा0मुहम्मद सुलेमान, डा0 मुहम्मद तौवाव -मोतीलाल बनारसीदास

6.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. व्यवहार चिकित्सा क्या है? क्रमबद्ध असंवेदीकरण चिकित्सा की व्याख्या करिये।
2. संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा से क्या समझते है? यह व्यवहार चिकित्सा से किस प्रकार भिन्न है।
3. संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा के विभिन्न प्रकारों की व्याख्या कीजिए।
4. गैस्टाल्ट चिकित्सा की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन करिये।
5. रोगी केन्द्रित चिकित्सा के चरणों को समझाइये तथा उसके गुण व दोषों की व्याख्या करिये।
6. अस्तित्ववादी चिकित्सा क्या है? इसके गुण व दोषों का वर्णन करिये|

इकाई 7. चिंता विकृतियाँ:- भीषिका, दुर्भीति, सामान्यीकृत चिंता; मनोग्रस्तता-बाध्यता एवं उत्तर आघातीय तनाव विकृति (Anxiety Disorder:- Panic and Phobias, Generalized Anxiety disorder; Obsessive Compulsive Disorder and Posttraumatic Stress disorder)

इकाई संरचना

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 दुश्चिंता विकृति
7.4 भीशिका विकृति
7.5 दुर्भीति विकृति।
7.6 सामान्यीकृत दुश्चिंता विकृति
7.7 मनोग्रस्ति बाध्यता विकृति
7.8 तीक्ष्ण प्रतिबल विकृति
7.9 उत्तर अभिघातजन्य प्रतिबल विकृति
7.10 दुश्चिंता विकृति के कारण
7.11 दुश्चिंता विकृति के उपचार
7.12 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
7.13 सारांश
7.14 प्रश्नों के उत्तर
7.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.16 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

दुश्चिंता विकृति से तात्पर्य व्यक्ति की उन मानसिंक विकृतियों व समास्याओं से होता है जिसके कारण व्यक्ति में चिंता व तनाव का स्तर इतना अधिक बढ़ जाता है जिससे व्यक्ति अपनी वास्तविक जिंदगी के साथ समायोजन नही कर पाता है। इन विकृतियों के कारण रोगी का व्यक्तित्व प्रभावित होता है जिससे व्यक्ति ठीक प्रकार से कार्य करने में सक्षम नही हो पाता है और उसका व्यवहार कुसमायोजित हो जाता है।

भीषिका विकृति (Panic Disorder)के व्यक्ति को दौरा पढ़ने लगते है जिससे रोगी की हृदय ग्रति तीव्र चलने लगती है। हृदय गति के तीव्र होने से रोगी में शारीरिक परिवर्तन होने लगते है।

दुभीति विकृति में रोगी को अनेको प्रकार के डर व आशंकाए सताने लगती है जिससे रोगी अपनी समाजिक परिस्थतियों के साथ समायोजन करने में सक्षम नही हो पाता है। सामान्यीकृत दुश्चिन्ता विकृति से ग्रसित रोगी में दुश्चिंन्ता, डर आशंकाए आदि अत्यधिक होती है परन्तु वह इस डर, दुश्चिन्ता के कारणों का विश्लेषण उचित प्रकार से नही कर पाता हैं।

मनोग्रसित बाध्यता विकृति में रोगी न चाहते हुए विचारों को बार-बार दोहराता हैं। विचारों को अपनी इच्छा के विरूद्ध दोहराने की क्रिया में बाध्यता महसूस करता है। उत्तर अभिघातन प्रतिबल विकृति में रोगी को अत्यधिक आधात की स्थिति से गुजरना पड़ता है। इस विकृति में रोगी में प्रतिबल, तनाव की स्थिति उत्पन्न् हो जाती है जिसका कारण तीव्र आघात होते है। ये तीव्र आघात प्रियजन की मुत्यु, नौकरी छुटने व अत्यधिक गम्भीर रोग आदि भी हो सकते है जिससे रोगी अपनी वास्तविक जीवन में कुंठित व्यवहार की ओर अग्रसर हो जाते है।

7.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अर्न्तगत दुश्चिंता विकृति के छः प्रकारो के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेगें ।

- दुश्चिंन्ता विकृति
- भीषिका विकृति
- दुर्भीति विकृति
- सामान्यीकृत दुश्चिंन्ता विकृति
- मनोग्रस्ति-बाध्यता विकृति
- उत्तर अभिघातजन्य प्रतिबल विकृति।

7.3 दुश्चिंन्ता विकृति (Anxiety Disorder)

दुश्चिंन्ता विकृति अत्यधिक मात्रा मे लोगो में पायी जाती है इस प्रकार की विकृति के मुख्य लक्षण आंशका, भय, दुश्चिंन्ता आदि होते है। यदि व्यक्ति में दुश्चिंता की मात्रा तीव्र हो जाती है तो व्यक्ति को दौरा भी पड़ जाता है। दुश्चिन्ता के लक्षण साधारण व परिस्थिति जन्य होते है। क्योकि प्रतिबल/ तनाव की स्थिति न रहने पर लक्षण स्वतः ही समाप्त हो जाते है। दुश्चिंन्ता के उत्पन्न होने का कभी भी कोई स्पष्ट करण नही होता है। इन कारणो में परिवर्तन होता रहता है कभी एक कारण हो सकता **है** तो कभी दूसरा। इसे मुक्त प्रवाही दुश्चिंन्ता (Free Floating Anxiety) भी कहा जाता है।

दुश्चिंन्ता विकृति **से** तात्पर्य उन मानसिक विकृतियों व समस्याओं व विपदाओ से होता है जिसमें चिन्ता का स्तर इतना अधिक बढ़ जाता हैं कि व्यक्ति की वास्तविक जिंदगी प्रभावित होने लगती हैं। व्यक्ति के दिन प्रतिदिन के व्यवहार में परिवर्तन होने लगता है। व्यक्ति का वातारण के साथ समायोजन कुप्रभावित होने लगता है।

दुश्चिंन्ता प्रतिक्रिया के प्रत्यक्ष कारण के न होते हुए भी व्यक्ति में आशंका की स्थिति प्रतीत होती है। जिससें व्यक्ति में आन्तरिक तनाव उत्पन्न होने लगता है। इस तनाव को कम करने के लिए व्यक्ति शारीरिक क्रियाएं करता है, शारीरिक क्रियाएं करने के कारण व्यक्ति का शरीर भी प्रभावित होता है। व्यक्ति का तंत्रिका तत्रं भी एक प्रकार से तनाव की स्थिति में आ जाता है। ऐसी स्थिति में पहुचने से व्यक्ति अपनी पूरी कार्य कुशलता से कोई कार्य नही कर पाता है। उसमें कार्य करने की शक्ति धीरे-धीरे क्षीण व समाप्त होने लगती हैं।

दुश्चिंन्ता विकृति से पीड़ित रोगी दुश्चिंन्ता के अलावा तनाव, बैचेनी और घबराहट का निरन्तर अनुभव करता है। उसमें चिड़चिड़ापन, एकाग्रता में कठिनाई और अनिद्रा के लक्षण भी स्पष्ट दिखाई पड़ते है। व्यक्ति में जी मिचलाने, भूख न लगने, वजन कम होने जैसे लक्षण भी उभरने लगते है। बिना किसी कारण के हृदय गति भी तीव्र होने लगती है, रक्तचाप, नाडी गति बढ़ जाती है, रोगी का आत्म विश्वास काम होने लगता है। वह आंशका व डर से हमेशा भयभीत रहने लगता है।

दुश्चिन्ता विकृति से संबंधित उदाहरण:-

एक नवयुवक को निरन्तर ये शिकायत रहती थी कि उसके साथ कुछ बुरा होने वाला है। वह बहुत महीनो से शारीरिक थकान का अनुभव कर रहा था। उसके सिर, कमर तथा पैरो मे अति तीव्र दर्द रहने लगा। कभी-कभी उसे ऐसा महसूस होने लगता है कि उसके दिल की धड़कन तेज हो जाती है और उसका जीवन समाप्त होने वाला है।

मनोचिकित्सा का उपयोग करके रोगी के बारे में पता चला कि वह युवक अपने पिता के साथ व्यवसाय करता था उसे अपने पिता का कठोर तथा कटु व्यवहार बिल्कुल पसन्द नही था और इस कारण वह अपने पिता से आन्तरिक रूप से घृणा करता था। परन्तु पिता का सामना नही करने व उसकी दी हुई नौकरी को छोड़ने को साहस नही जुटा पा रहा था।

मनोचिकित्सा के अर्न्तगत जब रोगी को स्थिति का पता चला तब वह खुलकर अपने पिता से मिलने लगा व उनके द्वारा दी गई नौकरी छोड़कर अन्य नौकरी आरम्भ कर दी तब उसके रोग के लक्षण भी लुप्त होने लगें। यह युवक अचेतन रूप से तीव्र इडिपस मनोग्रन्थि (Oedipus Complex)से पीडित था अगर रोगी इडिपसी मनोग्रन्थि से पीडित न होता, तब इससे दुश्चिन्ता तंत्रिकाताप के विभिन्न शारीरिक लक्षण भी सम्भवता दृष्टिगत न होते है।

दुश्चिंन्ता विकृति एक नैदानिक समास्या है (**DSM-IV)** के अनुसार दुश्चिंन्ता विकृति के मुख्य छः प्रकार होते है के स्लर तथा उनके सहयोगियों के अनुसार व्यस्क जनसंख्या के करीब 15 से 16 प्रतिशत लोग दुश्चिंन्ता विकृति के किसी न किसी प्रकार से आवश्यक ग्रस्त होते है। दुश्चिन्ता विकृति के छः प्रकार इस प्रकार है--

1. भीषिका विकृति।
2. दुभीति विकृति।
3. सामान्यीकृत दुश्चिन्ता विकृति।
4. मनोग्रस्ति बाध्यता विकृति।

5. उत्तर आधतीय तनाव विकृति।

6. तीक्ष्ण प्रतिबल विकृति।

7.4 भीषिका विकृति (Panic Disorder):-

इस तरह की विकृति में रोगी के बार-बार तीव्र दौरे पड़ते है। इस तरह का दौरा पड़ने पर सावेंगिक रूप से तीव्र आंशका तथा भय के लक्षण विकसित हो जाते है। इस तरह के दौरा पड़ने पर व्यक्ति की हृदयगति तीव्र हो जाती है। हाथ-पाव ठंडा हो जाते है, सीने मे दर्द होने लगता है, वह अपने पांव पर खडा नही हो सकता है। रोगी को ऐसा लगने लगता है कि जैसे वह मरने वाला है व कोई भयानक घटना घटने वाली है। इस प्रकार के दौरे पड़ने के कारण रोगी को लगता है कि उसे दिल का दौरा पड़ने वाला है, जिससे उसकी मृत्यु हो सकती है व उसका अपने शरीर के अंगों पर नियंत्रण खत्म हाने लगता हैं इस स्थिति मे व्यक्ति को भीषिका का दौरा अचानक पड़ता है। कुछ सैकंड व कुछ घण्टो के भी हो सकता है। इसीलिए रोगी चीख चीखकर कर आसपास के लोगो को इक्कठ्ठा कर लेता है और डॉक्टर के उपचार को तुरन्त बुलाने के लिए कहता है। डाक्टर के उपचार के बाद औषधि देने पर दौरे समाप्त होने लगते है पर रोगी को यह आशका व डर हमेशा रहता है कि उसे दूसरा दौरा पड़ सकता है।

इस प्रकार के दौरे दिन में कई बार पड़ सकते है। यह महिने में एक दो बार भी पड़ सकते है। दौरो के बीच के अन्तराल में रोगी सामान्य स्थिति में भी बना रहता है। परन्तु उसमें चिन्ता की भावना पूर्णतः समाप्त नही हो जाती है बल्कि उसके जीवन का अभिन्न अंग बन जाता है जो दोबारा दौरा पड़ने पर स्वतः उभर आते है।

इस प्रकार के दौरे पड़ने पर रोगी अपनी वास्तविक, कल्पानिक, नयी पुरानी बातो, गलतियों की समीक्षा करता रहता है वह उन समस्याओं के बारे में सोचता रहता है जो अभी उसके सामने घटित भी नही हुई है। उनको लेकर हमेशा चिन्तित व आंशाकाओं से घिरा रहता है।

भीषिका विकृति घटनाक्रमः-

मेयर्स तथा उनके सहयोगियों (1984) के अनुसार इस विकृति का दर पुरूषों में 0.7 प्रतिशत तथा महिलाओं में लगभग एक प्रतिशत हेाता है। पोलार्ड एंव कार्न (1989) के अनुसार इस विकृति की शुरूआत आंरम्भिक अवस्था में होता है तथा इसका संबंध तनावपूर्ण जीवन की अनुभूतियों से होता है।

भीषिका विकृति के कारण:-

भीषिका विकृति के कारणो को दो भागों में बाटा जा सकता है।

1. जैविक कारक (Biological Factors)

2. मनोवैज्ञानिक कारक (Psychological Factors)

1. जैविक कारक (Biological Factors):-

टारगेरसन (1983) के अनुसार भीषिका विकृति एंकागी जुड़वा (Identical Twin)बच्चों में भ्रातीय जुड़वा (Fraternal Twin) बच्चो की अपेक्षा काफी अधिक पाया जाता है।

चार्नी एवं हैनगर (Charney & Heinger)(1986) के अनुसार जब व्यक्ति के मस्तिष्क का वह सर्किट जो आपात कालीन प्रतिक्रिया को धीमा करना है या बंद करना है, की क्षमता कमजोर हो जाता है, तो इससे उसमें भीषिका विकृति उत्पन्न होने की संभावना बढ़ जाती हैं रॉकिन्स तथा उनके सहयोगियों (1986) के अनुसार भीषिका विकृति के रोगी के मस्तिष्ठ के कुछ हिस्सों में रक्त् प्रवाह तथा आक्सीजन सामान्य से अधिक होता हैं। कुछ अध्ययनों से यह भी पता चला है कि जब श्वसन वायु में कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा सामान्य से अधिक होती हैं तो इस कारण से भी भीषिका का दौरा पड़ता है। क्योकि कि कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा अधिक होने से अतिश्वसन (Hyperventilation) अवस्था उत्पन्न होने की सम्भावना बढ़ जाती है।

2. मनोवैज्ञानिक कारण (Psychological Factors):-

क्लार्क (1989) के अध्ययन के अनुसार भीषिका विकृति उत्पन्न होने की एक महत्वपूर्ण कारण है कि व्यक्ति अपने भीतर उत्पन्न शारीरिक संवेदनाओं का सही व्याख्या नही करता है। भीषिका विकृति वाले रोगी सामान्य चिंता अनुक्रियाओं जैसे तीव्र हृदयगति, दम फूलने की स्थिति तथा चक्कर आने की स्थिति को यह मान लेते है कि अब भीषिका दौरा पड़ने वाला ही है। जब कि वास्ताविकता यह होता है कि यह अन्य कारको से उसमें होता है। ऐसी भ्रान्तिपूर्ण व्याख्या से व्यक्ति में परेशानी और भी अधिक बढ़ जाती है और अंततोगत्वा उसमें पूर्ण रूप से भीषिका विकृति उत्पन्न हो जाता है। इस बात का समर्थन होल्ट एवं एण्डरसन (1989) ने भी किया। अध्ययनों से यह भी पता चला है कि भीषिका विकृति में प्रत्यक्षित नियंत्रण का पर्याप्त महत्तव होता है।

भीषिका विकृति के उपचार:-

इस विकृति के उपचार के लिए कुछ औषध का उपयोग किया जाता है इसमें ट्राईसाईक्लिक विषाद विरोधी औषध (Tricyclic antidepressant drugs)तथा चिन्ता विरोधी औषध ((anti-anxiety drug) जैसे:- (Alprozalam) इस विकृति के रोगियों के उपचार में कुछ मनोवैज्ञानिक चिकित्साओं का भी उपयोग किया जाता है। क्लोसको एवं उनके सहयोगियों (1990) के अनुसार यदि शारीरिक संवेदनाओं की भ्रांत व्याख्या को यदि बदल दिया जाये जो इससे विकृति अपने आप दूर हो जायेगी।

7.5 दुर्भीति विकृति:-

दुभीति विकृति एक ऐसी नैदानिक समस्या है जिसमें व्यक्ति को विशिष्ट वस्तु क्रिया या परिस्थिति से सतत् एवं असंगत डर होता है। इसमें किसी भी छोटें बालक को रात के समय अचानक अधेरे के हो जाने से भयभीत होना या बालक के अकेले हाने पर किसी भयानक पशु को देखने से भयभीत होना एक सामान्य घटना है परन्तु जब कभी एक स्वस्थ किशोर अथवा प्रौढ़ व्यक्ति रात को थोड़े अंधेरे में अपने घर में अत्यधिक भयभीत होने लगते व तालाब कुँए, नदी आदि को देखकर कॉपने लगे व पालतु गाय, कुत्ते, बिल्ली को पास आता देखकर आंतक जैसी प्रतिक्रिया

करने लगे तब व्यक्ति का व्यवहार निश्चतः आसामान्य होता है। व्यक्ति के ऐसे अनियन्तीत अनैच्छिक, अंसंगत तथा अविवेकपूर्ण भय को दुभीति ही कहते हैं।

दुर्भीति विकृति के मुख्य तीन श्रेणी होती है। **एगोराफोबिया, सामाजिक दुर्भीति तथा विशिष्टि दुर्भीति**। **एगोराफोबिया** में व्यक्ति ऐसे सार्वजानिक जगहों में जाने से डरता है जिससे दूर रहना सम्भव नही है।

सामाजिक दुर्भीति में व्यक्ति वैसी सामजिक परिस्थति में जाने से डरता है जहाँ वह यह समझता है कि उसका मूल्याकंन किया जा सकता है। ऐसे लोग जन समूह के सामने बोलने या कुछ भी करने से घबराते है। ऐसे लोग शौचगृह का इस्तेमाल करने से डरते है। ऐसे व्यक्ति सामाजिक संबंधो से दूर रहना चाहते है।

विशिष्ट दुर्भीति वैसी होती है। जिसमें व्यक्ति कुछ लोग विशेष तरह के पशु पक्षी या कीड़े मकोड़े से काफी डरते है। उदाहरण स्वरूप ऐरेकनोफोबिया अर्थात मकडा से डर, साइनोफोबिया-कुत्ते का डर, टोनिट्रोफीबिया अर्थात आधी तूफान से डर आदि विशिष्ट दुर्भीति के कुछ उदाहरण है।

दुर्भीति प्रतिक्रियाएं अन्य आयु वर्गो की अपेक्षा प्रोढ़ावस्था के आरंम्भ में अधिक होती है यह पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों में अधिक होती है।

इसमे रोगी में दुर्भीति के अलावा कुछ शारीरिक लक्षण भी पाये जाते है। जैसे सिर का दर्द पेट में गडबड़ सिर चकराना, हीनता भावना, किसी गंम्भीर शारीरिक रोग की आंशका, अनिद्रा का मुक्त संबंधी कठिनाइया आदि। कुछ रोगियों में दुर्भीति प्रतिक्रियाओं की प्रकृति मनोग्रस्ति संबंधी होती है। मनोग्रस्ति संबंधी होती है। इसमें व्यक्ति के अचेतन में दमित अर्न्तद्धन्द्व से संबंधित तनाव व दुश्चिन्ता के प्रबल भाव तथा भय के लक्षण के रूप में एक दम फूट पडते है।

दुर्भीति उद्वीपक स्थिति से संबंधित व्यक्ति पलायन का भरसक प्रयास करते देखा जाता हैं तथा वह जितनी देर तक ऐसी स्थिति में अपने को फंसे देखता है उसके भय के लक्षण उतने ही अधिक उग्र होते ही चले जाते है।

दुर्भीति के लक्षणों के उत्पन्न होने का व्यक्ति की बौद्विक तथा सामजिक व आर्थिक स्थिति से कोई विशेष संबंध नही होता, परन्तु कुछ विशेष प्रकार की दुर्भीति की उत्पत्ति में आयु की विशिष्ट भूमिका आवश्य देखने में आती है। जैसे पशु दुर्भीति की उत्पत्ति विशेषत शैशवकाल तथा बाल्यकाल में देखने में आती है जब कि खुले स्थान की दुर्भीति विशेषता लड़कियों में यौवनारम्भ के समय पर देखने में आती हैं।

दुर्भीति का उदाहरण:-

एक स्वस्थ युवा लड़की को बहते हुए पानी से डर लगता था। भय का कारण समझने में असमर्थ थी। 7 से 20 वर्ष की आयु तक यह स्थिति बिना सुधार के ऐसी ही बनी रही। इस लड़की को बहते पानी की ध्वनि से भय लगता था। जैसे नहाने के लिए टब में पानी भरा जाता है था तो उसकी ध्वनि से दूर रहने के लिए घर से बाहर चली जाती थी। उसके परिवार के सदस्यों को काफी प्रयास करना पड़ता था। स्कूल में वह बहते हुए पानी की आवाज सुनकर मुचर््िछत हो जाती थी। इस प्रकार के भय के कारण उसको अपना जीवन व्यतीत करने में कठिनाई हो रही थी।

इस दुर्भीति का कारण यह था कि जब लड़की 7 वर्ष की थी तो वह अपनी माँ तथा मौसी के साथ पिकनिक पर गयी । शाम को जब माँ घर वापस आने लगी तो लड़की ने यह आग्रह किया कि वह कुछ दिन और अपनी मौसी के

साथ रहना चाहती है। उसने अपनी माँ को वचन दिया कि वह मौसी की आज्ञा के बिना कुछ नही करेगी । परन्तु कुछ समय बाद लड़की वचन तोड़कर अकेले घूमने चली गयी, काफी ढूढ़ने के बाद वह लड़की झरनों के बीच में पत्थरों के नीचे फसी हुई मिली। झरने का पानी ठीक उसके सिर पर गिर रहा था। जिससे भयभीत होकर चीख रही थी। घर आते समय उसकी मौसी ने वचन दिया कि वह उसकी माँ से शिकायत नही करेंगी। परन्तु लड़की ने इस बात पर विश्वास नही किया और घर वापस आते ही वह सो गयी और रात को ही उसकी मौसी चली गयी। दूसरे दिन से उसमें बहते हुए पानी की दुर्भीति उत्पन्न हो गयी। 13 वर्ष तक निरन्तर बनी रहने वाली दुर्भीति मौसी के केवल एक वाक्य पर समाप्त हो गयी मौसी ने लड़की **से** सिर्फ इतना कहा था मैने कुछ नही बताया।

आर्डड्सन (1968) के अनुसार तंत्रिकातापी विकारों से पीडित व्यक्तियों में से लगभग 8 प्रतिशत से लेकर 12 प्रतिशत व्यक्ति दुर्भीति के प्रतिक्रिया से पीड़ित पाये जाते है। युवा रोगियों में पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या अधिक रहती है। मार्क्स (1969) के अनुसार विभिन्न प्रकार की दुर्भीतियों में से पशु दुर्भीति से लगभग 95 प्रतिशत स्त्रियां पीडित पायी जाती है जबकि खुले स्थानों की दुर्भीति में उसकी सख्या 75 प्रतिशत तथा सामाजिक दुर्भीति से 60 प्रतिशत स्त्रियां पीड़ित पायी जाती है। स्त्रियों में भयभीत होने की क्रिया अधिक मान्य तथा स्वीकार्य है।

कारण:-

दुर्भीति प्रतिक्रियायें अनेक व्यक्तित्व विकारों और मानसिंक रोगो मे पायी जाती हैं दुर्भीतियाँ आन्तरिक अथवा बाह्य खतरो का सामना करने के ऐसे प्रयास है जिनसे इन खतरनाक पस्थितियों को उत्पन्न होने से रोका जाये या सावधानी पूर्वक उनसे बचा जाये। दुर्भीति के उत्पन्न होने के निम्न कारण हो सकते है।

1. अनुकूलन:-

अनुकूलन सिंद्धान्त के अनुसार जब कोई तटस्थ उद्धीपक उस समय उपस्थित हो जाये जब व्यक्ति किसी दूसरे कारण से भयभीत हो तो इस तटस्थ उद्धीपक में भी बाद के अवसरों पर भय उत्पन्न करने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है।

2. भयप्रद आवेगों के विरूद्ध सुरक्षा:-

व्यक्ति अपनी आक्रमता अथवा कामुक दमित इच्छाओं से उत्पन्न होने वाली दुश्चिन्ता से बचने और अपनी रक्षा के लिए दुर्भीति का सहारा लेता है। व्यक्ति जिस स्थिति से भयभीत होता है। वह भय का वास्तविक कारण नही होती। एक पति को नदी अथवा तालाब की दुर्भीति थी इसका कारण यह था कि उसके मन में अपनी पत्नी के डुबा देने की तीव्र इच्छा उत्पन्न होती रहती थी।

3. दमित अन्तर्द्धन्द्ध:-

दुर्भीति का मुख्य कारण व्यक्ति के अतीत के जीवन से संबंधित किसी एक घटना अथवा विषय वस्तु के प्रति दमित अर्न्तद्धन्द्ध रहता है।

4. प्रतिगामी व्यवहार:-

दुर्भीतिग्रस्त व्यक्ति का स्वभाव पलायनवादी तथा प्रतिगामी होता है। यदपि उसके प्रतिगमन का स्वरूप् सामान्यतः आंशिक ही रहता है। परन्तु फिर भी इसके उसमें अविवेकपूर्ण अपरिपक्व तथा शैशवकालीन व्यवहार के लक्षण एक विशेष स्थिति में एक दम से देखने में आने लगते है। मनोवैज्ञानिक दुर्भीति की उत्पत्ति बाह्य तथा पर्यावरण संबंधी कारको के अतिरिक्त शारीरिक कारको में देखने का प्रयास करते है।

उपचार:-

दुर्भीति मनोविकार के उपचार के लिए उसकी गम्भीरता तथा संबंधित रोगी की सामान्य स्थिति को आंकने की आवश्यकता होती है। दुर्भीति का उपचार इस बात पर निर्भर करता हैं कि उसका वास्तविक कारण क्या है ? यदि दुर्भीति का कारण कोई अभिघातपूर्ण अनुभव है तो उसका उपचार यह कि रोगी में इस अनुकूलन का विलोप अथवा विसंवेदन कर दिया जाये। यदि किसी बालक को कुत्ते ने काट लिया है और वह कुत्ते से भयभीत रहने लगता हो तो उसका उपचार है कि उसे बार बार आश्वस्त तथा प्रोत्सहित किया जाये ताकि वह किसी पालतू कुत्ते को छुने का साहस कर सके। यदि इस प्रक्रिया को बार बार दोहराया जाये तो वह कुत्ते की दुर्भीति से मुक्त हो जायेगा।

इससे व्यक्ति में एक निरपेक्ष घटना के प्रति भय उत्पन्न करने के स्थान पर मन पसन्द पुरस्कार देने की व्यवस्था की जाती है।

दुर्भीति ग्रस्त व्यक्ति की उपचार प्रक्रिया के लिए मनोचिकित्सक से लेकर व्यवहार रूपान्तरण तथा विद्युत आघात चिकित्सा तक की आवश्यकता पड़ सकती है। मनोचिकित्स के व्यवहार रूपांतरण से लाभ न मिलने पर विद्युत आघात चिकित्सा का उपयोग किया जाता है। ऐसी उपचार पद्धति का प्रयोग करने से उनमें रोग के तीव्र लक्षण उत्पन्न होने लगते है और दुर्भीति तीव्र हो जाती है।

7.8 सामान्यीकृत दुश्चिन्ता विकृति (Generalized Disorder or GAD):-

सामान्यीकृत दुश्चितन्ता विकृति के अर्न्तगत रोगी लम्बी अवधि तथा सत्त अवास्तिविक या अत्यधिक चिन्ता से ग्रस्त रहता है। इस प्रकार की चिंता को स्वंत्रत प्रवाही चिंता (Free Floating Anxiety) भी कहाँ जाता हैं। इस विकृति से ग्रसित व्यक्ति हमेशा तनाव, दुश्चिंन्ता एवं अवास्तिविकता की दुनियाँ में खोया रहता है। (DSM-IV)के अनुसार यदि किसी व्यक्ति की जिन्दगी कम से कम छः माह ऐसे ही व्यतीत हुए हो जिसमें से अधिकांश अवधि में उसे अवास्तविक एवं अत्यधिक चिंता बना रहे तो निश्चित रूप से ऐसे व्यक्ति को सामान्यीकृत दुश्चिन्ता विकृति का रोगी ही कहा जायेगा।

7.8.1 लक्षण (Symptoms):-

सांवेगिक रूप से ऐसे रोगी बेचैन, तनावग्रस्त, दिखायी देता है। वह भविष्य में घटित हाने वाले खतरों या घटनाओं जैसे हृदय आघात, मृत्यु या नियंत्रण खोने आदि जैसी बातो के बारे में सोच-सोचकर काफी परेशान रहता है। संज्ञानात्मक रूप से वह सदैव कुछ बुरा होने की उम्मीद करते रहता है। परन्तु वह यह नही बता पाता है कि क्या बुरा होने वाला हैं। पसीना आना, हृदयगति तीव्र होना, पेट में गड़बड़ी होना, सिर दर्द, हाथ पैर ठण्डा हो जाना आदि जैसी आपातकालीन दैहिक प्रतिक्रियाएं भी देखने में आती है। रोगी का व्यवहार बहुत ही असंयमित और

चिड़ाचिड़ापन वाला हो जाता है ऐसे व्यक्ति बहुत जल्दी थकान अनुभव करते है। और स्वंय को एकाग्रचित नही कर पाते है। ऐसे व्यक्ति को किसी निर्णय पर पहुचनें में अत्यधिक कठिनाई होती हैं।

7.8.2 घटनाक्रम (Incidence):-

रेपी ने (1991) के अनुसार यह विकृति सामान्य जनसंख्या के मात्र 4 प्रतिशत लोगों मे ही होता है। बारलो 1996 के अनुसार इस विकृति की शुरूवात सामान्यः 15 साल की आयु में प्रारंभ हो जाता है लेकिन कुछ लोग ऐसे भी होते है जिन्हे यह समस्या पूरी जिंदगी के दौरान होता रहता है। यह विकृति पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं में अधिक होता है।

7.8.3 कारण (Causes):-

1) जैविक कारण (Biological Factors):-

कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार इस विकृति का कारण जैविक भी होता है। स्लेटर एवं षिल्ड (1969) ने एकांगी जुड़वा बच्चों के 17 युग्मों तथा भ्रातीय युग्मों के 28 जुड़वाँ युग्मों का तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात यह परिणाम प्राप्त किया कि 49 प्रतिशत प्कमदजपबंस जूपदे बच्चों में सामान्यीकृत दुश्चिंता विकृति थी जबकि 4 प्रतिशत भ्रातीय जुड़वाँ में ही यह विकृति थी।

2)) मनोविश्लेषणात्मक कारक ((Psychoanalytic Factors):-

इस सिद्धान्त के अनुसार म्हव की इच्छा एंव प्क की इच्छा में अचेतन संघर्ष के परिणाम स्वरूप इस विकृति की उत्पत्ति होती है। चूँकि इस प्रकार के चिंता का कारण अचेतन संघर्ष होता है, अतः बिना कारण जाने ही हमेशा चिंतित एंव आशकित रहता है।

3) अधिगम सिंद्धान्त:-

ओल्पे (Wolpe)1958, ने इस प्रकार की विकृति का कारण विकृत अधिगम माना है। यदि कोई व्यक्ति जागृत अवस्था में सामाजिक संपर्क को लेकर चिंतित रहता है और यदि वह इस बात को लेकर अन्य लोगो के साथ अपना अधिक से अधिक समय व्यतीत करता है तब ऐसे व्यक्ति में सामान्य दुश्चिंता विकृति होना पाया जाता सकता है। इस सिद्वान्त के अनुसार व्यक्ति की चिंता बाह्य उद्धीपकों से अनुबंधित हो जाताहैं।

4) संज्ञानात्मक व्यवहारात्मक कारक:-

बारलों के अनुसार इस विकृति से ग्रस्त रोगी धमकी पूर्ण परिस्थतियों को अपने नियन्त्रण से परे मानते है जिसके कारण से उनमें अत्यधिक चिंता बना रहता है। **केन्डाल एवं इनग्राम (1989)** तथा बेक एवं उसके सहयोगियों में अनुसार जब व्यक्ति किसी साधारण एवं नयी परिस्थति को भी तनावपूर्ण एवं धमकी भरा प्रत्यक्षण करता है तो उसमें उस व्यक्ति में अनावश्यक चिंता बढ़ जाती है। ऐसे रोगी भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं को लेकर इस प्रकार परेशान रहता है। बटलर एवं मैक्यूज (1983) के अनुसार इस प्रकार के रोगी अस्पष्ट उद्धीपकों को अधिक धमकी पूर्ण समझते है तथा स्वंय के साथ अशुभ धटनाओं के होने की अशांका से भयभीत रहते है।

7.8.4. उपचार -

इस विकार से ग्रसित रोगी के लिए मुख्यतः दो तरह की प्रविधियाँ अधिक लोकप्रिय है।

1. जैविक या मेडिकल प्रविधि ((Biological or Medical techniques):-

चिंता-विरोधी औषधि लेने से रोगी के लक्षणों में कमी हो जाती है लेकिन यह भी देखा गया है कि (anti-anxiety drug)को बन्द करने के पश्चात पुनः लक्षण दिखायी देने लगते है। रोगी फिर से सोचने लगता है कि उसके चिंता के लक्षण का स्वरूप कुछ ऐसा है जिस पर नियन्त्रण नही पाया जा सकता है। इस प्रकार की औषधि के सेवन से तत्कालिक लाभ तो मिल जाता है लेकिन स्थाई लाभ नही मिलता है।

2. **संज्ञानात्मक व्यवहारात्मक चिकित्सा (**Cognitive Behavioral Therapy):-

प्रशान्तक औषधियों के सेवन से पश्चात मनोचिकित्सा के द्वारा ही व्यक्ति की दुश्चिंता के वास्तविकता कारणों को जानकर उसे दूर किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत व्यवहारात्मक चिकित्सा शिथिलीकरण, क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा, शाब्दिक निर्देश, माँडलिंग, क्रियाप्रसूत, जैसी प्रतिविधियों का उपयोग किया जा सकता है।

7.7 मनोग्रस्ति बाध्यता विकृति (Obsessive Compulsive Disorder) :-

मनोग्रस्ति और बाध्यता दो तरह की समस्याएं होती है। मनोग्रस्तता में रोगी बार-बार मन में आने वाले किसी अतार्किक एवं असंगत व अस्वागत योग्य विचारों को न चाहते हुए भी मन में दोहराता रहता है। रोगी ऐसे विचारों की अर्थहीनता, असंगतता एवं अतार्किक स्वरूप को भली भाँति समझता हैं और उनमे से छुटकारा भी पाना चाहता है परन्तु वह ऐसा नही कर पाता है। औ एक ही विचार बार बार उसके मन में आते रहता हैं। जिससे उसकी मानसिंक शांति इस हद तक क्षुब्ध हो जाती है कि उसके समायोजन में बाधा पहुचाती है। दूसरी समस्या बाध्यता है यह एक क्रियात्मक प्रतिक्रिया होती है जहाँ रोगी अपनी इच्छा के विरूद्ध किसी क्रिया को बार-बार करने के लिए बाध्यता महसूस करता है। ऐसी क्रियाएँ अवांछित ही नही बल्कि अतार्किक एंव असंगत होती है साफ सुथरे हाथ को बार बार धोने की क्रिया, ताला ठीक से लगा देने पर भी उसे बार बार झकझोर का देखना, सड़क पर खड़े होकर आते जाते गड़ियों को नम्बर नोट करना आदि बाध्यता के कुछ उदाहरण है।

एक सामान्य व्यक्ति में भी कभी-कभी कुछ विचार अनैच्छिक रूप से निरन्तर आते जाते देखे जाते है। जैसे कि एक गृहणी सोने से पहले अपने घर के दरवाजे की सिटकनी बन्द करके बिस्तर पर चली जाती है। और फिर मन ही मन जब यह शंका करने लगती है कि उसने दरवाजे की सिटकनी को ठीक प्रकार से बंद नही किया है तब उसका फिर से बिस्तर से उठकर सिटकनी के लगे होने की पुष्टि कर लेना एक प्रकार से सामान्य व्यवहार ही है, परन्तु इस संबंध में पुष्टि के हो जाने के पश्चात भी ग्रहणी द्वारा रात में बार बार अपने बिस्तर से उठकर सिटकनी के बन्द होने को देखते रहना आसामान्य व्यवहार तथा उसकी आधाभूत असुरक्षा की भावना का ही प्रतीक है जिसके कारण उसमें ऐसी मनोग्रस्ति बाध्यता देखने में आती है।

मनोग्रस्ति-बाध्यता के दो मुख्य रूप होते है। प्रथम मनोग्रस्थित बाध्यता के वे रूप जिनमें व्यक्ति के विचार तथा व्यवहार नैतिक तथा सौन्दर्यात्मक दृष्टिकोण से अवांछित तथा घृणित होते है। जैसे मानव हत्या संबंधी विचार,

अनुचित काम संबंधी विचार, प्रतिशोध के घोर व कर विचार, प्रियजनों को बुरी बुरी गाली देने के विचार आदि। दूसरे मनोग्रसित बाध्यता के कुछ ऐसे रूप भी होते है जिनका संबंध व्यक्ति को समाजिक व नैतिक विचारों तथा व्यवहारों से रहता है। ऐसी स्थितियों में व्यक्ति अपनी दमित पाप, अपराध भावनाओं के प्रति प्रायश्चित करते देखा गया है या फिर उन क्रियाओं तथा पूर्व सावधानियों का सहारा लेतें देखा जाता है जिनके द्वारा आन्तरिक तनाव कम हो जाते है।

मनोग्रस्ति बाध्यता से पीड़िता रोगियों की संख्या 4 प्रतिशत से लेकर 20 प्रतिशत तक देखने में आती है।

7.7.1 लक्षण:-

इस प्रकार के व्यक्तित्व विकार का मूल स्त्रोत व्यक्ति के अचेतन में दमित रहता है तथा इस अचेतन के कारण ही व्यक्ति चेतन स्तर पर अनेक निरर्थक लगने वाली क्रियाएँ करते देखा जाता है। मनोग्रस्ति बाध्यता के लक्षणो का संबंध व्यक्ति के दमित व अचेतन काम आवेगों, विरोध व धृणा के भावों, नैतिक व अनैतिक इच्छाओं, विचारों तथा विचित्र क्रियाओं से जुडे होता है।

संशय तथा अनिश्चिता का दोष मनोग्रसित व्यक्ति में अत्यधिक पाया जाता है। ऐसे व्यक्तियों के मन में हमेशा डर व आशंका बनी रहती है जिसके कारण वह महत्वपूर्ण निर्णय नही ले पाते है और हमेशा शंकाओं से घिरा रहते है। मनोग्रस्ति व्यक्ति के मन में अनेक अनिष्ठ विचार आते रहते है। वह इन विचारों के अर्न्तगत कुछ भी सोच सकता है, जैसे किसी पर आक्रमण करना, शत्रुता करना, घृणा करना, ऐसे ही अन्य आमानवीय विचार विकसित करने का प्रयास करता है। इनका व्यवहार निरर्थक होने के साथ-साथ अनैच्छिक व पुनरावृयात्मक होता है। वह अपने निरर्थक व्यवहार की पुनरावृत्ति करते रहते है चाहे उनकी इच्छा न हो। ऐसी अवस्था में रोगी शैशवकाल की परिस्थति का अनुभव करने लगता है। उसको असुरक्षा की भावना प्रतीत होती है। इसीलिए उसका व्यवहार बच्चों के समान बचकाना होने लगता है। मनोग्रस्ति-बाध्यता से पीड़ित व्यक्ति अपने अचेतन के वेदनापूर्ण तनाव को कम करने के लिए तथा अपने अहम् को विघटित होने से बचाने के लिए रक्षायुक्तियों को भी अपने व्यवहार में अनुप्रयुक्ता करता है। इस स्थिति में व्यक्ति के व्यवहार में दोष घृणा व विरोध के भाव अत्यधिक प्रबल उठते है।

मनोग्रस्ति व्यक्ति की विभिन्न बाध्यताओं के लक्षणों का स्वरूप व्यक्तित्व के अन्य विकारों में भी मिलता है। बाध्यतामूलक क्रियाओं का संबंध प्राय कामुकता और आक्रमकता से होता है। इनके अलावा मद्योन्माद ,अग्निदहनों माद, दर्शन रति विशिष्ट प्रकार की बाध्यताएं है।

1. **मद्योन्माद बाध्यता** (Dipsomania)में संबंधित व्यक्ति में मद्यपान के लिए अतिशय सनक देखनें में आती है तथा इसके लिए उसमें कभी-कभी दुश्चिन्ता जैसे दौरे पड़ने लगते है।

2. **चौर्योन्माद ((Kleptomania)** विकार के अर्न्तगत व्यक्ति कुछ विशेष वस्तुओां की चोरी के लिए आन्तरिक रूप से अति विवश रहता है। यद्यपि उसके पास वस्तु का कोई भी अभाव नही होता है।

3. **अग्निदहानोमाद ((Pyromania)** से पीड़ित रोगी के विचारों में आग लगाने की तीव्र इच्छा होती है। सम्पत्ति को ऐसे जलाने के उसे एक विशेष प्रकार की आनन्द की अनुभूर्ति होती है।

4. **फीटिशपरायणता ((Fetishism):** इसके अन्तर्गत व्यक्ति विभिन्न कर्म काण्डों व भूत प्रेत की पूजा आदि करने के प्रति अभिप्रेरित रहता है।

5. दर्शनरति ((Voyeurism) -इस मनोग्रस्ति के अन्तर्गत व्यक्ति विशेषतः पुरूष युवतियों व युवा महिलाओं को देखने व उनके शरीर के विभिन्न उद्धीपक अंगों पर ही आसामान्य रूप से मोहित रहने की बाध्यता होती है।

7.7.2 मनोग्रसित बाध्यता के कारण:-

मनोग्रस्ति बाध्यता तंत्रिकाताप के अनेक कारण हो सकते है जो निम्न प्रकार से है।

1. दमित संवेगात्मक अनुभव व काम संबंधी प्रबल तनाव:-

मनोग्रस्ति व्यक्ति अपने अचेतन में दमित काम संबंधी आवेगो के तनाव से अत्यधिक पीड़ित रहता है। इसके कारण उनका दोषपूर्ण दमन करता रहता है। दोषपूर्ण दमन के कारण आवेग अभिव्यक्ति के लिए निरन्तर लालायित रहते हैं जिससे व्यक्ति में प्रबल तनाव बना रहता है। एक पति को यह विचार बार-बार सताता है। कि उसकी पत्नी वफादार और चरित्रवान नही है इसका कारण यह कि स्वंय पति अपनी पत्नी के प्रति वफादार नही था। व्यक्ति दमित आवेगो के मूल स्त्रोत को जान नही पाता है।

2. दमित इच्छाओं के विस्फोट से रक्षा:-

व्यक्ति की दमित इच्छाएं अचेतन में सक्रिय होती है और निरन्तर यह प्रयास करती रहती है कि चेतन स्तर पर पहुँच जाये। ये अनैतिक अथवा भयानक इच्छाएँ चेतन स्तर पर न पहुच सके इसके लिए रोगी अपने चेतन स्तर को ऐसी इच्छाओं द्वारा व्यस्त रखता है जो अपेक्षाकृत कम भयानक होती हैं

3. **आत्म अवमूल्यन और अपराध भावना:-**

जब काई व्यक्ति ऐसा अनैतिक व्यवहार कर लेता है जो उसमें आत्म अवमूल्यन और अपराध भावना उत्पन्न कर दे तो मनोग्रसित बाध्यता के लक्षण इसी आत्म अवमूल्यन का कारण बन जाते है।

4. **विचार व व्यवहार का स्थिरीकरण:-**

मनोग्रस्ति बाध्यता विकार के अन्तर्गत व्यक्ति के आंशिक प्रतिगमन का एक परिणाम यह होता है कि उसके विचार व व्यवहार में स्वच्छाता तथा गंदगी, नैतिकता तथा अनैतिकता, प्रेम तथा घृणा के विचारों के प्रति एक प्रकार की कठोरता देखने में आती है। इससे ही उसके व्यवहार में बार-बार हाथ धोने व अत्यधिक स्वच्छ करने की बाध्यता देखी जाती है।

5. पाप तथा अपराध के लिए अचेतन स्वदंडन:-

ऐसे विकार से पीडित व्यक्ति में पराहम की कठोरता के कारण अपने पाप व अपराध के लिए दण्ड भोगने की तीव्र भय रहता है। जो कभी-कभी शारीरिक रोग के लक्षणों में भी परिवर्तित हो जाता है।

6. तनाव और दुश्चिन्ता विपत्तियों से भय:-

मनोग्रस्ति बाध्यता से पीड़ित रोगी में दुश्चिंन्ता व तनाव का भाव उत्पन्न होने लगते है। उसे सुरक्षा का आभाव व घोर विपत्तियों तथा क्षति होने का भय सताता रहता है। ऐसी संकट की स्थितियों से बचने के लिए अनेक अन्धविश्वासों का सहारा लेते है।

7. अत्यधिक कठोर व दोषपूर्ण समाजीकरण का प्रभाव:-

कैमरान के अनुसार व्यक्तित्व में मनोग्रस्ति बाध्यता की उत्पत्ति में उसकी दोषपूर्ण समाजीकरण की प्रक्रिया की भी विशिष्ट भूमिका होती है। दोषपूर्ण पारिवारिक स्थिति व सामजीकरण की प्रक्रिया के कारण भी व्यक्ति मनोग्रस्ति बाध्यता का शिकार हो जाता है।, क्योकि माता पिता के धैर्यहीन होने पर बालक भी अधीर अशान्त व शंका ग्रस्त रहने लगता है।

8. व्यक्तित्व के विशिष्ट घटक:-

मनोग्रस्ति से पीडित व्यक्ति में व्यक्तितत्व कारक अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। जैसे अर्न्तमुखिता, स्वघाती व्यवहार, आधारिक सुरक्षा का अत्यधिक अभाव, स्वदण्डन की अदम्य प्रवृत्ति, अंधविश्वासी व अपराध भाव से पीड़ित रहने का स्वभाव।

7.7.3 उपचार:-

इस प्रकार के व्यक्तित्व विकार के उपचार के लिए मनोचिकित्सा की अति महत्पूर्ण भूमिका होती है इसके अर्न्तगत पहले व्यक्ति के अचेतन मन के अध्ययन के लिए मनोविश्लेषण विधि के उपयोग की आवश्यकता होती है। जिससे व्यक्ति के आन्तरिक तनाव के मूलस्त्रोत का पता लग सके।

रोगी के आन्तरिक तनाव के अध्ययन में मनोविश्लेषण विधि सफल न होने पर नार्केशिस की आवश्यकता पड़ सकती है। इस स्थिति में रोगी के साक्षात्कार से महत्वपूर्ण सहायता मिलती है। इन सभी विधियों के विफल होने पर विद्युत आघात विधि तथा एक अन्य शैल्य चिकित्सा तथा प्रमस्तिष्क अंशोच्छेदन(टोपेक्टामी) का अन्तिम विकल्प के रूप में उपयोग किया जाता है। टोपेक्टामी चिकित्सा विधि के अर्न्तगत मस्तिक के उस विशेष अंग को विच्छेदित करके बाहर निकाल दिया जाता है जिसका संबंध मनोग्रस्ति विचार से पाया जाता है। मनोग्रस्ति बाध्यता के उपचार में व्यवहार चिकित्सा की भूमिका काफी महत्वपूर्ण होती है। व्यवहार चिकित्सा के तीन प्रविधियों क्रमशः माँडलिंग फ्लडिंग तथा अनुक्रिया निवारण को संयोजित करके मनोग्रसित-बाध्यता विकृति का उपचार किया जाता है। फोआ तथा कोजाक (1999) ने अपनी समीक्षा में 16 ऐसे अध्ययनों को सम्मिलित किया जिससे 300 रोगियों को व्यवहार चिकित्सा के इन तीनो प्रविधियों द्वारा उपचार किया गया था और परिणाम यह निकला की उसमें से करीब 83 प्रतिशत रोगियों को ऐसे उपचार से काफी फायदा हुआ।

7.8 उत्तर अभिघातीय तनाव विकृति (Posttraumatic Stress Disorder):-

यह एक ऐसी दुश्चिंता या डर है जिसकी उत्पत्ति विशिष्ट घटना से होती हैं। जैसे प्राकृतिक आपदा, आगजनी, भूकंप, बाढ़ , युद्ध आदि। इसके अतिरिक्त कुछ घटनाओं ऐसी होती हैं जिसके लिए व्यक्ति स्वंय जिम्मेदार होता है जैसे विवाह-विच्छेद, किसी को जान से मारना, बलात्कार आदि। ऐसी स्वभाविक या अस्वभाविक विशिष्ट घटना के बाद व्यक्ति में साँवेगिक तथा मनोवैज्ञानिक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है जिसके कारण से व्यक्ति का व्यवहार कुसमयोजी हो जाता है। इस तरह की स्थिति को ही उत्तर अभिघातीय तनाव विकृति कहाँ जाता है।

7.8.1 लक्षण(Symptoms):-

PTSD के सम्बन्ध में (DSM-IV)में छः लक्षण या कसौटी बतलाया गया है जिसके आधार पर इसकी पहचान की जाती है।

1) व्यक्ति को अपने दिन-प्रतिदिन की जिन्दगी में गंम्भीर तनाव से उत्पन्न मानसिक आघात की याद बार-बार आती है। यह याद जागृत अवस्था में भी आ सकती या नींद में भी।

2)) व्यक्ति हमेशा उन उद्धीपको से दूर भागने की कोशिश करता है। जो उस मानसिक आघात से उत्पन्न करने वाली घटनाओं से किसी न किसी रूप से साहचर्यित होता हैं क्योकि इससे उनमें गंभीर चिंता उत्पन्न होती है।

3) व्यक्ति में हमेशा उच्चस्तरीय उत्तेजना जैसे चिरकालिक तनाव तथा चिड़चिड़ापन का अनुभव होता है। साथ ही साथ उसमें अनिद्र की शिकायत हो जाती है तथा उनमें चिड़चिड़ान या वेचैनी के स्तर को भी वह सहन नही कर पाता है।

4) व्यक्ति में एकाग्रता की शिकायत रहती है तथा स्मृति लोप तीव्र हो जाती है। इसके अतिरिक्त दर्द संबंधी संवेदनाओं के प्रति सुन्नता ;छनउइपदहद्ध का गुण भी पाया जाता है।

अण् व्यक्ति में विषाद का स्तर बढ़ जाता है। वह अपने आप को सामाजिक संपर्क से दूर कर लेता है।

अ1) उपरोक्ता सभी लक्षण करीब एक माह से अधिक व्यक्ति मे मौजूद हो।

7.8.2 कारण:-

उत्तर अघातीय तनाव विकृति के निम्न कारण हो सकते है।

1. जैविक कारण ((Biological factors):-

क्रिस्टल एवं उनके सहयोगियों 1989 ,के अनुसार मानसिक आघात से नारएड्रीनरजिक तन्त्र ((Noradrenergic System)) प्रभावित हो जाता है। जिससे रक्त में नोरइपाइफ्राइन ((Nor epinephrine) का स्तर बढ़ जाता है। जिसके कारण से व्यक्ति में उत्तेजना और आक्रमकता बढ़ जाती है। कोल्ब के अनुसार जब व्यक्ति में पुराने स्नायविक रास्ते नष्ट हो जाते है। जो व्यक्ति में उत्तरअभिघात तनाव के लक्षण उत्पन्न करते है।

2. मनोवैज्ञानिक कारक ((Psycholgical Factors):-

ब्रेसलाऊ के अध्ययन से यह पता चला की माता-पिता से कम उम्र में ही बिछुड जाने पर विकृति का पारिवरिक इतिहास होने पर तथा महिलाओं में मानसिक आघात होने पर उत्तर अभितीय तनाव की विकृति को बढ़ने की संभावना अधिक हो जाती है। जोन्स एवं बारलो के अनुसार मानसिक आघात उत्पन्न होने के पहले जिन लोगो में मनोवैज्ञानिक कठिनाईया अधिक होती है उनमें PTSD के लक्षण अधिक विकसित होते है इस तरह के व्यक्तित्तव को पूर्ण विकृत व्यक्तित्व ((Premorbid Personality) कहाँ जाता है।

मनोगतिकी मॉडल के ((Pschodynamic Model) अनुसार, तीव्र एवं गहरे मानसिक आघात से निबटने की आवश्यकता के कारण व्यक्ति दमन का सहारा लेता है जिससे उसमें प्रत्याहार एवं सुन्नता के लक्षण विकसित होते है। दूसरी तरफ जब दमन कमजोर पड़ जाता है। तब व्यक्ति पुनः उस मानसिक आघात को अनुभव करने लगता है। जोन्स एवं बारलो के अनुसार जब व्यक्ति में आत्मनिन्दा, भविष्य में होने वाले मानसिक आघात की प्रत्याशा तथा भय का विकास आदि मौजूद होते है। तो ऐसी स्थिति में PTSD के लक्षण विकसित होते है।

3. सामाजिक कारक:-

उत्तर अभिघात विकृति की उत्पत्ति में सामजिक कारकों का भी योगदान होता है। इस क्षेत्र में किये गये अध्ययनों से पता चला है कि अधिक तीव्र एवं जान जाने वाली धमकी पूर्ण परिस्थतियों से भी PTSD के उत्पन्न होने की संभावना बढ़ जाती है। सामाजिक समर्थन की कमी से भी व्यक्ति में PTSD विकसित होता है। वियतनाम युद्ध से लौटने के बाद जिन सैनिको को सामजिक तिरस्कार का सामना अधिक करना पड़ा, उनमें उत्तर अभिधात विकृति का विकास तेजी से हुआ।

7.8.3 उपचार:-

उत्तर अभिघात कारक तनाव के लिए कुछ आपातकालीन उपाय किये जाते है। इस आपाकलीन उपायों में गहरी वैयक्तिक परामर्श से लेकर सामूहिक परिचर्चा का सहारा लिया जाता है। इस प्रकार के आपातकालीन उपाय एक तरह से निवारण(Preventive) उपाय होते है। PTSD के उपचार में विभिन्न तरह के चिंता-रोधी औषध तथा विभिन्न प्रकार के विषाद-विरोधी औषध का उपयोग किया जाता है।

मनोचिकित्सकों ने इस विकृति के उपचार हेतु कुछ विशेष सुझाव दिया है। जिन्हे निम्नक्रमानुसार उपयोग किया जा सकता है।

- क्लायंट के साथ विश्वसनीय संबंध कायम करना।
- मनसिक आघात से निबटने की प्रक्रियाओं के बारे में क्लांयट को शिक्षा देना।
- मानसिक आघात को पुनः अनुभव करने का साहस उत्पन्न करना।
- क्लायंट के अनुभवों में मानसिक आघात से संबद्ध अनुभवो को समन्वित करना।

उपरोक्त क्रम को अपनाकर उपचार करने पर काफी सफलता मिलती है।

7.12 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

- दुश्चिंता विकृति के मुख्य लक्षण कौन से है?
- DSM का पूरा नाम क्या है?
- DSM का चतुर्थ संस्करण किस सन् में प्रकाशित हुआ ?
- DSM के अनुसार दुश्चिंता विकृति के कितने प्रकार है ?
- भीषिका विकृति में दौरे पड़ने की गति कैसी होती है ?
- दुर्भीति विकृति की तीन श्रेणियों के नाम को उल्लेखित करें ?
- दुर्भीति विकृति के दो कारण बताइयें ?
- मनोग्रस्ति-बाध्यता से पीड़ित रोगियों का प्रतिशत कितना है।
- मनोग्रस्ति बाध्यता के दो कारण बताइये ?
- टोपेक्टामी चिकित्सा क्या है ?
- दुश्चिंता विकृति के तीन कारण कौन-कौन से हैं?
- दुश्चिंता विकति के उपचार में कौन कौन सी विधियाँ सहायक है?

7.13 सारांश

दुश्चिंता विकृति के उत्पन्न होने के लिए व्यक्ति की व्यक्तिगत समस्याये उत्तरदायी होती है। व्यक्ति अपनी जीवन की अनेको समस्याओं व विपदाओं के कारण एक सी ऐसी परिस्थति में फस जाता हैं जो उसमें दुश्चिंता उत्पन्न कर देती है जिसके कारण व्यक्ति अपने वातावरण के साथ समयोजन नही कर पाता है जिससे उसका व्यवहार कुसमायोजित हो जाता है। इस कुसमयोजित व्यवहार के कारण व्यक्ति में दुश्चिंता के लक्षण उत्पन्न होते देखे जाते है। दुश्चिंता विकृति के छः प्रकार होते है। भीषिका विकृति, दुर्भीति विकृति सामान्यीकृत दुश्चिंता विकृति मनोग्रस्तता बध्यता विकृति, उत्तर अभितीय तनाव विकृति, तीक्ष्ण प्रतिबल विकृति भीषिका विकृति से पीड़ित व्यक्ति को अत्यधिक तीव्र दौरे पड़ते है। जिसके कारण व्यक्ति को हृदय गति आसामन्य हो जाती है, सांस थमने लगती है, चक्कर आना लगते है। रोंगी को उपचार देने के पश्चात ये दौरे सामाप्त होने लगते है। दुर्भीति विकृति के अर्न्तगत रोगी को किसी वस्तु परिस्थति व सार्वजानिक स्थानों पर जाने से असंगत डर लगता हैं। दुर्भीति विकृति के कारण रोगी वातावरण में घटने वाली घटनाओं से भयभीत रहता है। दुर्भीति विकृति के उत्पन्न होने के कई कारण होते हैं जैसे अनुकूलन भयप्रद आवेगों के विरूद्ध सुरक्षा, दमित अर्न्तद्धन्द्ध प्रतिगामी व्यवहार आदि।

मनोग्रस्ति-बाध्यता में रोगी न चाहते हुए भी ऐसे कार्यों को करने के लिए विवश हो जाता है। जिनको वह करना नही चाहता है। इन कार्यों को करते समय जो न करने की इच्छा जागृत होती है इसे बाध्यता की प्रतिक्रिया कहते है।

मनोग्रस्ति-बाध्यता के कारण निम्नलिखित है जैसे दामित संवेगात्मक अनुभव, काम संबंधी प्रबल तनाव, दमित इच्छाओं के विस्फोट से रक्षा, आत्म अवमूल्यन और अपराध भावना, विचार व व्यवहार का स्थिरीकरण, पाप व अपराध के लिए अचेतन स्वदण्डन, तनाव और दुश्चिंता विपत्तियों से भय, अत्यधिक कठोर व दोषपूर्ण सामाजीकरण का प्रभाव आदि।

उत्तर अभिघात प्रतिबल विकृति में रोगी को अत्यधिक, घातक व विपत्ति जनक परिस्थतियों का सामना करना पड़ता है इसमें रोगी की किसी व्यक्ति की मृत्यु व बीमारियों जैसी घटनाओं का सामना करना पड़ता है।

7.14 स्वमूल्यांकन प्रश्न के उत्तर

1. दुश्चिंता विकृति के मुख्य लक्षण आशंका, भय, डर, चिंता आदि होते हैं।
2. डी0एस0एम0 का पूरा नाम डायनगोस्टिक एण्ड स्टैटिस्टिकल मैनूअल आफ मेन्टल डिसआर्डर है।
3. डी0एस0एम0 के अनुसार दुश्चिंता विकृति के छः प्रकार है।
4. डी0एस0एम0 का चर्तुर्थ संस्करण 1994 में प्रकाशित हुआ।
5. भीषिका विकृति में दौरे पड़ने की गति तीव्र होती है।
6. दुर्भीति विकृति के तीन श्रेणिया के नाम निम्नकिंत है। एगोराफोबिया, सामजिक दुर्भीति तथा विर्शिष्ट दुर्भीति।
7. दुर्भीति विकृति के दो कारण दमित अन्तद्धन्द्ध तथा अनुकूलन।
8. मनोग्रस्ति बाध्यता से पीड़ित रोगियों का प्रतिशत असामान्ष् रोगियों में 4 से 20 प्रतिशत है।
9. मनोग्रस्ति-बाध्यता के दो कारण, 1. तनाव एवं दुश्चिंता विपत्तियों से भय। 2. कठोर एवं दोषपूर्ण सामाजीकरण।
10. टोपेक्टामी चिकित्सा का तात्पर्य यह है कि इनमें मस्तिक के विशेष अंग को विच्छेदित करके बाहर निकाल दिया जाता है जिसका संबंध मनोग्रस्ति विचार से होता है।
11. दुश्चिंता विकृति के तीन करण निम्नलिखित है। 1. जैविक कारक 2. मनोवैज्ञानिक कारक सामाजिक-साँस्कृति कारक।
12. दुश्चिंता विकृति में वैयक्तिक चिकित्सा, व्यवहारात्मक चिकित्सा, बहुमाडल चिकित्सा का उपयोग किया जाता है ।

7.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

. Coleman, J.C. (1976) Abnormal Psychology & Modern Life, Taraporevala

. Davidson & Neale (1974) Abnormal Psychology, John Wiley

. Kapil, H.K. (2001) अपसामान्य मनोविज्ञान, भार्गव प्रकाशन, आगरा

. मखीजा और मरखीजा (2001) पसामान्य मनोविज्ञान, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन आगरा।

. सिंह ए.के. (2009) आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, बनारसी दास, दिल्ली.

7.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1. दुश्चिंता विकृति से क्या तात्पर्य है दुश्चिंता विकृति के कारणो की विवेचना कीजिए ?
2. दुश्चिंता विकृति के प्रकारो का वर्णन कीजिए व उपचारों की व्याख्या प्रस्तुत कीजिए ?
3. दुर्भीति विकृति से क्या तात्पर्य है। दुर्भीति विकृति के कारणो व उपचारो का वर्णन कीजिए ?
4. मनोग्रस्ति-बाध्यता से क्या अर्थ है इनके कारणो सहित उपचार की विवेचना कीजिए ?
5. उत्तर अभिधात तनाव विकृति के कौन-कौन से कारण है इसकी उपचार प्रविधि का वर्णन कीजिए|

इकाई 8. मनोविदलता: अर्थ, लक्षण एवं प्रकार; स्थिर-व्यामोही विकृतियाँ एवं व्यामोही विकृतियाँ, स्थिर-व्यामोह के लक्षण, हेतुकी एवं उपचार (Schizophrenia: Meaning and Symptoms and Types; Paranoid and Delusional Disorders:- Symptoms, Etiology and Treatment)

इकाई संरचना

8.1 प्रस्तावना।
8.2 उद्देश्य ।
8.3 मनोविदलता।
- 8.3 मनोविदलता का अर्थ।
- 8.3.1 मनोविदलता के लक्षण।
- 8.3.3 मनोविदलता के प्रकार।
- 8.3.4 मनोविदलता के कारण।
- 8.3.5 मनोविदलता की उपचार प्रक्रिया।
- 8.3.6 स्वमूल्यांकन हेतु **प्रश्न**।

8.4 व्यामोह
- 8.4 व्यामोह विकृति का अर्थ।
- 8.4.1 व्यामोह विकृति के लक्षण।
- 8.4.2 व्यामोह के प्रकार।
- 8.4.3 व्यामोह के कारण।
- 8.4.4 व्यामोह प्रतिक्रिया से प्रकार।
- 8.4.5 व्यामोह की उपचार प्रक्रिया।
- 8.4.6 स्वमूल्यांकन हेतु **प्रश्न**।

8.5 सारांश
8.6 शब्दावली
8.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.8 सन्दर्भ ग्रन्ध सूची
8.9 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

मनोविदलता तथा व्यामोह दो ऐसे आसमान्य मनोविज्ञान से संबंधित मनस्ताप है जो व्यक्ति के व्यवहारो को प्रभावित करते है। असामान्य मनोविज्ञान में इन दोनो ही विकारों की पूर्णत विवेचना की गई है।

मनोविदलता तथा व्यामोह जैसे रोग मनोस्तापों में सर्वोपरि रोग है, मनोविदलता एक बहुत ही अति गम्भीर जटिल, क्षतिजनक, विघटनकारी भयानक मानसिक रोग है। इस मानसिक रोग से व्यक्ति के व्यक्तित्व में विघटन उत्पन्न हो जाता है। यह व्यक्ति के व्यवहार के सभी महत्वपूर्ण पहलुओं जैसे ज्ञानात्मक, क्रियात्मक भावात्मक व्यवहारात्मक पक्षों को प्रभावित करता है। जिससे व्यक्ति के व्यवहारों में विघटन आ जाता है। इस रोग से व्यक्ति में मानसिंक संवेगात्मक विघटन तीव्र गति से होना प्रारम्भ हो जाते है।

मनोविदलता तथा व्यामोह दोनो ही मनस्तापों का संबंध चिन्तन प्रक्रिया से होता है। मनोविदलता में रोगी वास्तविक जीवन से हटकर काल्पनिक दुनिया में डूबने लगता है तथा व्यामोह से पीडित व्यक्ति में भ्रमासक्तियों की प्रतिक्रियाएँ देखने को मिलती है इसमें व्यक्ति का सामाजिक, आर्थिक जीवन व पास्स्परिक संबंध पूर्णत विकृति जन्य होने लगते है। ऐसे व्यक्ति मिथ्या धारणाओं पर अधिक विश्वास करते है और भ्रमासक्तियों से ग्रसित रहते है। इस रोग से व्यक्ति में अंहकारी और स्वार्थी हाने की भावना उत्पन्न हो जाती है।

8.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत हम मनोविदलता तथा व्यामोहों के बारे में जानकारी प्राप्त करेगें। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान पायेगें कि -

1. मनोविदलता का अर्थ क्या है
2. मनोविदलता के लक्षण
3. मनोविदलता के प्रकार
4. मनोविदलता के कारण
5. मनोविदलता का उपचार
6. व्यामोह विकृति के क्या कारण है
7. व्यामोह के प्रकार
8. व्यामोह विकृति के कारक
9. व्यामोह विकृति के उपचार|

8.3 मनोविदलता का अर्थ

मनोविदलता असाध्य मानसिक रोग है। जब व्यक्ति इस रो के चुगल में फँस जाता है तो उसके लिए सामान्य स्वास्थ प्राप्त करना अत्यन्त जटिल हो जाता है।

सन् 1860 में बेल्जियम के मनोचिकित्सक ने 13 वर्षीय बालक का उदाहरण प्रस्तुत किया |जिसमें यह बालक पहले अत्यधिक कुशाग्र बुद्धि वाला था परन्तु कुछ समय बाद उसकी रूचि पढने में नही रही। वह दूसरो से खिंचा-खिचा सा रहने लगा, अल्पभाषी हो गया, वह बिना संकोच के अपने पिता को मारने की बात करने लगा, बालक

की इस तरह की स्थिति को मोरेल ने मानसिंक हास कहा। क्रेपलिन ने इसे असामजिक मनोहास या डिमेन्सिया प्राईकोक्स (Dementia Praecox) का नाम दिया। 1911 में स्विस मनोचिकित्सक ब्लूलर ने इस रोग का नाम शिजोफेनिया रखा, जिसका अर्थ व्यक्ति के व्यक्तिव में दरार पड़ना है या फिर खण्डित मन अथवा अत्याधिक विघटित व विभक्त व्यक्तित्व होता है।

मनोविदलता की स्थिति में व्यक्ति सांसरिक वास्तविकताओ से दूर हो जाता है और अनेको मिथ्या विभ्रमों में लिप्त हो जाता है।

कोलमैन के शब्दों में **मनोविदलता एक ऐसा विवरणात्मक शब्द है जिससे मानस्तापी विकारों के एक ऐसे समूह का बोध होता है जिससे व्यापक रूप से विकृतरूपों, प्रत्यक्षण, चिन्तन तथा संवेग के विघटन तथा खण्डन के साथ साथ सामाजिक अन्तःक्रिया से पलायन देखने में आता है।**

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि इससे व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षो में विघटन उत्पन्न होता है, जिससे व्यक्ति का जीवन अस्त व्यस्त हो जाता है।

आयु की दृष्टि से यह रोग सभी उम्र के व्यक्तिओं मे पाया जाता है। इनमे से 75 प्रतिशत रोग प्रायः 15 वर्ष की आयु से लेकर 45 वर्ष की आयु तक के ही व्यक्ति के ही व्यक्ति रहते है। यह रोग स्त्रियों की अपेक्षा पुरूषो मे अधिक होता है यह नगर निवासियों तथा अविवाहित व्यक्तियों में अत्यधिक होता है|

8.3.1 मनोविदलता के लक्षण:-

मनोविदलता एक एकल मनोरोग न होकर विभिन्न विकारो का सामूहिक रूप है मनोविदलता को लक्षणो का मंडल भी कहा जाता है।

1. जीवन की वास्तविकता से पलायन:-

मनोविदलन की इस स्थिति मे व्यक्ति अपने वास्तविक जीवन से दूर हटने का प्रयास करने लगता है। वह अपने आस पास रहने वाले लोगो से दूर होने लगता है व उनमें रूचि कम लेता है। उसे किसी भी बाहरी गतिविधि का कोई ज्ञान नही रहता है और वह धीरे धीरे सांसरिक सुखों से मुक्ति प्राप्त कर कल्पना की दुनिया में विलीन होने लगता हे।

2. स्वलीनता:-

मनोविदलता का रोगी बाह्य जगत से दूर होकर अपनी छोटी से स्वप्नमयी दुनिया बना लेता है और वह उसी में बना रहना चाहता है और उसी के अनुसार कार्य करता है ऐसी स्थिति में यदि रोगी को किसी भी प्रकार की क्षति होती है तो उसे, उस बात का अनुभव नही होता है या फिर कम होता है।

3. व्यापक मानसिक ह्रास तथा विघटन:-

मनोविदलता के रोगी में जब व्यक्तित्व का विघटन प्रारम्भ होता है तब व्यक्ति की मानसिक शक्तियो तथा उसके द्वारा अर्जित कुशलताओं का हास व विघटन तेजी से होने लगाता है जिससे व्यक्ति के व्यवहार में जैसे चिन्तन, प्रत्यक्षण, अवधान व साहचर्य संबंधी अनेक विकार प्रदर्शित होने लगते है।

4. व्यवहार की विसंगतियाँ:-

मनोविदलता के रोगी के व्यवहार में अनेको विकृतियाँ आने लगती है। इसमें रोगी को अपने बारे में कुछ ज्ञान नही होता हैं वह सब कुछ भूलने लगता है कि वह कौन है तथा क्या करता है। वह स्वंय को काफी धनवान समझने लगता है, तो वह सेठ की तरह व्यवहार करने लगता है और कभी-कभी वह अपने आप को गरीब समझने लगता हैं और भिखारियों जैसा व्यवहार करने लगता है। उसकी सोचने समझने की शक्ति क्षीण होने गलती है।

5. भ्रमासक्तियाँ और विभ्रम:-

इसमें रोगियों मे अनेको प्रकार के विभ्रम पैदा हो जाते है जिससे उसे अपने जीवन में समयोजन बनाये रखने में कठिनाई उत्पन्न होने लगती है वह जीवन की वास्तविकता को समझने का प्रयास नही करता है और वह अपनी मिथ्यापूर्ण बातों को ही सच समझता है कभी कभी उसे ऐसा भी लगने लगता है कि मानो सभी उसके दुश्मन है और उसके विरूद्ध कोई षडयन्त्र बना रहे है। ऐसी ही भ्रमासक्त्यिों तथा विभ्रगों से व्यक्ति अन्य व्यक्तियों को अपना दुश्मन बना लेता है।

6. भाषा संबंधी विकार:-

मनोविदालिता के रोगी में भाषा से संबंधी विकार उत्पन्न हो जाते है। क्योकि मनोविदलता के रोगी होने के कारण उसकी सोचने समझनें की शक्ति कम हो जाती है जिससे वह समझ नही पाता है कि वह क्या बोल रहा है । वह मनगढन्त कहानी बनाने लगता है। शब्दों का उच्चारण भी सही ढंग से करने में सफल नही हो पाता है। भाषा का सही प्रकार से उपयोग न होने पर उसके व्यवहार अमाननीय व अपमान जनक हो जाता है।

7. संवेगात्मक विमुखता तथा अनुपयुक्तता:-

ऐसे रोगियों की संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं का स्वरूप उदासीनता, विमुखता तथा अनुपयुक्तता का ही होता है। ऐसे व्यकित्यों को अपने वास्तविक जीवन से प्रेम नही रहता है उसका व्यवहार विच्छेदित हो जाता है, उसका अपने आपसी संबंधो पारिवारिक व व्यक्तिगत संबंधो के प्रति लगाव कम होने लगता है और वह अपने संबंधो को खत्म करने का प्रयास करने लगता है। जिससे उसमें उदासी की भावना उत्पन्न हो जाती है |उसका व्यवहार विचलित हो जाता है |वह सुखद परिस्थिति में भी दुख अनुभव करने लगता है और अति विचित्र प्रतिक्रियाएँ करने लगता है।

8.3.2. मनोविदलता के प्रकार –

अमेरिकन साइकियाट्रिक ऐसोसिएशन के अनुसार मनोविदलता के निम्नलिखित प्रकार होते है।

1. सरल प्रारूप मनोविदलता:-

मनोविदलता के सरल प्रारूप् के अर्न्तगत इसके लक्षण धीरे धीरे तथ शनै शनै क्रमिक रूप से उत्पन्न तथा विकसिक होते है। इस प्रकार के मनोविदलता के रोगी की रूचियाँ, इच्छाएँ सकुचित होती है जो धीरे धीरे खत्म होने लगती है।ऐसे व्यक्ति अत्यधिक उदासीन रहने लगते है, जिससे उनके सामाजिक संबंध भी टूटने लगते है रोगी अपनी ही दुनिया में खोया रहने लगता है |उसे अपने जीवन से मोह कम होने लगता है |उसे अच्छे बुरे तक का भी ज्ञान नही

रहता है। यहा तक कि उसे अपनी सफलता तथा असफलता की कोई परवाह नही होती है वह किसी भी कार्य को पूरा करने में असमर्थ होने लगता है इस प्रकार के रोगी अपने बाल्यकाल में तो ठीक होते है और व्यवहार भी ठीक प्रकार से करते है |परन्तु धीरे धीरे उनके लक्षण बदलने लगते है। ऐसे व्यक्तियों को घर पर रखकर सुधारा जा सकता है| परन्तु कुछ रोगियों को कभी-कभी मानसिंक चिकित्सालायों तथा सुधार गृहो मे रखने की आवश्यकता होती है। इसी से संबंधित एक अध्ययन (ओ0 केन्ट 1948) में दशार्य गया जो कि 64 रोगियों पर किया गया इस रोग के धटित होने का औसत आयु विस्तार 17-24 वर्ष था इन रोगियों के व्यवहार संबंधी प्रतिक्रियाएँ घटित होने का निम्न प्रतिशत था।

व्यवहार का प्रकार	**घटित होने का प्रतिशत**
आक्रमक व्यवहार	65.0
व्यामोह और/या विभ्रम	42.9
लैगिक या मद्यपान संबंधी व्यवहार	39.07
अत्यन्त विघटित व्यवहार	34.09
अति स्वास्थ्य संबंधी चिन्ताएँ	30.2
संसार से अतिरिंजित विमुखता	22.3

इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि रोगी में आक्रामक व्यवहार की अभिव्यक्ति अधिक होती है।

एक नवयुवती हाईस्कूल पास करने के दो वर्ष उपरान्त पढ़ने के उदेश्य से कालेज गई वह कालेज में चिन्तित एवं उदास रहती थी तथा व्यवहार विचित्र था। वह अपना कोई कार्य ठीक प्रकार से नही कर पाती थी। उसके अनुसार जब वह 16 वर्ष की थी, तब उसका परिचय एक नवयुवक से हुआ जिसने उसे घर पहुचाया तथा विदाई लेते समय चुम्बन ले लिया। वह चाहती थी कि वह नवयुवक पुनः लौट आवे और उससे मिले। यह सरल प्रारूप मनोविदलता का स्पष्ट उदाहरण है।

2. युवा विदलन (हीवी फ्रैनिक) प्रारूपः-

हीवी फ्रैनिक प्रारूप का सर्वप्रथम वर्णन सन् 1871 में जर्मनी मनोरोग चिकित्सक एडवाल्ड हैकर ने किया। हीवीफ्रैनिया शब्द ग्रीक भाषा से लिया गया है जिसका अर्थ है युवा मन। इस प्रकार की मनोविदलता कम आयु वालो को होती है। ऐसे व्यक्ति अजीव तथा विचित्र प्रकार व्यवहार करते है। ऐसे व्यक्तियों का व्यवहार सामान्य व्यक्तियों से भिन्न होता है जो स्वंय के लिए भी घातक हो जाता है। इस प्रकार के रोगी के प्रमुख लक्षण सवेंगात्मक अस्थिरता, विभ्रम, भ्रान्ति व चिन्तन, वाकदोष तथा विघटित व्यक्तित्व होता है। जैसे-जैसे यह रोग बढता जाता है रोगी में एक सवेगात्मक उदासीनता आनी प्रारम्भ हो जाती है।

इस प्रकार की अवस्था में रोगी को अत्यधिक विभ्रम घेर लेते है जिससे उसमें भ्रान्ति होना उत्पन्न हो जाती है रोगी को कभी कभी ऐसा लगने लगता है जैसे उसे किसी जहरीले कीडे ने काट लिया है। जिससे उसके पेट के अन्दर

विषाक्त गैस भरी रहती है। यदि वह मुँह खोलेगा तो लोग मर जायेगे। इस प्रकार के रोगी का व्यवहार एक बच्चे के समान हो जाता हैं। ऐसी भ्रमासक्तियों के अनेक रूप होते है। धार्मिक भ्रमासिक्त के कारण ऐसी स्थिति में रोगी अपने को एक दैविय अवतार ही समझने लगता हैं वह कभी कभी स्वंय को धार्मिक सुधार के ठेकेदार ही समझनें लगता है।

3. कैटाटोनिक प्रारूप मनोविदलता (Catatonic Type):-

कैटाटोनिक मनोविदलता का सर्वप्रथम वर्णन जर्मनी चिकित्सक कार्ल कहलबॉम ने 1868, में किया था। इस प्रकार की मनोविदलता रोगी में अचानक ही तथा विचित्र ढंग से देखने को मिलती है। ऐसे रोगी वास्तविकता से बहुत दूर होते है। इस प्रकार की मनोविदलता की दो स्थितिया होती है -जडिमा अवस्था तथा उतेजना अवस्था। जडिमा अवस्था में रोगी अत्यन्त शान्त प्रकृति का हो जाता है जैसे उसकी चैतन्यता समाप्त हो गई हो। ऐसे रोगी एक ही स्थान पर कई घण्टो तथा कई दिनो तक बैठे रहते है जिससे उसके हाथ पैर नीले पड जाते है व सूजन आ जाती है| ऐसी स्थिति में रोगी के पेशीय तन्त्र में कठोरता तथा संवेदन हीनता आ जाती है। जिसके कारण यदि उसे उसको क्षति भी पहुचाये जाये तो वह अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त नही कर पाता है उसे अपनी शारीरिक प्रतिक्रियाओं का भी ज्ञान नही रहता है ऐसी स्थिति में रोगी को कभी कभी लोग पागल भी कह देते है|ऐसे रोगी किसी से ज्यादा बोलना भी नही पंसद करते है।

उत्तेजना अवस्था:-

उत्तेजना अवस्था जडिमा अवस्था के विपरित होती है। इस अवस्था में रोगी अत्यधिक सक्रिय हो जाता है और जोर जोर से चीखने चिल्लाने लगता हैं वह स्वंय को हानि भी पहुँचा सकता है आत्महत्या भी कर सकता है तथा दूसरो की हत्या का प्रयास भी कर सकता है। वह अपने साथ-साथ दूसरो के लिए भी हानिकारक हो सकता है |मोरसिन (1973) ने 110 रोगियों के अध्ययन में देखा कि जडिमा अवस्था की प्रधानता वाले रोगियों के अध्ययन की संख्या सर्वाधिक होता है। उदाहरण: एक 19 वर्षीय युवती जो दो वर्ष पूर्व ही विक्षिप्त हो गई थी कुछ समय बाद उसने भोजन करना बन्द कर दिया। वह अवाजे सुनती थी। जब उसे चिकित्सालय में भरती कर दिया गया तब भी खाना नही खाती थी और अनेको अजीवों गरीब हरकते करती रहती थी। कभी कभी यह कहती थी कि क्या मैने आराम किया था। डाक्टर साहब मुझे क्षमा कर दीजिए। उसे वास्तविक दुनिया से कोई संबंध नही होता वह तो सदैव अपनी दुनिया में विचरण किया करती थी।

4. व्यामोह (पैरानायड) प्रारूप मनोविदलता:-

इस प्रकार के रोगियों की संख्या अन्य मनोविदलता प्रारूप की तुलना में सर्वाधिक होती है। इस प्रकार के रोगियों मे लक्षण संवेगात्मक अस्थिरता उदासीनता, संशय, भ्रमासक्तियाँ आदि होती है। इस रोग से ग्रसित व्यक्ति अत्यधिक शक्की प्रवृति के होते है उनके अन्दर हमेशा यह भय सदैव बना रहता है कि कोई उन्हे मारने की कोशिश कर रहा है या उसके खिलाफ पंडयन्त्र रच रहा है। रोगी यह भी सोचने लगता है कि अन्य लोग उसकी निन्दा कर रहे है। मनोविदलता के रोगियों के व्यामोह अतार्किक एवं परिवर्तनशील होते है। वही पैरानोईया के रोगियों के व्यामोह तार्किक व स्थायी होते है। व्यामोह प्रारूप मनोविदलता का लक्षण व्यक्ति के जीवन की लगभग 35 वर्ष की अवस्था

में उभरता है। उत्पीड़न भ्रमासक्ति (Delusion of Persecution) से ग्रसित रोगी को लगाता है कि उसके सगे संबंधी उसके दुश्मन हो गये है और वे उसे क्षति पहुँचाने को ताक में हमेशा रहते है, जब कि महानता भ्रमासाक्ति (Delusion of Grandeur) से ग्रसित रोगी को ऐसा लगता है कि लोग उसकी महानता से जलते है क्योंकि वह एक महान अभिनेता या नेता है। इसी कारण से लोग उसे विष देकर मारना चाहते है तथा उसकी प्रत्येक गतिविधियों के बारे में विद्युतीय उपकरण के माध्यम से जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करते है। उपरोक्त भ्रमासक्तियों के अतिरिक्त रोगी को श्रृवण, दृष्टि, त्वचा आदि से संबंधित विभ्रम भी होते हैं |

5. बाल्यकालीन मनोविदलता प्रारूप (Childhood Type Schizophrenia:-

इस प्रकार की मनोविदलता का जन्म वाल्यावस्था से ही आरम्भ हो जाता है। इस प्रकार के रोगियों मे मुख्य लक्षण, लोगो से दूर भागना, विचार प्रक्रिया का विघटित होना, अंनियत्रित कम व आक्रामक प्रवाहो का होना, पारस्परिक संबंधो का अभाव, चिन्तन का विघटन, अंसगत व्यवहार, भाषा संबंधी विकार जैसे धीरे धीरे बोलना और शब्दो का विरूपण और मनोग्रस्ता आदि। इसमें बालको का विकास अनियमित ओर मन्द गति से होता है। वास्तविकता का ज्ञान विकसित नही हो पाता तथा खाने, सोने आदि की आदतो मे विध्न उत्पन्न हो जाता है। गोल्डफार्ड (Goldford) (1961) के अनुसार इस रोग का मुख्य कारण बालक के मस्तिष्क का आँगिक रूप से क्षतिग्रस्त होना होता है।

6. तीव्र अविभेदित प्रारूप मनोविदलन (Acute Undifferentiated type) :-

इस प्रारूप में मनोविदलता के लक्षण अचानक उत्पन्न हो जाते है जिसका कोई स्पष्ट कारण नही होता है, परन्तु कुछ समय बाद पुन उत्पन्न भी हो जाते हैं यह प्रारूप मनोविदलता की प्रारम्भिक अवस्था होती है। यदि इस रोग का समय से उपचार नही हो पाता, तब यह मनोविदलता के किसी एक मुख्य रूप में परिवर्तित हो जाता है।

7. दीर्घकालिक अविभेदित प्रारूप मनोविदलन:-

दीर्ध कालिक प्रारूप के लक्षणो में विविधता होती है और ये लम्बे समय तक बने रहते है। मनोविदलता के लक्षण होते हुए भी रोगी किसी न किसी सीमा तक अपना समायोजन करने में सफल और जीविका को चलाता रहता है। इसके अर्न्तगत सम्बन्धित रोगी के व्यक्तित्व में अनेक लक्षण जैसे- बौद्धिक ह्रास संवेगात्मक विकारो व व्यवहारगत् विचलनों के लक्षण दिखायी देते है।

8. भाव प्रारूप मनोविदलता:-

इस प्रारूप मनोविदलता संबंधी लक्षणों के साथ साथ रोगी मे उल्लास व आवसाद संबंधी लक्षण देखने में आते है इस प्रारूप से पीड़ित व्यक्ति कभी उल्लास व उन्मादी लक्षण को दर्शाता हैं तथा साथ ही साथ भ्रमासक्तियाँ तथा विभ्रमों के लक्षण भी देखने को मिलते है।

9. अवशिष्ट मनोविदलता:-

इसमें वे रोगी आते है जो चिकित्सालयों के उपचार के बाद काफी ठीक हो जाते है परन्तु उनमें मनोविदलता के लक्षणों के कुछ अवशेष विद्यमान होते है।

8.3.3. मनोविदलता के कारण:-

मनोविदलता के कारणो को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है जैविक कारक, मनोवैज्ञानिक कारक, एवं सामजिक कारक।

1. जैविक कारक:-

जैविक कारक के अर्न्तगत निम्न तत्व मुख्य रूप से आते है।

अ. आनुवंशिकता :-

कालमैन (1953) के अनुसार एक व्यक्ति जितना अधिक मनोविदलता के रोगी से रक्त के अधार पर संबंधित होगा उसमें मनोविदलता के रोग होने की सम्भावना उतनी ही अधिक होगी। समरूप ;प्कमदजपबंस जूपदद्ध यमज में यह सभ्भावना 86.2 प्रतिशत है जबकि सगे भाई बहनों में यह केवल 10.2 प्रतिशत है।

ब. तन्त्रिका क्रियावृत्ति (Neurophysiology):-

आनुवांशिकता और पर्यावरण संबंधी कारको से प्रभावित व्यक्तियों के जीवन में जब तीव्र प्रतिबल उत्पन्न होता है तो उनके मस्तिक की तंत्रिका क्रियात्मक प्रक्रियाएँ प्रभावित हो जाती है। तुलाने (1954) के अनुसार जब स्वायत तंत्रिका तन्त्र के कार्य विकृत हो जाते है, तब उसके उच्चतर मानसिक कार्यो पर भी दूषित प्रभाव पडते देखा जाता है। होगलैण्ड (1954) ने अपने अध्ययनों के आधार पर यह पाया कि एड्रीनल कार्टेक्स मनोविदलता के रोगियों में प्रतिबलक स्थितियों के सम्मुख अल्प मात्रा में ही कार्य करता है। जब कि सेक्लर (1952) के अनुसार (Adrenal cortex) की अत्यधिक क्रियाशीलता के कारण ही मनोविदलता के लक्षण उत्पन्न् होते देखे जाते है।

स. शरीर संरचना (Body Constitution):-

शरीर संरचना के सम्बनध में क्रेशमर (1925) के अनुसार दुर्बलकाय (Aesthetic), सुडौलकाय (Athletic), लोग मनोविदलता से अधिक पीड़ित होते है। जब कि शैल्डन (1954) के अनुसार लम्बाकृतिक (Ectomorphic) तथा मध्याकृतिक (Mesomorphic) लोग अन्य मनस्तापों की अपेक्षकृत मनोविदलन से अधिक पीड़ित होते है। डेविडसन (1957) के अनुसार दुबले व पतले व्यक्तियों में दुश्चिन्ता और संवेदनशीलता अधिक होती है जिसके परिणाम स्वरूप वे सामान्य सामाजिक अन्तःक्रिया से दूर रहते है जो मनोविदलन उत्पन्न होने का प्रमुख कारण है।

2. मनोवैज्ञानिक कारण (Psychological Causes):-

कैपलिन तथा ब्लूलर ने मनोविदलता के उत्पन्न होने में मनोवैज्ञानिक कारणो पर बल दिया है-

अ. विकृतिजनक पारिवारिक प्रतिरूप:-

मनोविदलता की उत्पत्ति में उसके परिवारिक पृष्ठभूमि का महत्वपूर्ण स्थान होता है। रोगी अपने परिवार से ही अनेक दोषपूर्ण अभिवृतियों, प्रतिक्रियाओं, दोष पूर्ण समाजिक कारण को सीखता है। माता पिता के अलावा परिवार के अन्य सदस्य भी व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करते हे। फ्रोमरिकमान (Fromm-Reichmann 1948)ने मनोविदलता के रोगी की माँ के लिए विशेष पद जैसे मनोविदलतायी माँ (Schizophrenic mother) का प्रयोग

किया ऐसी माताएँ अपने बच्चो की आवश्यकताओं के प्रति उदासीन, दंबग एवं अप्रभावशील आदि होती है। फ्रोमरिकमान के अनुसार ऐसी माताएँ ऊपर से अपने बच्चों के प्रति समर्पित दिखती है परन्तु सचमुच में वे ऐसा नही होती है और बच्चो का उपयोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए करती है। वे अपने बच्चों के प्रति अति सुरक्षात्मक एवं तिरस्कारात्मक मनोवृत्ति दिखाती है जिसके परिणाम स्वरूप बच्चों में मनोविदलता उत्पन्न होने की एक मजबूत पृष्ठभूमि तैयार होती है। वारिंग एवं रिक्स (1965) के अध्ययन के परिणाम में यह पाया गया कि मनोविदलता के रोगियों की मात्राएँ अत्याधिक भज्जालू, अपर्याप्त, प्रत्याहारी (Withdrawn) , चिंतित शक्की एवं असंगत की जब कि सामान्य व्यक्यिों की माताओं में बहुत सारे वैसे गुण पाये गये जिसे फ्रोम रिभमान ने मनोविदलतायी माँ का गुण बतलाया था।

ब आरम्भिक मानसिक आघात और वचन (Early psychic Trauma and Deprivation)-

मनोविदलन के रोगी अपनी वाल्यावस्था में अनेक तरह के कष्टकारी अनुभवों, दुखद, मानसिक आघात सह चुके होते है जिसमें उनका मानसिक गठन प्रायः अति निर्बल, संवेदनशील, पराजित तथा अपरिपक्व रह जाता है। ऐसी स्थिति में रोगी कई विकारो से ग्रस्त हो जाता है।

स. अत्यधिक प्रतिबल:-

मनोविदलन के उत्पन्न होने का एक कारण तीव्र प्रतिवल भी हो सकता है। तीव्र प्रतिबल की स्थिति में रोगी अपना मानसिक सन्तुलन खोने लगता है। किशोरवस्था और आरम्भिक प्रौढ़ावस्था के प्रतिबल का सम्बन्ध अधीनता, स्वाधीनता, आक्रमकता और कामुकता आदि से होता है। माता पिता द्वारा परस्पर विरोधी मांगे और अवास्ताविकपूर्ण आकाँक्षा स्तर प्रतिबल को और अधिक बढ़ा देता है। वह समाजिक सहभागिता से दूर रहने का प्रयास करता हैं, परन्तु यह उसका प्रत्यागमन भी उसके प्रतिबल के कम नही कर पाता है और वह धीरे धीरे वास्तविक संसार से दूर होने लगता है तथा मनोविदलन का शिकार हो जाता है।

3. सामजिक कारण:-

कैरेन हार्नी ने मनोविदलता का कारण सामजिक असमायोजन माना है । सामाजिक कारकोमेंगरीबी, वेकारी, असुरक्षा, सामाजिक विद्यटन, गन्दी बस्तियाँ तथा व्यक्तिगत समस्याएँ प्रमुख है। हालिगषेड व रेडलिक (1954) ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया कि मनोविदलता का रोग निम्न सामजिक, तथा आर्थिक स्तर के व्यक्तियों में अधिक घटित होता है। बड़े बड़े नगरो की झुग्गी - झोपड़ियों में मनोविदलन के रोगी अधिक पाये जाते है और उच्च सामजिक आर्थिक स्तर की वस्तियों में कम होता है। न्यूयार्क के श्वेत नागरिकों की आपेक्षा नीग्रो नागरिकों में मनोविदलन अधिक पाया जाता है।

8.3.4 मनोविदलन का उपचार:-

मनोविदलता के उपचार के लिए प्रशान्तक औषधियों और ऊर्जावर्द्धक औषधियों का उपयोग किया जाता है। इन औषधियों द्वारा रोगियों की उत्तेजना, चिड़ापन चिन्तन विकार, दुश्चिन्ता घबराहट, तनाव आदि को नियत्रिंत किया जाता है। यह औषधिया रोगी का मूड ठीक करने तथा वातावरण में रूचि उत्पन्न करने मे सहायक होती है। प्रशान्तक औषधियों की सहायता से रोगी को तनाव मुक्त किया जा सकता है |इन औषधियों का उपयोग करने से व्यकित निद्रा की आवस्था मे पहुच जाता है। प्रशान्तक औषधियों के साथ साथ कुछ रोगियों को विद्युत आघात की चिकित्सा भी दी जाती है।

मनोविदलता के रोगियों के उपचार के लिए मुख्यतः आघात चिकित्सा, इन्सुलिन पद्धति, शल्य चिकित्सा, व्यवासयिक चिकित्सा सामजिक चिकित्सा, मनो सामजिक चिकित्सा पद्धति का उपयोग किया जाता है।

दीर्घकालिक रोगियों की अपेक्षा तीव्र रोगियों में औषधियों का प्रभाव अधिक पड़ता है। इन औषधियों द्वारा रोगियों की भ्रमासक्तियों और विभ्रमों में कमी आ जाती है। यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि औषधियों के सेवन से केवल ऊपरी लक्षणों का उपचार होता है। रोग के वास्तिविक उपचार के लिए मनोचिकित्सा बहुत आवश्यक होता है। मनोचिकित्सा रोगी को इस योग्य बना देती है कि वह अपनी विरूपित अभिवृत्तियों को सही कर सकें और रोगी सामान्य व्यक्तियों की भाति अपना जीवन व्यतीत कर सकें ।

8.3.5 स्वःमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. मनोविदलता का अर्थ क्या है ?
2. मनोविदलता को मानसिक ह्रास के रूप में किसने प्रदर्शित किया?
3. मनोविदलता शब्द किस भाषा से लिया गया ?
4. क्रेपलिन ने मनोविदलता को क्या नाम दिया ?
5. ब्लूलर किस देश से संबंधित मनोचिकित्सक था ?
6. मनोविदलता कितने प्रकार का होता है ?

8.4 व्यामोह विकृति का अर्थ:-

व्यामोह विकार से पीडित व्यक्तियों मे विभिन्न प्रकार की व्यामोह प्रतिक्रियांएँ देखने को मिलती है इसमें व्यक्ति अपनी चिन्ता के दमित तीव्र तनाव को भ्रमासक्तियों द्वारा दूर करने का प्रयास करता है। व्यामोह शब्द दो ग्रीक शब्दो से (Para + Nous), मिलकर बना है जिसका अर्थ गलत और मन है यानि कि गलत मन है। प्राचीन काल से ही व्यामोह शब्द का प्रयोग मानसिंक रोगो के लिए किया जाता है, हिप्पो केटीज इस शब्द का प्रयोग सभी प्रकार के पागलपन और मानसिक रोगी के लिए करते थे। परन्तु आज के समय मेंव्यामोह केवल मानसिक रोगी तक ही सीमित हो गया है जिसमें व्यक्ति की मानसिक दशा तो ठीक होती परन्तु उसमें अनेक प्रकार भ्रम उत्पन्न हो जाते है। व्यामोह का प्रमुख लक्षण उसका भ्रमासक्ति तन्त्र होता है जिसमें व्यक्ति को अपने जीवन की वास्तविकता को

स्वीकारने के लिए अनेको विभ्रमो से पीडित होता है। व्यामोह की स्थिति में भ्रमासक्तियों का स्वरूप अधिक तार्किक तथा स्थायी होता है।

कैमरान (1963) के अनुसार:- इस प्रकार का रोगी तनाव और चिन्ता से बचाव हेतु अस्वीकारीकरण और प्रेक्षपण करता है और फलस्वरूप इन रोगियों में व्यवस्थित व्यामोह के लक्षण उत्पन्न हो जाते है। व्यामोह से पीडित सपूर्ण व्यक्तियों मे केवल 1 प्रतिशत लोग ही मानसिक चिकित्सालयों में भर्ती होते है अन्य रोगी अपना उचार घर मे रहकर ही करवाते है व्यामोह से पीड़ित व्यक्तियों की आयु 25 से 65 वर्ष होती है। व्यामोह रोग स्त्री एवं पुरूषो में लगभग बराबर मात्रा में घटित होता है।

8.4.1 व्यामोह विकृति के लक्षण:-

1. व्यामोह विकृति के लक्षण एक व्यक्ति मे सहसा ही उभरते नही देखे जाते बल्कि इन लक्षणों के उत्पन्न होने का प्रक्रम अति व्यवस्थित एवं दीर्धकालिक होता है। यह रोग रोगी के शैशवकालीन जीवन से संबंधित होता है।

2. इस रोग में रोगी को अपनी अविकसित क्षमताओं के प्रति मिथ्या धारणाओं पर अति अटूट् विश्वास होता है| वह अपनी मिथ्या धाराणाओ को ही सही समझता है जिससे उसमे अंहकारी एवं स्वार्थी होने की भावना उत्पन्न हो जाती है। ऐसे व्यक्तियों का दूसरे व्यक्तियो पर विश्वास बहुत कम होता है और वह दूसरो को संदेह की दृष्टि से देखने लगता है।

3. व्यामोह के रोगी यह भी समझने लगते है कि इस संसार में रहने वाले सभी व्यक्ति स्वार्थी, कठोर निष्ठुर व निर्दयी है और उसे पीडा व कष्ट पहुचँना चाहते है।

4. व्यामोह के रोगी में यह शंका उत्पन्न हो जाती है कि दुसरे व्यक्ति उसकी महान उपलब्धियों, योग्यताओं और महानता की अलोचना करते है व उसके प्रति षडयन्त्र बना रहे है उसकी उपलब्ध्यो की प्रशंसा न करके उससे ईर्ष्या करते है।

5. इस रोग से पीडित व्यक्ति के सामजिक एवं आर्थिक स्तर पर मूलरूप से पास्परिक सबंध भी अत्यधिक संवेदनशील, असंतोषजनक आक्रोश जनक व विकृति जन्य हो जाते है।

6. व्यामोह के रोगियों में भ्रमासक्तियों का जाल इतना सुव्यवस्थित, संगठित, तर्कपूर्ण होता है कि रोगी को विश्वास होने लगता है कि वह जो कुछ कह रहा है वही सब सत्य है और इसके अतिरिक्त सब कुछ गलत है।

7. व्यामोह के रोगी की भ्रमासक्तियों का संबंध जायदाद, धन, दौलत, महत्वपूर्ण पद, धार्मिक विश्वासों आदि से संबंधित होता है। उदाहरण: एक बार प्रोफेसर ब्राउन ने सडक पर खडे एक सैलानी को अपनी कार में स्थान दे दिया। रास्ते मे बातचीत करते हुए सैलानी ने प्रोफेसर ब्राउन को बताया कि वह एक विश्वविघालय में अनुसधानकर्ता है और बेरोजगारी की समस्या पर अनुसंधान कर रहा है प्रो0 बाउन उस सैलानी की बातो से इतना प्रभावित हुए कि उन्होने उसे अपनी कक्षा के सामने व्याख्यान करने का निमन्त्रण दिया। जब अनुसंधानकर्ता समय पर नही पहुँचा तो उन्होने उसके विश्वविघालय को फोन किया विश्वविघालय के अधिकारियों ने प्रो0 को बताया कि इस नाम का कोई

व्यक्ति यहा कार्य नही करता है इस कथन से स्पष्ट होता है कि वह सैलानी व्यामोह का रोगी और महानता भ्रमासक्ति से पीड़ित था।

व्यामोह अस्थायी मनस्पाती प्राय तात्कालिक रूप से उत्पन्न हो जाती है। रोगी कुष्ठा, दून्द्ध और दवाब से उत्पन्न प्रतिबल का सामना करने के लिए प्रतिरक्षा क्रिया तन्त्रो के रूप में असंगत भ्रमासकित्यां विकसित कर लेता है।

व्यामोह आवस्थी अनुस्तापी प्रतिक्रिया है जो प्रतिबल उपस्थित होने पर उत्पन्न हो जाती है और प्रतिबल के दूर हो जोने पर समाप्त हो जाते है।

8.4.2 व्यामोह के सामान्य रूप:-

1. उत्पीडन संबंधी व्यामोह:-

इस व्यामोह के अन्तर्गत रोगी में यह भ्रमासक्ति बनी रहती है कि उसके पडोसी, रिश्तेदार, व्यवसाय आदि से संबंधित व्यक्ति उसकी कुशलता और सफलता को देखकर तरह तरह की बाते बनाते रहते है और किसी गलत कार्य में फसा देना चाहते है। एक अटूट भ्रमसाक्ति बन जाती है जिससे कभी कभी रोगी शत्रुता के विचार से उन पर आक्रमण कर देता है व उनकी हत्या करने का प्रयास करने की कोशिश करता है |इस प्रकार के रोगियों में उत्पीड़न व्यामोह की प्रधानता होती हैं|

2. रोगो से संम्बधित व्यामोह:-

इस प्रकार के व्याहमोह के रोगियों में यह विश्वास दृढ रूप से पाया जाता है कि उसे कोई असाध्य रोग हो गया है। वह यह सोचने लगता है कि उनका स्वास्थ्य गिरता जा रहा है वे रोग के उपचार के लिए अनेको डाक्टरों के पास जाते है परन्तु उन्हे यह पूर्ण रूप से विश्वास जो जाता है कि कोई भी चिकित्सक उसके रोग का उपचार नही कर पायेगा।

3. महानता संबंधी व्यामोह:-

महानता से संबंधी व्यामोह सभी प्रकार के रोगियों मे पाये जाते है। परन्तु कभी कभी रोग के आरम्भ से ही रोगी में विभिन्न प्रकार के महानता संबंधी विचारों का जन्म हो जाता है। इस प्रकार के रोगी अपने को महान् व्यक्ति समझने लगते है। इस व्यामोह से पीडित रोगी अपने आप को एक अति लोक प्रिय नेता, अभिनेता, गणितज्ञ, वैज्ञानिक डाक्टर, संगीतज्ञ, कलाकार, चित्राकर, इन्जीनियर, व करोड़ पति व्यक्ति आदि बताते हुए सुना जाता है।

4. कामुक व्यामोह (Erotic paranoia):-

ऐसे पीडित व्यक्ति में यह विश्वास दृढ हो जाता है कि विरोधी लिंग के व्यक्ति उसके ऊपर मोहित होते रहते है। इस प्रकार के रोगियों में लैगिकता संबंधी व्यामोह की प्रधानता अधिक होती है। यह रोगी समझने लगते है कि उनसे कोई युवक या युवती प्रेम करने लगा है। उदा. फिशर ने इस प्रकार के रोगी का वर्णन प्रस्तुत किया है। एक व्यक्ति को व्यामोह हो गया कि एक उच्च कुल की युवती उससे प्रेम करने लगी है। उसने अपनी इस प्रेमिका को प्रेम पत्र लिखा परन्तु उसका कोई उत्तर प्राप्त नही हुआ तब उसने सोचा कि वह युवती उससे विवाह करना चाहती है। अतः उसने

अपनी तरफ से युवती के पिता को एक पत्र लिखा और कहा कि उनकी युवती उससे विवाह करना चाहती है। युवती के पिता ने इस युवक को मानसिक अरोग्यशाला मे चिकित्सा हेतु भेज दिया।

5. विवादी व्यामोह:-

इस प्रकार के व्यामोह मे रोगी विवाद संबंधी परिस्थितियों में घिरा रहता है। उसमे यह भ्रसासक्ति विश्वास बना लेती है कि उसे अपने अधिकारो के लिए अन्य लोगो से लडते रहना आवश्यक है। ऐसे रोगी निरन्तर मुकदमों में लीन रहते है। इनको मुकदमें बाजी या कानूनी झगडे करने का शौक होता है। वह अपने दोषो को अन्य लोगो पर आरोपित करते है।

6. ईर्ष्यात्मक व्यामोह:-

इस प्रकार के व्यामोह मे रोगी की यह धारणा बन जाती है कि वह एक महान व्यक्ति है। इसके कारण लोग उससे जलते है और प्रति ईर्ष्या की भावना रखते है। इस प्रकार के व्यामाहे मेंपति पत्नी आपस में एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या की भावना रखते है।

7. सुधारात्मक व्यामोह:-

इस प्रकार के व्यामोह रोगी मे सुधार संबंधी व्यामोह पाये जाते है इन योगियों की दृष्टि से दुनिया संकट से घिरी हुई है तथा आर्थिक समाजिक व राजनैतिक रूप से शीध्र सुधा होने की आवश्यकता है। रोगी यह मानता है कि वही इस संसार का सुधार कर सकता है।

8. धार्मिक व्यामोह:-

धार्मिक व्यामोह के रोगी अपने को परमात्मा का अवतार या भगवान का दूत या धार्मिक सुधारक समझते है। वे रोगी यह सोचते है कि मेरा जन्म संसार की रक्षा करने के लिए हुआ है। यह रोगी दूसरे लोगो का ध्यान आकर्षित करने के लिए धार्मिक उत्थान से संबंधित उपदेश भी देते रहते हैं। अनपढ अशिक्षित तथा पिछडें हुए समाज के व्यक्ति ऐसे धार्मिक व्यामोह से पीडित व्याक्ति की बाते ध्यान से सुनते है।

8.4.3 व्यामोह के कारण:-

1. जैविक कारण:-

कुछ विद्वाना का विचार है कि व्यामोह का कारण आंनुवशिकता और शरी संरचना संबंधी कारक है परन्तु यह विचार त्रुटिपूर्ण है एक अध्ययन में यह देखा गया है कि व्यामोह और वशानुक्रम कोई सबंधं नही है।

2. मनोवैज्ञानिक कारण:-

व्यामोह के उत्पन्न होने में मनोवैज्ञानिक कारण अत्यधिक महत्वपूर्ण है-

1. दोषपूर्ण व्यक्तित्व विकास:-

व्यामोह के रोगियों को बाल्यकाल में जब अत्यधिक संघर्षपूर्ण संवेगात्मक तनाव, चिन्ताये, दुविधापूर्ण स्थिति, विरोध प्रतिशोध जैसे कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है तो यह बाल्यावस्था की स्थिति मे ही अधिक शक्की, जिद्दी, एकान्तप्रिय या क्रोधशील हो जाते है तथा बड़े होने पर वह जीवन की कदु स्थितियो के कारण चिडचिडे और कदु स्वभाव के हो जाते है |उसमें स्नेह पूर्ण संबंधो तथा दूसरो व्यक्तियों के प्रति विश्वास का अभाव होता है। ऐसे रोगियों की पारिवारिक पृष्ठभूमि अत्यधिक निरकुंशादी होती है तथा इनके घर का वातावरण भी अलोचनात्मक पूर्ण होता है। यह रोगी अपनी कमियों को दूसरो के ऊपर थोपता रहता हैं।

2. सफलता और हीनता की भावना:-

व्यामोह से पीडित रोगी का जीवन असफलताओं से पूर्ण रहता है यह सफलताएँ सामजिक, आर्थिक, व्यावसाहिक आदि किसी भी क्षेत्र से संबंधित हो सकती है इन असफलताओं को कारण रोगी का अवास्तविक जीवन लक्ष्य तथा दूसरो के साथ मिलजुलकर न रह सकने की योग्यता आदि है।

नवफ्रायडवादियों के अनुसार व्यामोह का कारण असफलता, हीनता अपराध भावना है। ये रोगी अपनी हीनता भावना को छिपाने के लिए वह झूठी श्रेष्ठता भावना का जाल सा बना लेता है यह व्यक्ति दूसरे के मुख से अपनी प्रसन्नता सुनता चाहते है पर अलोचना सहन नही कर पाते है।

3. लैंगिक असमायोजन या कुसमायोजन:-

व्यामोह के रोगियों के लक्षणों की उत्पत्ति का कारण उनका लैगिंक असमायोजन है। सामान्य लैगिंक समायोजन का अभाव व्यामोह से पीडित रोगियो में होता है यह रोगी उच्च नैतिकता के वातावरण में पले हुए होते है यह रोगी लैगिंक सन्तुष्टि को पापमय या घृणा की दृष्टि से देखते है ऐसे व्यक्ति यदि विवाह करते है तो बहुत ही जल्दी तलाक ले लेते है।

फॉयड ने व्यामोह का मुख्य आधार दमित समजाति लैंगिकता को बताया है।

4. जीवन की वास्तविकता का अकुषल परीक्षण:-

बाल्यावस्था में जब व्यक्ति का जीवन की कठिनाइयों व कठोरतओं के प्रति परीक्षण अति निर्बल व निष्क्रिय रह जाता है, तब उसमें इस संबंध में आवश्यक व्यवहार कुशलताएँ विकसित नही हो पाती है ऐसी अकुशलता व अयोग्यता से उसमे आगे चलकर व्यामोह के लक्षण उत्पन्न हो जाते है।

5. सुरक्षा का विस्तार:-

व्यामोह के रोगी में लक्षणो की उत्पत्ति तब होती है जब वह अपनी सुरक्षा का विस्तार करता है। व्यामोह से पीडित व्यक्तियों को हमेशा यह शंका रहती है कि कोई व्यक्ति उसका अहित न कर दें वह इसी भ्रम में दूसरो से दूर रहने लगता है जिससे उसे किसी प्रकार सहायता की आवश्यकता न पड़े।

सामाजिक कारण:-

व्यामोह से पीडित रोगी अधिकतर उच्च सामजिक आर्थिक स्तर के होते है इनका शैक्षिक स्तर भी उच्च होता है इनके जीवन लक्ष्य भी उच्च स्तर के होते है। जिनको कभी-कभी ये रोगी प्राप्त नही कर पाते है और इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए जूझते रहते है और व्यामोह जैसे मानसिक विकार से ग्रस्त हो जाते ह। जब व्यक्ति सामाजिक व आर्थिक कठिनाइयों का सामना करने में असफल हो जाता है ता उसमें नैराश्य का भाव उत्पन्न हो जाता है जो आग्र चलकर व्यामोह के लक्षण का रूप ले लेता हैं।

8.4.4 व्यामोह का उपचार:-

व्यामोह आवस्थाएँ कुछ दिनो तथा सप्ताह में स्वतः समाप्त हो जाती है रोगी को दूर करने के लिए अनेक औषधियों का उपयोग किया जाता है| रोग की प्रारम्भिक अवस्था में मनोचिकित्सा व विधुत आघात चिकित्सा लाभदायक होती है परन्तु रोग के बढ जाने पर मनोचिकित्सा की कोई भी पद्वति लाभकारी सिद्व नही होती है। ऐसे रोगियों की चिकित्सा के लिए इन्सुलीन व्यावसायिक प्रणाली सामूहिक चिकित्सा, औषधि चिकित्सा सामजिक चिकित्सा आदि का प्रयोग किया जाता है।

व्यामोह के रोगी के रोगी ठीन होने की सम्भावना अपेक्षाकृत कम होती है व्यामोह के रोगियों को चिकित्सालय में भर्ती करना एक गम्भीर समस्या है उपचार काफी लम्बा चलता है।व्यामोह के रोगी को अस्पताल में रखना मुश्किल हो जाता है|

8.4.5 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न:-

1. व्यामोह से क्या तात्पर्य है ?
2. व्यामोह का प्रमुख लक्षण क्या है ?
3. व्यामोह मे पीडित व्यक्तियों का कितने प्रतिशत भाग चिकित्सालय में जाते है ?
4. व्यामोह की प्रारम्भिक अवस्था में कौन सी चिकित्सा लाभदायक है?

8.5 सारांश

. मनोविदलता एक प्रकार का मानसिक रोग है जिसके प्रभाव से व्यक्ति के व्यक्तित्व का विघटन होना प्रारम्भ हो जाता है इसमे व्यक्ति को अपने बारे सोचने की शक्ति समाप्त होने लगती है वह यह समझ नही पाता है कि वह वातावरण में उचित व्यवहार नही कर रहा है।

. स्विस मनोचिकित्सक ब्लूलर ने इस रोग को शिजोफ्रेनिया का नाम दिया। यह रोग एकल मनोरोग न होकर विभिन्न विकारों का सामूहिक रूप है।

. मनोविदलता नौ (9) प्रकार की होती है:- 1. सरल प्रारूप मनोविदलता 2. युवा विदलन हीवीफ्रेनिक मनोविदलता 3. कैटाटोनिक प्रारूप मनोविदलता, 4. व्यामोह पैरानायड प्रारूप मनोविदलता, 5. बाल्यकालीन

मनोविदलता, 6. तीव्र अविभेदित प्रारूप् मनोविदलता, 7. दीर्धकालीन अविभेदित प्रारूप मनोविदलन, 8. भाव प्रारूप मनोविदलन, 9 अवशिष्ट मनोविदलता।

. मनोविदलता के कारण तीन प्रकार के होते है:- 1. जैविक कारक, 2. मनौवैज्ञानिक कारक, 3. समाजिक कारक।

. व्यामोह विकार से ग्रस्त व्यक्ति अनेको प्रकार शंकाओं से ग्रस्त होता है। व्यक्ति तनाव की स्थिति में अनेक प्रकार भ्रमासक्तियों से ग्रसित हो जाता है जिनका दोषी दूसरे व्यक्तियो को ठहराता है के सामान्यतः आठ रूप होते है:- 1. उत्पीडन संबंधी व्यामोह, 2. रोगी से संबंधित व्यामोह, 3. महानता से संबंधी व्यामोह, 4. कामुक व्यामोह, 5. विवादी व्यामोह, 6. ईष्योत्मक व्यामोह, 7. सुधारात्मक व्यामोह, 8. धार्मिक व्यामोह।

8.6 शब्दावली

. मनोविदलता:-

यह शब्द एक मानसिक रोग है जिससे तात्पर्य खण्डित मन तथा विभक्त व्यक्ति होता है।

. भ्रमासक्तियाँ:-

किसी विषय व तथ्य के बारे गलत विचार व धाराएँ भ्रमासाक्तियाँ कहलाती है।

. व्यामोह:-
व्यामोह से पीडित रोगियो मे तनाव, दुश्चिन्ता के कारण भ्रमासक्तियों उत्पन्न हो जाती है इसे व्यामोह विकार कहते है।

8.7 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर –

. मनोविदलता का अर्थ व्यक्ति के व्यक्ति में दरार पडना है या फिर खण्डितमन अथवा अत्यधिक विद्यटित व विभक्त व्यक्तित्व होता है।

. मनोविदलता का मानसिंक हास के रूप में मोरेल ने प्रस्तुत किया।

. मनोविदलता 9 प्रकार के होते है।

. व्यामोह शब्द दो ग्रीक भाषा के शब्दो ;च्तंजदवनेद्धसे मिलकर बना है जिसका अर्थ गलत और मन है यानि गलत मन है।

. व्यामोह का प्रमुख लक्षण भ्रमासक्तियाँ विभ्रम है।

. व्यामोह से पीडित व्याक्त्यिों का 1प्रतिशत भाग ही मानसिक चिकित्सालय जाते है।

. व्यामोह 8 प्रकार के होते है।

. व्यामोह को प्रारम्भिक अवस्था में मनोचिकित्सा व आघात चिकित्सा अत्यधिक लाभदायक सिद्व होती है|

8.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

. Coleman, J.C. (1976) Abnormal Psychology & Modern Life, Taraporevala

. Davidson & Neale (1974) Abnormal Psychology, John Wiley

. Kapil, H.K. (2001)अपसामान्य मनोविज्ञान, भार्गव प्रकाशन, आगरा

. मखीजा और मरखीजा (2001) पसामान्य मनोविज्ञान, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन आगरा।

. सिंह ए.के. (2009) आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, बनारसी, दास दिल्ली|

8.9 निबन्धात्मक प्रश्न

. मनोविदलता से क्या तात्पर्य है मनोविदलता के लक्षणो का वर्णन **कीजिये** |

. मनोविदलता कितने प्रकार की होती है मनोविदलता के उपचार की विधियों की विवेचना **कीजिये** |

. व्यामोह को परिभाषित कीजिए व्यामोह के प्रकारो की उदाहरण सहित व्याख्या **कीजिये** |

. व्यामोह के लक्षणों की विवेचित कीजिए तथा कारणो की विवेचना **कीजिये**|

इकाई 9. व्यक्तित्व विकृतियाँ : अर्थ, स्वरूप, प्रकार, कारक एवं उपचार (Personality Disorders:- Meaning, Nature, Types, Factors and Treatment)

इकाई संरचना

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 व्यक्तित्व विकार का अर्थ एवं स्वरूप
9.4 व्यक्तित्व विकार के प्रकार
9.5 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
9.7 सारांश
9.8 शब्दावली
9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.10 सन्दर्भ ग्रन्ध सूची
9.11 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

व्यक्तित्व एक ऐसा तंत्र है जिसके मानसिंक या मनोवैज्ञानिक तथा शारीरिक दोनो ही पक्ष होते है यह तंत्र ऐसे तत्वों का एक गठन होता है जो आपस में अन्तक्रिया करते है व्यक्तित्व ना तो पूर्णत मानसिंक या मनोवैज्ञानिक होता है और न पूर्णत शारीरिक ही। व्यक्तित्व इन दोनो तरह के पक्षों का मिश्रण है।

जब किसी भी व्यक्ति में शारीरिक व मानसिक रूप में विकार उत्पन्न होने लगते है तब ऐसे विकारों को व्यक्तित्व विकार के रूप में जाना जाता है।

व्यक्ति के व्यक्तित्व में विकार उत्पन्न् होने का कारण केवल शरारीरिक व मानसिक ही नही होता बल्कि व्यक्ति के व्यवहार पर निर्भर करता है कि व्यक्ति कैसा व्यवहार करता है व्यक्ति के व्यवहार में यदि असमायोजन अत्यधिक होता है तब व्यक्ति के व्यक्तित्व में विकार उत्पन्न होने लगते है। व्यक्तित्व विकृति वैसा विकृति है जो पर्यावरण को कुसमायोजित ढ़ग से प्रत्यक्ष करने तथा उसके प्रति अनुक्रिया करने की प्रवृत्ति की ओर इशारा करता है। इसके अर्न्तगत सम्बन्धित व्यक्ति जीवन में अपनी अत्यधिक सुःखवादी, आवेगी व समाज विरोधी इच्छाओं की पूर्ति निर्द्धन्द तथा निः कोच रूप से सम्पन्न करते देखा जा सकता है।

9.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अर्न्तगत हम व्यक्तित्व विकार के स्वरूप व इनके प्रकारों, कारणो तथा उपचार का अध्ययन करेगें-

a)व्यक्तित्व विकार का अर्थ।

b)व्यक्तित्व विकार के प्रकार।

c)समाज विरोधी व्यवहार, लक्षण, कारण, उपचार।

d)बाल अपराध, कारण एवं उपचार

e)प्रौढ़ अपरोध व नव अपराधी।

f)कामुक विचलन, कामुक विचलन के कारण, कामुक विचलन के प्रकार एवं उपचार।

g)मद्यव्यसनिता।

h)मद्यव्सनिता के प्रकार।

9.3. व्यक्तित्व विकार का अर्थ एवं स्वरूप

मनस्ताप तथा मनोस्नायुविकृति व मनोविक्षिप्तता आदि मानसिक रोगो की तरह विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्व विकारो की प्रतिक्रियाएँ भी दोषपूर्ण व्यक्तित्व विकार के कारण उत्पन्न होती है मानसिक रोगो मे अनेक प्रकार के मानसिक एवं संवेगात्मक लक्षण पाये जाते है परन्तु व्यक्तित्व विकारों में इन लक्षणो के स्थान पर कुसमायोजित बाहा व्यवहार होता है। इसलिए व्यक्तित्व विकारो से ग्रस्त व्यक्तियों में न तो क्लेश अथवा विपत्ति की भावना रहती है और न ही वे स्वयं को मानसिक रोगी मानते है।

जब किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व मे विकार उत्पन्न होने लगते है तो उसका व्यक्तित्व विघटित् होने लगता है जिससे उनके शारीरिक एवं मानसिंक स्थिति पर प्रभाव पडता है। परन्तु फिर भी यह व्यक्ति अपने आप को किसी भी तरह शारीरिक व मानसिंक रूप से रोगी नही मानते है व्यक्तित्व में विकार आने के कारण इनके सामजिक संबंधो में विखण्डन हो जाता है। परन्तु किसी भी प्रकार के भी विपत्ति के समय वह अडिग रहते है। और विपत्ति का सामाना करते रहते है।

किसी भी प्रकार के मनोस्नायुविकृति से गस्त होने पर व्यक्ति की मानसिक स्थिति खराब होने लगती है उसी प्रकार व्यक्ति के व्यक्तित्व में विकार आ जाने पर उसके बाहा व्यवहार में भी परिवर्तन आने लगता है। वह समाज विराधी प्रतिक्रियाएँ करना आरम्भ कर देता है। जिससे उसका शारीरिक और मानसिंक सन्तुलन बिगडने लगता है और उसका व्यक्तित्व विकारों से ग्रस्त होने लगता है। डेविसन और निल के अनुसार "व्यक्तित्व विकृति, विकृतियों का विषय समूह है जो वैसे व्यवहारों एवं अनुभूतियों का स्थायी एवं अनम्य पैटर्न होता है जो सांस्कृतिक प्रत्याशाओ से विचलित होता है और तकलीफ या हानि पहुचाता है"।

9.4 व्यक्तित्व विकार के प्रकार

व्यक्तित्व विकारो को मुख्य रूप से पांच प्रकारो में बाटा जा सकता है।

1. समाज विरोधी विकृत प्रति क्रियाऐं।

2. बालापचार
3. प्रौढ अपराध एवं नव अपराधी
4. कामुक विचलन
5. मद्यव्यसनिता

1. समाज विरोधी मनोविकृति प्रतिक्रियाऐ ((Anti Social Psychopathic Reactions):-

समाज विरोधी व्यक्ति के व्यक्तित्व से तात्पर्य वैसे व्यक्तित्व से होता है जो न तो स्नायुविकृत होते है और जो ना ही मनोविकृत होते है, परन्तु यह सामाजिक रूप से अयोग्य होते है। इन व्यक्त्यिों का प्रमुख लक्षण दोषपूर्ण नैतिक विकास होता है वह सामाजिक नियमों के अनुसार कार्यन नही कर पाते है। वह समाज के अनुशासित नियमों पर नही चल पाते है और हमेशा किसी न किसी प्रकार की मुसीबतों व जोखिमों से घिरे रहते है। अतीत के बुरे कटु अनुभवो व दण्डों का भी ऐसी व्यक्तियों पर कोई प्रभाव नही पड़ता है।

सामान्य अवस्था में ऐसे व्यक्तियों को शारीरिक व मानसिक रूप से बीमार नही कहा जा सकता है परन्तु ऐसे व्यक्ति समाज में शांति भंग करने वाले दंगा करने वाले तथा सार्वजनिक सम्पत्ति को बर्वाद करने वाले होते है। कारसन तथा बुचर (1992) के अनुसार समाज विरोधी विकृति वाले व्यक्ति बिना पछतावा या किसी के प्रति निष्ठा दिखाये अपने आक्रमक एवं समाज विरोधी व्यवहार द्वारा दूसरो के अधिकारो का हनन करते है।

समाज विरोधी व्यक्तिव के व्यक्ति बिना किसी अवरोध अनुभव किये ही समाज विरोधी कार्य करता है।

व्यक्तित्व विकारो से पीडित व्यक्तियों का अनुमान लगाना अत्यन्त कठिन होता है परन्तु ऐसे लोग छिपे रूप से समाज में रहते है और उनका पता नही लग पाता क्योंकि ऐसे अनेक व्यक्ति बाह्य रूप से कुशल कलाकारों व सफल नाटककारों, अनुउत्तर दायी राजनीतिक, कपटी व्यापारियों, कपटी वकील, कुटिल वैश्याओं तथा ठग, चोर, बलात्कारी, एवं अपराधियों के रूप में समाज में खुले रूप से अपनी सम्बन्धित गतिविधियों में व्यस्त रहते है। महिलाओं की अपेक्षा पुरूष ऐसे विकृत व्यवहार से अधिक पीड़ित होते है यह व्यवहार प्रौढ़ व्यक्तियों की अपेक्षा किशोरो में अधिक पाया जाता है।

समाज विरोधी मनोविकृत प्रतिक्रियाओ के लक्षण:-

समाज विरोधी व्यक्ति सामान्य तौर पर ऊपर से बुद्विमान, चतुर, आकर्षक, ईमानदार दिखाई प्रतीत होता है परन्तु वे सही रूप में अपरिपक्व, अनुत्तर दायी और आवेगशील होता है। इस प्रकार के व्यक्ति छोटी छोटी बातो पर उत्तेजित हो जाते है और समाज के विरोध में व्यवहार करने लगते है। इन सभी समाज विरोध लक्षणो को हम 10 वर्गो में आसानी से विभक्त करके समझ सकते है।

1. अपर्याप्त अन्तरात्मा विकास (**Inadequate conscience development)** :-

इस प्रकार के व्यक्ति समाज के धार्मिक, सामजिक नैतिक मूल्यों को समझ नही पाते है और उनको स्वीकार नही करना चाहते है इन व्यक्तियों का बौद्विक सामाजिक विकास नही हो पाता है इनकी अन्तरात्मा अपर्याप्त रूप से

जाग्रत होती है जिससे वह समाज के विरूद्व कार्य करने मे भी असमर्थ नही होते है यह व्यक्ति अपने गोल मोल व लच्छेदार बातों से दूसरो को धोखा देने मे कामयाब हो जाते है इनकी दिखावटी बातो की वजह से व्यक्ति इन पर अत्यधिक विश्वास करने लगता है। जिसका लाभ उठाकर ये व्यक्तियों को धोखा देने में सफल हो जाते है।

2. आत्मकेन्द्रित, आवेगी और अनुत्तरदायी (**Egocentric, Impulsive and Irresponsible**) :-

इस प्रकार के व्यक्ति को दूसरे व्यक्तियों की आवश्यकताओ, जरूरतो व अधिकारो की कोई परवाह नही होती है। ऐसे व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्वंय कोई कार्य नही करना चाहते है। बल्कि यहा तक कि वह अपनी जीविका के लिए भी स्वंय नही कमाना चाहते है वह हमेशा दूसरो से कुछ न कुछ लेना चाहते है परन्तु देना नही चाहते है ऐसे व्यक्ति तनावपूर्ण स्थितियों को अत्यधिक समय तक नही झेल पाते है और न ही किसी प्रकार का कोई ठीक निर्णय कर पाते है। इन व्यक्त्यिों की निर्णय शक्ति अत्यधिक कमजोर होती है।

3. सुखवाद एवं आवास्तविक लक्ष्य:-

ये व्यक्ति अपने अतीत व भविष्य के बारे मे सोच विचार किये बिना जीते है। इनका मानना होता है कि अतीत और भविष्य के बारे में सोचकर हम अपना वर्तमान क्यो बर्वाद करे। ये व्यक्ति तात्कालिक यानि वर्तमान के सुख को नही छोडना चाहते है वे सभी ब्राहा वस्तुाओं व चीजो का उपयोग तात्कालिक लाभ व सन्तुष्टि के लिए करते है इस प्रकार के व्यक्त्यिों का व्यक्तित्व स्थायी नही होता है और इनमें सहनशीलता की भावना भी कम होती है ऐसे व्यक्यिों का एक जगह मन नही लगता है वह अपने व्यवसायों को भी जल्दी जल्दी बदलते है ऐसे व्यक्त्यिो में एक ही दिन में कुछ बनकर दिखाने की तीव्र इच्छा होती है। ऐसे व्यक्तियों में असामान्य कामुक व्यवहार अधिक पाया जाता है।

4. दुष्चिंता अथवा अपराध भावना का अभाव (**Lack of Anxiety of Guilt feeling) :-**

जब व्यक्ति में तनाव व दुश्चिन्ता की भावना उत्पन्न होती है तो यह आसानी से हार मान कर बैठ नही जाते है बल्कि अपने आक्रमक व्यवहार द्वारा इन्हे समाप्त करने का प्रयास करते है दूसरे व्यक्तियों के प्रति शत्रुता व आक्रमणकारी व्यवहार करने पर इनमें कोई अपराध भावना उत्पन्न नही होती है एक तरफ दुश्चिनता व अपराध भावना का अभाव वही दूसरी तरफ ईमानदारी, दिखावे की सरलता के कारण इन व्यक्तियों पर शक करने की शंका कम हो जाती है।

5. गलतियों से सीखने की अयोग्यता:-

ऐसे व्यक्ति अपनी जीवन की गलतियों व अनुभवो तथा दण्डों से कुछ भी सीखने का प्रयास नही करते है और गलती पर गलतियां करते रहेते है ऐसे व्यक्ति अपने स्वार्थ को पूरा करनें में हेर फेर करने में माहिर होते है और सजा से भी आसानी से बच निकलते है। वे ऐसा सोचते है कि उन्हे कभी भी अपने दुष्कर्मो का परिणाम नही भुगतना पडेगा और घोर कृत्य अपराध करते जाते है।

6.. स्वार्थ सिद्धि के लिए नाटक रचना:-

इस प्रकार के व्यक्तियों में आकर्षक, प्रिय, सुन्दर, बनावटी दिखने का गुण भरपूर रूप में होता है जिससे वह दूसरों को प्रभावित करके अपना कार्य करने में सफल हो जाते है।

7. दोषपूर्ण सामाजिक संबंध (**Defective Social Relationship**) :-

ये लोग प्राय कठोर, अकृतज्ञ, असहानुभूति और पश्चातापहीन होते है इन लोगो के मित्र भी नही होते है और यह समूह के सदस्यों के साथ भी कोई संबंध नही रखना चाहते है।

8. संस्थापित सत्ता और अनुषासन का अस्वीकरण :-

इस प्रकार के व्यक्ति ऐसा व्यवहार करते है जैसे समाज द्वारा बनाये गये नियमो का कोई भी अस्तिव नही है जैसे यह नियम निर्देश इनके लिए नही बनाये गये है और इनके विरोघ में कार्य करते रहते है। स्थापित सत्ता के प्रति शत्रुता की भावना रखते है और उनके विरोघ में आवेगपूर्ण, शत्रुता पूर्ण अपराघिक कार्य करते है

9. युक्तिसम्मतकरण की योग्यता (**Ability to Rationalize**) :-

ये व्यक्ति अपने द्वारा किये गये गलत कार्यो को दूसरो पर आरोपित करते है इनके भीतर अपने व्यवहार के प्रति अर्न्तदृष्टि का अभाव होता है। ऐसे व्यक्ति झूठ बोलने से भी पीछे नही हटते है जबकि उन्हे पता होता है कि एक न एक दिन उनकी पोल खुल जाएगी।

10. दूसरो को सतानें हताष करने एवं संकट मे डालने की प्रवृति:-

इस प्रकार के व्यक्ति दूसरे व्यक्यिो या परिवार के सदस्यों पर बोझ बनने लगते है और उनके लिए दुख व समास्याऐ उत्पन्न करते है ऐसे व्यक्तियों को सुधारना असम्भव नही परन्तु कठिन अवश्य होता है।

समाज विरोधी मनोविकृत प्रतिक्रियाओं के कारण:-

समाज विरोधी मनोविकृति प्रतिक्रियाओं के कारणो के लिए कुछ वैज्ञानिको का मानना है कि किसी शरीरिक विकृति के कारण समाजविरोधी विकार उत्पन्न होते है वही दूसरी तरफ कुछ वैज्ञानिक इसे पारिवारिक दोषपुर्ण तथा समुदाय के रूप में होने वाली प्रतिक्रियाओं के रूप में मानते है।

1. जैविक कारक
2. पारिवारिक कारक
3. मानसिक कारक
4. सामाजिक संस्कृति कारक

1. जैविक कारक (Biological Factors):-

समाज विरोधी व्यक्ति आरम्भिक जीवन से ही आवेगशील, तोडफोड करने वाले, असहनशील, उत्तेजित व्यक्तित्व के होते है। इसका कारण तंत्रिका तंत्र के अन्तबार्धा और उत्तेजक के प्रक्रियाओं में असन्तुलन है इस असन्तुलन का कारण जन्मजात क्षति भी हो सकती है। मैकमिलन तथा कोफोड (1984) के अनुसार ऐसे लोगों में समाज विरोधी

व्यवहार करने की जन्मजात प्रवृत्ति मूल रूप से जीन्स द्वारा उनको प्राप्त होती है और जिन व्यक्तियों में नई नई उत्तेजनाओं के प्रति अधिक जिज्ञासा होती है और जो नये नये कारनामें करके सुख की अनुभूति प्राप्त करना चाहते है। उनमें समाज विरोधी मनोविकृत प्रतिक्रियाऐ अत्यधिक देखने को मिलती है। लेकिन जैविक कारको की भूमिकाओं में इस कारण से संदेह होने लगता है कि क्योंकि बच्चों में प्राय उनके जैसे मनोविकृत शीलगुण देखने में नही आया है।

समाज विरोधी व्यक्तियों मे संज्ञानात्मक कार्यो की अपूर्णता पाई जाती है इसलिए वह बिना किसी हिचक के समाज विरोधी कार्य करते रहते है

2. पारिवारिक कारक:-

समाज विरोधी बालाको के माता पिता मे अधिकार, स्वतन्त्रता एवं उपलब्धि के लक्ष्यों के संबंध में मतभेद एवं द्वन्द पाये जाते है। मैककार्ड तथा मैककार्ड (1964) के अध्ययनो से स्पष्ट होता है कि जब बच्चो को माता पिता द्वारा बात बात पर तिरस्कृत किया जाता है व माता पिता द्वारा बच्चो को पर्याप्त मात्रा के प्यार नही मिलता है तो इस स्थिति में बच्चे समाज विरोधी प्रतिक्रियाऐं करने लगते है।

इस प्रकार के बालको के पिता का स्वभाव अत्यधिक कठोर और कटु होता है तथा बहुत अलग अलग रहने वाले, व्यस्त रहने वाले होते है जिससे बच्चो में कभी कभी भय भी उत्पन्न होने लगता है। इसके विपरीत माताएं लाड प्यार करने वाली सुख प्रदान करने वाली होती है। यहाँ पर माता-पिता अपने बच्चो से दूरी व तटस्थता का संबंध रखते है व उनके प्रति प्रेम भाव का आभाव रखते है ऐसे व्यवहार से बच्चो में व्यस्कावस्था आने तक समाज विरोधी कार्य करने की लालासा अत्यधिक विकसित हो जाती है। ग्रीर (1964) के अध्ययनो से स्पष्ट होता है कि समाज विरोधी व्यक्तित्व एक समूह में 60 प्रतिशत व्यक्ति ऐसे थे जिनके माता पिता बचपन में ही खो चुके थें माता पिता के न होने कारण इनका सांवेगिक विकास नही हो पाता है जिसके कारण समाज विरोधी व्यक्तित्व विकसित होने लगता है।

समाज विरोधी व्यक्तित्व का विकास दोषपूर्ण परिवारिक अन्त क्रियाओं से भी उत्पन्न होता है।

3. मानसिक कारक:-

समाज विरोधी व्यक्तियों का एक बड़ा प्रतिशत एवं मध्य वर्ग उच्च वर्ग एवं में पाये जाते है ये परिवार उत्तम आवसीय क्षेत्रो मे निवास करते है। विल्किन्स (1961) के अनुसार समाज विरोधी व्यक्तियों का अपना एक विशेष प्रकार का चाल चलन व जीवन शैली होती है जिसके अनुसार वह कार्य करते है इनके व्यवहार को परिवर्तित करना कठिन होता हैं। ऐसे व्यक्ति अपने द्वन्दो और आवेगो को दुश्चिन्ता द्वारा कम करने के बजाय आक्रमणकारी, व विध्वंसक व्यवहार करना अधिक अच्छा समझते है। आरम्भिक जीवन में कभी-कभी एक बालक किसी एक दुराचारी परन्तु सफल कहे जाने वाले व्यक्ति के प्रति भी अचेतन रूप से तदात्मीकरण करते देखा जाता है। ऐसी स्थिति में उसमें अपराध के लिए प्रश्चित करने की भावना विकसित नही हो पाती है।

4. सामाजिक सांस्कृतिक कारक:-

समाज विरोधी व्यक्तित्व निम्न सामाजिक आर्थिक समूहो में अत्यधिक तेजी से बढता है समाज विरोधी व्यक्तियों पर समाज में रहने वाले सदस्यों का व्यवहार भी निर्भर करता है कि उसका अपने साथ के लोगो के साथ कैसा व्यवहार है।

समाज विरोधी मनोविकृत प्रतिक्रियाओं के उपचार:-

समाज विरोधी मनोविकृती के व्यक्ति मनस्तापी नही होते है इनको मानसिक अस्पताल में भरती नही किया जाता है। इनका उपचार करना अत्यधिक कठिन होता है कुछ शारीरिक अंगो से संबंधित कारक जिनका उपचार करना असम्भव हैं इस कार्य को और जटिल बना देते है इन व्यक्यिो के उपचार में सबसे बडी समस्या इन व्यक्तियों की अभिवृति है जो व्यक्ति बदलना नही चाहते है।

समाज विरोधी व्यक्ति के उपचार में वैयक्तिक चिकित्सा, सामूहिक चिकित्सा, व्यवहार चिकित्सा, औषधि चिकित्सा अत्यधिक लाभकारी सिद्व हुई है।

वैयक्तिक चिकित्सा में चिकित्सा सत्र के दौरान पीडित व्यक्ति तथा एक चिकित्सक होता है जो रोगी से समस्या के प्रत्येक पहलु को बताने के लिए कहता है और विचार विमर्श करता है इस चिकित्सा की सफलता रोगी के ऊपर निर्भर करती है कि वह चिकित्सक के साथ कितना सहयोग करता है सामूहिक चिकित्सा मे समाज विरोधी व्यक्त्यिों का उपचार समूह व टोली बनाकर किया जाता है इसमे कई चिकित्सक होते है जिनके सुझावो की सहायता से व्यक्तियों का उपचार आसानी से किया जाता है। समाज विरोधी व्यवहार को हटाने, नियंत्रित करने मे दण्ड बहुत अधिक प्रभावकारी सिद्व नही होता है बल्कि समाज विरोधी व्यवहार को दूर करने के लिए व्यक्ति को ऐसी परिस्थिति में रखना आवश्यक होता है जहां व्यवहारात्मक नियंत्रण संभव हो ताकि वह आत्मध्वसात्मक व्यवहार न कर सके।

समाज विरोधी व्यक्तियों को सुधारने के लिए प्रशान्तक औषधियें का भी उपयोग किया जाता है जिससे व्यक्ति आक्रमणकारी व्यवहार न करे। कभी कभी ऐसे व्यक्त्यिों को नियंत्रित करने के लिए विधुत चिकित्सा का भी उपयोग किया जाता है परन्तु यह लाभकारी सिद्व नही हो पाती हैं

मनेविश्लेषण एवं सम्मोह विश्लेषण विधि भी अधिक प्रभाव कारी सिद्व हुई है। समाज विरोधी व्यक्त्यिों के असामान्य व्यवहार को दूर करने के लिए कई प्रकार को चिकित्सा विधि उपलब्ध है। अधिकतर समाज विरोधी व्यक्तित्व वाले व्यक्ति अपनेआप 40 साल से आगे आयु उग्र बढ़ने पर अपने समाज विरोधी व्यवहार को अनुचित समझकर छोड़ देते है उम्र बढ़ने के साथ ही इन व्यक्तियों में सामाजिक परिपक्वक्ता और सूझ विकसित हो जाती है। जिसके फलस्वरूप समाज विरोधी कार्यो में कमी आ जाती है। ऐसे व्यक्तियों को अन्स्मित मनोविकृत व पके हुए मनोविकारी (Burned Out Psychopath) कहा जाता है ऐसे व्यक्ति इस उम्र मे पहुचने से पहले काफी तबाही मचा चुके होते है व बर्बाद हो चुके होते है।

2. बालापचार ((Burned Out Psychopath):-

बालपचार 18 वर्ष से कम आयु के लडकों एव लडकियों का ऐसा व्यवहार है जो हमारे समाज द्वारा स्वीकार्य नही है। भारतीय दण्ड विधान के अनुसार 7 वर्षसे 17 वर्ष तक का अपराधी बाल अपराध के अर्न्तगत आता है कानून

के दृष्टिकोण से कानून विरोधी कार्य अपराध है। जबकि सामाजिक दृष्टि कोण से समाज के विरोध में किया गया कोई भी कार्य अपराध की श्रेणी में आता है सात से अधिक परन्तु बारह वर्ष से कम आयु वाले ना समझ बालको को भारतीय विधान धारा 83 के अनुसार अपराधी नही माना जाता है।

Reformatory School Acts;1967 के अनुसार बाल आपराधियों की अधिकतम आयु 16 वर्ष है सामान्य रूप से बाल अपराधियों की आयु 17 वर्ष तक होती है।

आज हमारे देश में बाल अपराधियों की संख्या लाखो में है वही अमेरिका में बाल अपराधियों की संख्या 10 लाख से ज्यादा है बाल अपराध चोरी, हत्या, बलात्कार, सेधंमारी और डकैती आदि जैसे अपराध 18 वर्ष की कम आयु के युवकों द्वारा किया गया व्यवहार है जो समाज द्वारा मान्य नही होता है इस व्यवहार के लिए चेतावनी दी जाती है। दण्ड दिया जाता हे या सुधरात्मक कार्य किया जाता है।

बाल अपराधियों में स्त्री की अपेक्षा पुरूषों में अपराध करने की प्रवृत्ति अत्यधिक पाई जाती है।

कारण:-

बाल अपराध के अनेक कारण हो सकते है इसे निम्नाकिंत रूप में बाटा गया है-

1. अतिव्यापक विकृतियां:-

अनेक वैज्ञानिकों के अनुसार बाल अपराधियों का वर्गीकरण कई प्रकार की विकृति के आधार पर किया जा सकता है।

1. शारीरिक विकृतियां:-

एक प्रतिशत बाल अपराधियों के आसामान्य व्यवहार का कारण मस्तिष्क विकार होते है जिनके कारण बालक, सक्रिय , आवेगपूर्ण तथा सवेगात्मक रूप से अस्थिर होते है आवेश में आकर अपराध करने के पश्चात इनमें अपराध भावना उत्पन्न हो जाती है।

2. मानसिंक रूप से मंदित बाल अपराधी:-

बाल अपराधियों ने अपराध का मुख्य कारण निम्न बुद्वि का होना होता है। जब बालकों में बुद्वि की मात्रा सामान्य नही होती है तब बालक को यह ज्ञात नही हो पाता है कि वह जो व्यवहार कर रहा है वह समाज द्वारा मान्य है कि नही, उसे यह स्पष्ट नही होता है कि वह कोई घोर अपराध कर रहा है।

3. मनस्ताप और मनोविक्षिप्तता:-

मानसिंक रोगो से ग्रस्त व्यक्ति भी बाल अपराधी और अपराधी बन जाते है। संपूण बाल अपराधियों में लगभग 5 प्रतिशत तक मनस्ताप से पीडित व्यक्ति अपराधी होते है। इसी प्रकार संपूर्ण बाल आपराधियों में 5 प्रतिशत अपराधी मनोविक्षिप्तता रोगो से पीडित होते है मनोग्रस्ताबध्यता मनस्ताप चोरी करने वाले अपराधियों में अधिक पाया जाता है।

4. तंत्रिकातापी बालपचारी:-

10 से 15 प्रतिशत बाल अपराधियों के व्यवहार का संबंध तंत्रिकातापी से होता है इस प्रकार के बालक अपराध करने से पहले अपने विचारो से लडते है और कार्य कर लेने के बाद अत्यधिक अपराध भावना का अनुभव करते है।

2. विकृतिजनक पारिवारिक सम्बन्ध:-

विकृति जनक पारिवारिक संबंधो के अनेक रूप हो सकते है।

1. भग्न परिवार ((Broken Homes):-

भग्न परिवार उस परिवार को कहते है जिससे बालक अपने माता पिता को तलाक, मृत्यु व परित्याग के कारण खो देते है जिसके कारण उनमें असुरक्षा की भावना उत्पन्न होने लगती है इसके कारण वह आसामाजिक कार्य करने लगते है। बार्कर एवं ऐडम्स (1962) के अध्ययन से ज्ञात होता है कि दो तिहाई बच्चे भग्न परिवार से आते है।

2. सौतेले माँ-बाप:-

परिवार में सौतेले मां बाप का होना भी अपराध का बडा कारण होता है। सौतेले मां बाप अपने बच्चो के साथ पक्षपात का व्यवहार करते है सौतेली मां अपने बच्चो को अधिक तथा दूसरे सौतले बच्चो को कम प्यार देती है जिसके कारण बालक पक्षपात की भावना से ग्रस्त हो जाते हैं और अपराध करते रहते है।

3. पैतृक अनुपस्थितता ((Parental Absenteeism) :-

कुछ माता पिता अपने व्यवसाय व नौकरी के कारण अधिकतर समय व्यस्त रहते है व बाहर रहते है जिससे माता पिता व बालको के संबंधों में दूरिया आने लगती है माँ बाप अपने बच्चो को समय नही देते है जिसके कारण बच्चे असुरक्षित महसूस करने लगते है ओर मां-बाप तथा बच्चो के संबंध कटु हो जाते है। जिसके कारण बच्चे अपराध से संबंधित क्रियायें करने लगते है।

4. माता पिता द्वारा तिरस्कार व दोषपूर्ण अनुषासन:-

जिन माता-पिता द्वारा बच्चो का तिरस्कार किया जाता है उनके बालकों में बाल अपराध के गुण अत्यधिक उत्पन्न होते है बालको के परिवार का अनुशासन यदि दोषपूर्ण होता है। तो बच्चे बिगड जाते है अगर उन्हे अनुशासन के माहौल में नही रखा जाता है तो वह अपराध करने के लिए अग्रसर हो जाते है।

5. पारिवारिक विघटन:-

जिन परिवारों में विघटन की स्थिति पायी जाती है उन परिवारों के बच्चे अपराधी प्रवृत्ति के हो जाते है।

3. सांस्कृतिक कारक:-

इस श्रेणी के बाल अपराधी ऐसे समूह से संबंधित होते है जिनके नैतिक मूल्य सामान्य जनसंख्या के अनुरूप नही होते जिन कार्यो को समाज अपराधी प्रवृति का मानता है इस अवसंस्कृति व्यक्ति उसे अच्छा समझते है।

1. समाज द्वारा परित्याग:-

16 से 20 वर्ष की आयु के ये युवक और युवतियां योग्यता अथवा अभिप्रेरणा की कमी के कारण अपने स्कूल अथवा कालेज में वाछनीय शैक्षिक योग्यता प्राप्त नही कर पाते है। जो शैक्षिक योग्यता प्राप्त कर लेते है तो वेकारी की समस्याएं कुण्डा उत्पन्न कर देती है जब ऐसे बालको का समाज द्वारा परित्याग कर दिया जाता है तब उत्पन्न कुण्ठा से आसामाजिक कार्य करने लगते है। जैसे बेबात की लड़ाई झगड़ा, तोड़ फोड़ दलबन्दी आदि है।

2. बालापचारी गिरोह:-

बाल अपराध का जन्म शहर की गन्दी वस्तियों में होता है। इन क्षेत्रो मे रहने वाले व्यक्त्यिों की निर्धनता और अपर्याप्त निर्वाह परिस्थितियां कुण्ठा ओर असन्तोष उत्पन्न करती है। बालको में समाज के प्रति नाकारात्मक अभिवृत्ति उत्पन्न होने लगती है।

लडकियों को भी इन बालापचारी गिरोहो में भरती किया जाता है।अमेरिका में लडकियों के अब अलग गिरोह बनने लगे है। यह भी पुरूष गिरोहो की भांति संभ्रमित अक्रोशी और लडाकू लडकियों के लिए अपना एक अलग संसार प्रदान करते है।

4. आर्थिक कारक:- बाल अपराधो में आर्थिक कारक सहायक होते है।

1. निर्धनता:-

बर्ट (1948) के अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकलता है कि बाल आपराधियों में आधे आपराधी निर्धन परिवारो से आते है। निर्धनता भी बाल अपराधो को जन्म देती है।

2. भुखमरी:-

आज समाज में इतनी अधिक निर्धनता फैल रही है कि लोग भूख से मर रहे है खाने को खाना नही है जिससे व्यक्ति अपराध करने के लिए मजबूर हो जाते है।

3. बेरोजगारी:-

बेरोजगारी जैसी घातक समस्या भी अपराध करने के लिए मजबूर कर देती है। बेरोजगार व्यक्ति को रोजगार न मिलने की वजह से उनका मानसिक सन्तुलन बिगडने लगता है। उन्हे यह ज्ञान नही हो पाता है कि वह जो काय कर रहे है वह गलत है या सही।

4. अत्यधिक प्रतिबलक स्थितियाँ:-

कभी कभी कुछ अनुशासनहीन, अल्पबुद्वि, आवेगोशील व अपरिपक्व बालक अचानक घोर प्रतिबलों जैसे मा या बाप की एकाएक दुखद मृत्यु, परिवार से बिछुडना और निर्धनता के जीवन के शिकार बन जाते है। अकेलेपन में वह कभी कभी सुखी जीवन व अन्य तुच्छ प्रलोभन के कारण अपराधी व्यवहार के जाल में फस जाते है।

आज के युग में टेलीविजन के प्रोग्रामों के माध्यम से बालको को व नवयुवकों के कोमल मन पर अपराध प्रवृति अचेतन रूप से शीध्र घर करती हुई देखी जाती है टेलीविजन के माध्यम से अपराध जैसे घोर कृत्य नवयुवको-नवयुवतियों के सामने पेश किये जा रहे है जिससे अपराध का प्रचलन बढ रहा है। फिल्मों, नाटको में दिखाये गये अपराधी दृश्यों व कृत्यों को व्यक्ति अपने जीवन में ग्रहण कर अपराध की ओर अग्रसर हो रहे है।

उपचार:-

सर्वप्रथम ऐसे बालको को उनसे संबंधित अपराधी गिरोह से अलग रखना होता है फिर उन्हे सुधार गृहो व प्रशिक्षित लोगो की देख रेख में रखने की आवश्यकता होती है ताकि उन्हे मनोवैज्ञानिक परामर्श व व्यवसायिक प्रशिक्षण मिल सके ताकि वह अपने जीवन के महत्तव को समझ सके और अपने व्यवहार, लक्ष्यों और क्रियाओं को एक नया मोड दे सके।

अपराधी बालक अति कठोर तथा असाध्य प्रकृति वाले होते है जिनमें कुछ गम्भीर अपराधी, घातक अपराध करते है जैसे हत्या, डकैती, तस्करी, बालात्कार आदि तथा इसके विपरीत कुछ बालक साधारण अपराध करते है जैसे स्कूल से भाग जाना, घर छोडकर चले जाना, मादक औषधियों का सेवन, लैगिक व्यवहार आदि साधारण अपराधियों और गम्भीर अपराधी को उपचार हेतु अलग रखा जाता है। अपराधी बालकों को पुलिस द्वारा पकडे जाने के बाद उन्हे परिवीक्षा ग्रह में रखा जाता है। ब्लेक (1967) के अनुसार 48 प्रतिशत व्यक्तियों के अपराध करने में सुधार देखा गया है।

परिवीक्षा ग्रह में उन्हे व्यवसायिक प्रशिक्षण दिया जाता है और उनके व्यवहार को संन्तोष जनक बनाने का प्रयास किया जाता है। जिससे अपराधी बालक के व्यक्तित्व का पुनगर्ठन व पुनर्स्थापन होता है।

बाल अपराधी के जीवन स्तर में सुधार माता पिता के शिक्षण व विघालय में स्वास्थ्य कार्यक्रम बाल आपराध के नियंत्रण के लिए लाभकारी है मनोचिकित्सा व समाज सापेक्ष चिकित्सा उपयोगी सिद्व हुई है।

3. प्रौढ अपराध और नव अपराधी:-

प्रौढ़ अपराध की जडे कभी कभी बचपन में होती है परन्तु सदैव ऐसा नही होता बहुत से बाल अपराधी प्रौढ अपराधी नही बनते और बहुत से प्रौढ़ अपराधी पहले बाल अपराध नही रहे होते है।

असामाजिक कार्य भी अलग अलग प्रकार के होते है हो सकता है जो कार्य समाज के नियमों के विरूद्व हो वह अपराधी को असामजिक कार्य लगते ही न हो। कुछ व्यवहार हमारे समाज में पूर्णतः स्वकीकार नही किये जाते है।

कभी कभी व्यक्ति अपने जीवन में एक अपराध करके ही इस श्रेणी में पहुँच जाता है और उसकी जीवन शैली का एक रूप बन जाता है।

नव अपराधी व्यक्ति की धन में रूचि होती है जिसके कारण वह अपराध करते है यह व्यक्ति अपराध रोमांच के लिए करते है यह रोमाच ऐसे निषिद्व कार्य करने से उत्पन्न होता है जो तात्कालिक क्षणों को तीव्र बना देते है यह व्यक्ति अपराध करने से पहले कोई योजना नही बनाते है। यह अपने द्वारा किये गये अपराधो के परिणाम का कोई पूर्वाभास नही होता है कि परिणाम कितना घातक सिद्व हो सकता है इनका उददेश्य किसी भी तरह धन कमाना होता है।

कारण:-

बालापचपार की ही तरह प्रौढ अपराधी व नव अपराधी में पस्स्थिितयों से संबंधित प्रतिबल व आन्तरिक तनाव अत्यधिक महत्वपूर्ण होते है। अत्यधिक प्रतिबल व आन्तरिक तनाव के कारण अपराध करने की प्रवृति तीव्र हो जाती है सामान्य व्यक्तियों के द्वारा अपराध एक बार किया जाता है परन्तु जब ये अपराध बार बार होने लगते है तो वह अपराध न रहकर महाअपराध की श्रेणी में आ जाता है। अत्यधिक मदिरापान का सेवन करना भी अपराध का एक महत्वपूर्ण कारक माना जाता है।

उपचार:-

इसके उपचार व निरोध के लिए उन्ही विधियों का उपयोग किया जाता है जिनका प्रयोग आसामान्य व्यवहार के लिए किया जाता है जैसे अस्पतालों मे भरती करना, आयुवैज्ञानिक चिकित्सा तथा मनोचिकित्सा उपलब्ध करना, अस्वस्थ व्यक्तित्व और प्रवृतियों की समय रहते पहचान करना, अवांछनीय परिस्थितियों में सुधार करना आदि। आज का कानून अपराधियों के पुर्नवास से कोई रूचि नही रखता है दूसरी और एक बार दण्डित हो जाने के बाद अपराधी को समाजस्वीकार नही करता अपराधियों को सुधारने के लिए आवश्यक है कि ऐसे अपराधियों को समाज मे सम्मानजनक स्थान प्रदान किया जाय। 40 से 70 प्रतिशत दण्डित अपराधी पुन अपराध करने के लिए विवश हो जाते है।

4. लैंगिक विपर्याय या कामुक विचलन ((Sexual Perversions or Deviation)

जब एक व्यक्ति का जीवन प्राकृतिक व जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति के अनुकूल व उनके अनुरूप बना रहता है। तब तक उसमें मैथून तथा उससे संबंधित पूर्व आनन्द क्रीडा दोनो का स्वरूप सामान्य बना रहता है, परन्तु जब व्यक्ति का लैंगिक जीवन कुछ व्यक्तिगत, समाज, सांस्कृतिक कारणो से, प्राकृतिक व जैविक आवश्यकताओं की समयानुकूल आवश्यक सन्तुष्टि से अत्यधिक विचलित होने लगता है तब लैंगिक विचलन उत्पन्न होने लगता है।

एक व्यक्ति अपने लैंगिक जीवन में विरोधी लिंग के प्रति आर्कषित होता है प्रत्येक व्यक्ति में लैंगिक इच्छाएं होती है जिनकी पूर्ति वह अपने भिन्नलिंग वाले के साथ करता है। लैंगिक इच्छाओं को दमन, अवदमन समापन नही होता है लैगिंक क्रियाओं की सन्तुष्टि के मार्ग में जब बाधाएँ उत्पन्न होती है तब उससे संबंधित व्यक्ति लैगिक जीवन में लैगिक विचलन व विपर्यास उत्पन्न हो जाता है जिसे लैंगिक विचलन कहा जाता है।

लैंगिक विकार अथवा विचलन केवल लैंगिक आवश्यकताओं की असन्तुष्टि से ही उत्पन्न नही होती है बल्कि व्यक्ति के जीवन के शैशव काल से संबंधित मनोकामुक कुण्ठाओं से भी उत्पन्न होते है, इसके अतिरिक्त व्यक्तित्व की निर्बलता, अपरिपक्कता, आवेगशीलता, लैगिंक संबंधों की विफलता भी लैगिक विचलन को जन्म देते है। असन्तुलित हामोन के कारण भी व्यक्ति में लैंगिक विचलन उत्पन्न होता है।

जब लैगिक क्रिया के उपयोग में स्वाभाविक या सामान्य विधियों का प्रयोग न करके कृत्रिम व असामान्य विधियों को प्रयोग में लाया जाता है तो उसे लैगिक विकृति कहते है। लैगिंक विकृतियों का प्रभाव व्यक्तित्व पर पड़ता है जिससे व्यक्तित्व विकास असन्तुलित हो जाता है।

लैंगिक विचलन के कारण:-

1. अधिगम और पुनर्बलन:-

समाजीकरण प्रक्रिया के अर्न्तगत ही प्रत्येक व्यक्ति कामुक व्यवहार का अधिगम करता है जिनका कामुक व्यवहार समाज में प्रचलित व्यवहार से भिन्न होगा वह कामुक व्यवहार निश्चय ही अनुकरण द्वारा सीखे गये व्यवहार से विचलनयुक्त होगा।

2. त्रुटिपूर्ण सूचना:-

आज के समय में भी सेक्स संबंधो के बारे में खुलकर बातचीत करना निषिद्व है जिसके कारण इसके बारे में पर्याप्त सूचना के बजाय त्रुटिपूर्ण सूचना प्राप्त होती है त्रुटि पूर्ण सूचना के कारण भी व्यक्ति का कामुक व्यवहार विचलन हो सकता है।

3. कामुक कुंठा और प्रतिबल:-

अनेक समाजो में विवाह होने से पूर्व यौन संबंधों पर प्रतिबन्ध होता है। प्रतिबन्ध के कारण सेक्स ऊर्जा का उपयोग नही होता है जिसके कारण कुण्ठा उत्पन्न होती है एक अध्ययन में देख गया कि प्रतिबल परिस्थितियों में बलात्कार के होने का सम्भवना अधिक होती है।

4. मानसिक विकार:-

कामुक विचलन व्यवहार करने वाले अधिकांश व्यक्ति विभिन्न मानसिंक रोगों से पीडित होते है। 76 प्रतिशत मानसिक रोगी व्यक्ति व 14 प्रतिशत सामान्य व्यक्तियों में कामुक व्यवहार में विचलन होता है। मनस्ताप, मनोविक्षिप्ता व मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्तियों में कामुक विचलन अत्यधिक होता है|

कामुक विचलन के प्रकार:-

कालमैन ने विभिन्न प्रकार के कामुक व्यवहार के रूप को निम्नलिखित तीन श्रेणियों में विभाजित किया है।

1. वे कामुक विचलन जिनमें कामुक क्रिया व कामुक इच्छा की कमी होती है जैसे नपुंसकता, कामोन्माद (कामशैत्य)

2. वे लैगिंक विकार जिनमें लैगिक विकास अपेक्षाकृत अतिविकसित होता है जैसे पुरूष कामोन्मद, स्त्रीकामोन्माद।

3. वे लैगिंक विकार जो इसलिए असामान्य माने जाते है क्योंकि काम-पात्र (विरोधी लिंग) का चयन सामान्य नही होता है। जैसे समलिंगी कामुकता, पशुगमन आदि।

विभिन्न प्रकार के लैंगिक विचलनों के मुख्य रूप निम्नलिखित है।

1. नपुसंकता:-

पुरूषों मे यौन संबंधो की इच्छा में कमी अथवा इसे प्राप्त करने की अयोग्यता को नपुंसकता कहा जाता है जब किसी कारण से किसी व्यक्ति की मैथून क्रिय के प्रति विरूचि उत्पन्न हो जाती है व अपने विपरित लिंग के व्यक्ति के प्रति आंकर्षण नही रहता, या यौन संबंधोके प्रति एक गहरा डर, अपराध भावना व असफलता की भावना घर कर लेती है तब व्यक्ति में नपुसंकता की स्थिति स्पष्ट होती है।

2. कामषैत्य((Frigidity) :-

जिस प्रकार से पुरूषों में नपुसंकता होती है उसी प्रकार स्त्रियों में कामशैत्य होता है। नपुसंकता का अपेक्षा कामशैत्य अधिक पाया जाता है। जब एक युवा स्त्री अपने पुरूष साथी के साथ यौन संबंधो मे प्राय बार बार असंतुष्टि तथा अतृप्ति व एक विशेष कष्ट कारक तनाव का अनुभव करने लगती है तब लैगिंक व्यवहार के प्रति अपनी उदासी व शैत्य प्रतिक्रिया व्यक्त करती है। जिससे उसमें विचलन की प्रतिक्रियाएँ स्पष्ट होती है।

3. पुरूष कामोन्माद एवं स्त्री कामोन्माद ((Satyriasis & Nymphomania) .

कामोन्माद से तात्पर्य कामुक संबंधो में सक्रियता है। ऐसे स्त्री पुरूष तीव्र कामुक इच्छा का अनुभव करते रहते है। उनका पूरा जीवन इसी इच्छा पर केन्द्रित होता है। ऐसे पुरूष अनेक महिलाओं के साथ यौन संबंध स्थापित करते है ऐसे व्यक्ति में पुरूष एवं भाव की हिनता होती है। जिसके तनाव से वह अनेक स्त्रियों से यौन संबंध स्थापित करते है। इसी प्रकार ऐसी कामुक स्त्री जिसको कभी भी यौन सन्तुष्टि नही हो पाती है और वह नवीन संबंधो के प्रति ललायत रहती है। कामोन्माद उत्पन्न होने के कई कारण होते है।

1. जीवन की समस्याओं से पलायन 2. विभिन्न कुष्ठाओं की क्षति पूर्ति 3. पुरूषत्व व स्त्रीतत्व तथा पर्याप्तता की भावनाओं को ऊचाँ उठाना।

4. हस्तमैथून:-

हस्तमैथून से तात्पर्य कामुख सुख के उदेश्य से ज्ञानेन्द्रियों का आत्म उद्धीपन है। किन्से के अनुसार "62 प्रतिशत स्त्रियाँ तथा 92 प्रतिशत पुरूष अपने जीवन में किसी न किसी समय हस्तमैथून करते है। हस्तमैथून वह लैगिग विचलन है जिसमें स्त्री या पुरूष अपनी कामवासना की तुष्टि करने के लिए अपनेही लिगों को स्पर्श करके सुख का अनुभव करते है।

हमारे समाज में हस्तमैथून को घृणित और खतरनाक क्रिया माना जाता है। कुछ परिस्थिति में हस्तमैथुन अत्यधिक विकृति जनक हो जाता है जिन बालको को प्यार नही मिलता व वह स्वंय को अकेले व अवांछनीय अनुभव करते है उनमें अपनी कुष्ठा की क्षतिपूर्ति के प्रयास के फलस्वरूप हस्तमैथून की आदतपड़ जाती है। हस्तमैथून क्रिया के

उत्पन्न होने के कई कारण है। मानसिक अन्तर्द्वन्द्व व तनाव दूर करने के लिए, अत्यधिक चुस्त कपड़े पहनकर उत्तेजना शान्त करने के लिए, अकेलापन दूर करने के लिए एवं लैगिक क्रिया साधानों का अभाव होता है।

5. समलिंगी कामुकता:-

समलिंगी कामुकता यानि समान लिंग के सदस्यों के बीच कामुक संबंध है। किन्से के अनुसार स्त्रियों में पुरूषो की अपेक्षा समंलिगी कामुक संबंध कम पाये जाते है। अर्थात् स्त्रियों में 28 प्रतिशत और पुरूषो में 50 प्रतिशत व्यक्तियों में समलिंगी कामुकता होती है। समलिंगी कामुकता में विचलन के कई कारण होते हैं जैसे शरीर रचना संबंधी कारक-आनुवाशिकता, हार्मोन असन्तुलन, मनो-सामाजिक कारक विकृतिजनक पारिवारिक प्रारूप, सामाजिक अनुभव दीर्घकालिक विषमलिंगीकामी कुष्ठा आदि।

6. प्रदर्शन वृत्ति ((Exhibitionism) :-

जब एक युवक अथवा युवती की लैंगिक तृप्ति केवल अपने को अर्द्वनग्न या नग्न रूप में प्रर्दशित करने में ही हेाती देखी जाती है। इससे संबंधित व्यक्ति की ऐसी प्रदर्शन वृत्ति एक लैंगिक विकृति ही होती है। इसमें व्यक्ति अपने लैगिक सामने किसी भी सार्वजानिक स्थान पर प्रदर्शित करने लगता है। प्रदर्शन वृति कम आयु के प्रौढ पुरूषों में गीष्म ऋतु में अधिक प्रचलित रहती है। प्रदर्शन वृत्ति कई कारणो से स्पष्ट होती है। विषमलिंगी की ओर अग्रसर होना, पुरूषत्व के प्रति शंका एवं भय मनो विकृतियाँ आदि।

7. दर्शन रति ((Voyeurism):-

इसके अन्तर्गत व्यक्ति विरोधी लिंग के व्यक्त्यिों के अद्वनग्न अंगो को देखकर ही विशेष लैंगिक तृप्ति की अनुभूति करते है इसके अन्तर्गत पुरूष ऐसी स्त्रियों पर ध्यान एकाग्र करते है जो कपड़े उतार रही हो व ऐसे दम्पत्ति को देखते है जो कामुक संबंधो में व्यस्त हो। ऐसे दृश्य को देखते समय यह प्रायः हस्तमैथुन क्रिया करते है।

8. वस्तु कामुकता ((Fetishism):-

इसमें स्त्री व पुरूष अपने विषम लिंग के व्यक्ति के निर्जीव वस्तुओं का प्रयोग करते है इनमें पुरूष द्वारा स्त्रियों के अर्न्तवस्त जिनमें जाँघियाँ, आगिया, चोली आदि का उपयोग करते है। इसी प्रकार स्त्रिया भी पुरूष की वस्तुओं का उपयोग कर व उन्हे स्पर्श करके लैगिक सुख की अनुभूति प्राप्त करती है। कभी कभी व्यक्ति द्वारा वस्तु कामुक व्यवहार में वस्तुओं के साथ हस्तमैथून किया जाता है।

9. शव कामुकता ((Necrophilia):-

इसके अर्न्तगत पुरूष संबंध स्थापित करने से पहले स्त्री की हत्या करता है और फिर उसके साथ आसानी से यौन संबंध स्थापित करता है। इसका संबंध किसी गम्भीर मानसिक रोग से होता है।

10. परपीडन कामुकता ((Sadism):-

परमीडन कामुकता की उत्पत्ति मार्किस डिसेड (1740-1814) के नाम से हुई जो अपनी कामुकता के शिकारों पर क्रूरता और निर्दयता का व्यवहार करके अपनी कामुक इच्छाओं की तृष्टि करता है। इस प्रकार की विकृति में अपने प्रेमपात्र की पीडा के मुख्य उदाहरण पुरूष की शिषन को काटना या उसे चोट पहुचाना व स्त्रियों के अन्तिरिक अंगो पर आधात पहुचाना होता है जिससे स्त्री व पुरूष को लैगिक सुख की प्राप्ति होती है।

11. स्वपीडन कामुकता ((Masochism):-

ऐसी लैगिक विचलन की स्थिति के अन्तर्गत एक स्त्री अपनी कामतृप्ति सम्भोग प्रक्रम में पुरूष के द्वारा घोर पीड़ा प्राप्त करती है पीडा संबंधो से उसे सन्तुष्टि प्राप्त नही होती है।

12. बालरति ((Pedophilia):-

इससे एक कामुक व्यक्ति अपनी कामतुष्टि के लिए अबोध बालक व बालिकाओं को ही बहला फुसलाकर अपना शिकार बनाता हैं।बालरति को समाज एक गम्भीर अपराध मानता है।

13. पशुगमन ((Bestiality):-

कुछ व्यक्ति अपने काम संबंधी तनाव की सन्तुष्टि के लिए पशुओं को काम साथी बना लेते है।

14. अगम्यगमन अथवा अजाचार ((Incest):-

जब कभी एक परिवार के अति निकट के सदस्यों में काम संबंध देखने में आता है तब ऐसे संबंध को व्यक्तिचार व अजाचार कहा जाता है। सार्वधिक प्रचलित व्याभिचार भाइयों और बाहनों के बीच होता है। ऐसा लैगिक विचलन सामजिक मार्यादा तथा व्यक्तिगत शिष्ठता की दृष्टि से, निषिद्व तथा वर्जित ही होता है।

लैंगिक विचलन के उपचार:-

कामशैव्य या नपुसंकता, वस्तु कामुकता और समलिंगी कामुकता का उपचार व्यवहार चिकित्सा द्वारा किया जाता है वस्तु कामुकता का उपचार काम वस्तु के प्रति अनुकूलित विरूचि स्थापित करके किया जा सकता है।

कामुक विचलनों का उपचार अधिकाश अन्य आसमान्य व्यवहारो के उपचार से मूलतः भिन्न नही होता है। दोनो मे ऐसी प्रविधियां अपनायी जाती जिनसे रोगी अपने अभिप्रेरणो में अन्तदृर्ष्टि प्राप्त कर सके तथा अपनी मूल अभिवृत्तियों को परिवार्तित कर सके। अधिक स्वीकार्य व्यवहार के स्वरूप को विकसिकत करे। अधिक गंभीर कामुक अपराधो जैसे परपीडन और बाल रति के रोगियों को कारावास मे भेजना आवश्यक होता है। कम गम्भीर अपराधों के लिए अस्पताल उपर्युक्त है।

सामूहिक चिकित्सा समूह सापेक्ष चिकित्सा तथा , मनोचिकित्सा द्वारा लैंगिंक विचलनों कें उपचार मे लाभकारी सिद्व हुई है।

5. मद्यव्यसिनता ((Alcoholism)

मद्यपान के कारण नैतिक दुर्बलता और इच्छा शक्ति की कमी समझा जाता था परन्तु आधुनिक मनौवैज्ञानिक दृष्टिकोण से इसे मनोविकृत्यात्मक समस्याएँ माना जाता है।

व्यक्ति अपने आन्तरिक ओर ब्राह्य असहनीय प्रतिवलों के प्रति मद्यपान का सेवन करके प्रतिक्रिया करता है। मद्यपान का सेवन कुछ समाजो तथा विशिष्ट वर्ग के व्यक्त्यिों के लिए एक साधारण सी बात है। इसका उपयोग व्यक्ति दुश्चिन्ता व कुष्ठा के कष्ट कारक तनावों से मुक्ति पाने के लिए करता है। जब व्यक्ति सामान्य रूप से जब तक मद्यपान करते रहते है तब तक उनकी शारीरिक व मानसिंक स्थिति भी सामान्य बनी रहती है। परन्तु जैसे ही उन्होने किसी कारण मद्यपान बन्द कर दिया, तब उनमें मन के उचाट रहने, सिरदर्द, चिड़चिड़पन व दामित दुश्चिन्ता तथा कुष्ठा के तनाव के उभरने के कारण मन स्थिति एक दम आकुल भारी व अवसादी रहने लगती है।

किसी मानसिक रोग का एक मात्र कारण मद्यसेवन ही नही होता परन्तु कुछ ऐसे विशेष लक्षण होते है जो मद्यपान के कारण ही उत्पन्न होते है। इन्हे ही मद्यव्यसनिक मनोविकृति कहते है। जब रक्त में ऐल्कोहल की मात्रा 0.1 प्रतिशत हो जाती है तो व्यक्ति को नशा हो जाता है व पेशीय समन्वय, उच्चारण और दृष्टि में ह्रास उत्पन्न होने लगता है। जब ऐल्कोहल की मात्रा 0.5 प्रतिशत हो जाती है तो समस्त तान्त्रिकीय सन्तुलन बिगड जाता है व्यक्ति बेहोश हो जाता है। जब यह मात्रा 0.55 प्रतिशत हो जाये तो घातक सिद्व हो सकती है।

कौलमैन (1976) के अनुसार मद्यपान 50 प्रतिशत हत्याओं, 40 प्रतिशत हमला, 35 प्रतिशत बलात्कार, और 30 प्रतिशत आत्महत्या के कारण होती है। लेविट के अनुसार मदिरापान करने वाले व्यक्ति की आयु सामान्य अवस्था की अपेक्षा 12 वर्ष कम हो जाती है।

मद्यपान के प्रकार:-

1. मनोविकारी मादकता ((Pathological Intoxication):-

रोगी में मनोविकारी मादकता कुछ मिनट से लेकर कभी कभी घण्टों तक बनी रहती है। यह एक तीव्र प्रतिक्रिया है। यह उन व्यक्त्यिों में घटित होती है जिनमें एल्कोहल के प्रति सहनशीलता बहुत कम होती है। उदा0 के लिए मिर्गी से पीडित व्यक्ति व वे व्यक्ति जिनका व्यक्तित्व अस्थिर रहता है। थकान और संवेगात्मक तनाव आदि कुछ ऐसी स्थितियाँ है जिनमें एक सामान्य व्यक्ति की ऐल्कोहल के प्रति सहनशीलता कम हो जाती है। ऐल्कोहल लेने से रोगी में विभ्रम उत्पन्न होने लगते है और वह दिशा भ्रमित होने लगता है।

2. सकम्प प्रलाप (नशे से ज्ञान भ्रान्ति) ((Delirium Tremens):-

यह स्थिति उन व्यक्यिों में उत्पन्न होती है जो लबे समय तक अधिक मद्यपान करते रहे हो और वह किसी कारण एक दम समाप्त कर देते है। इस विकार का सर्वप्रथम वर्णन टॉमस सूटन ने (1813) में किया इस स्थिति में व्यक्ति को नीद नही आती। उसमें व्याकुलता एवं भूख की कमी के लक्षण उत्पन्न हो जाते है। तेज बुखार तथा कब्ज की शिकायत, नाडी गति मे मन्दता आ जाती है। रोगी को अनेक प्रकार के भ्रम व भय सताते रहते है। कुछ स्थितियों में ऐसे व्यक्ति के होंठ, जीभ एवं हाथों मे कम्पन्न, हृदय की तीव्र गति, संसकी दुर्गन्ध प्रायः देखने में आता है।

3. तीव्र विभ्रमशीलता:-

इसका मुख्य लक्षण श्रवण विभ्रम है इसमें आरम्भ में रोगी को आवजें सुनाई देती है। जिनका संबंध उनके व्यक्तिगत जीवन से होता है। कभी कभी व्यक्ति इतना भयभीत हो जाता है कि आत्मरक्षा के लिए हथियार खरीदता है व पुलिस से सहायता मागता है। इस प्रकार के रोगी को मानसिक अस्पताल मे भरती करना आवश्यक है। इस स्थिति में मद्यव्यसनी अपने गहरें एवं आन्तरिक अपराधों व पापो के लिए आत्मपश्ताचाप की गहरी भावना से पीड़ित व प्रताड़ित होते देखा जाता है।

4. कोर्साकोफ मनस्ताप:-

इस रोग का वर्णन 1887 में रूसी मनो चिकित्सक कोर्साकोफ ने किया। इसका प्रमुख लक्षण स्मृति दोष है जिसमें व्यक्ति तात्कालिक घटनाओं को भूल जाता है स्मृति दोष के कारण घटनाओं के बीच साहचर्य स्थापित नही कर पाते। यह मनस्ताप प्रायः बूढे मद्यव्यसनियों में अधिक उत्पन्न होता है जो कई वर्षो से मद्यपान कर रहे होते है। इस मनस्ताप के उत्पन्न होने के कारण विटामिन बी की कमी तथा अन्य आहार है इसका संबन्ध आंगिक विकृति से नही है। रोगी के पूर्ण विश्राम की व्यवस्था करनी चाहिए। मद्यपान का पूर्ण निषेध तथा विटामिन बी से युक्त पौष्टिक भोजन देना अति आवश्यक होता है।

5. दीर्घकालिक मनोविकृति (Chronic Reactions):-

जो व्यक्ति अनेक वर्षो से मद्यपान करते है उन्हे धीरे धीरे शराब पीने की लत पड जाती है और वह इस विकृति के शिकार हो जाते है जो लोग कई वर्षो से शराब पीते चले आ रहे है उनका शरीर व मन दोनो का ह्रास होना आरम्भ हो जाता है। इस प्रकार के रोगियों में अनेक प्रकार के लक्षण प्रकट होने लगते है जैसे शरीर का कापंना, चेहरा चौडा हो जाना, शरीर में दर्द आदि। बौद्विक और नैतिक योग्यताएं धीरे-धीरे कम होने लगती है। स्मृति निर्णय और एकाग्रता की कमी हो जाती हैं।

मद्यपान के कारण:-

मद्यपान के अनेक कारण है जैविक कारण, मनौवैज्ञानिक कारण, सामाजिक संस्कृति कारण।

1 जैविक कारण:-

जब व्यक्ति लम्बे समय तक मद्यपान करता रहता है तब उसका शरीर पूर्ण रूप से मदिरा पर आश्रित हो जाता है। अत्यधिक समय से मद्यपान करते रहने के बाद जब तक व्यक्ति मद्यपान करना बन्द करता है तो उसमें प्रत्यागमन सवधी लक्षण उत्पन्न हो जाते है। जैसे दुर्बलता, पसीना आना, उल्टी होना, विभ्रम, ज्वर आदि। प्रत्यागमन के इन लक्षणों का कारण यह होता है कि रोगी कोशिया सम्बन्धी चयापचय में एल्कोहल की उपस्थिति का अभ्यस्त हो जाता है। इसे शरीरक्रियात्मक आभ्रितत ((Physiological Deperiderice) का आरम्भ कहा जाताहै।

2. मनोवैज्ञानिक कारण:-

मद्यपान पर व्यक्ति केवल दैहिक रूप से ही आश्रित नही होता है बल्कि यह मद्यपान पर मनौवैज्ञानिक रूप से भी आश्रित होता है मद्यपान का संबंध समायोजन से है अत्यधिक मद्यपान से सम्पर्क से जीवन का समयोजन क्षतिग्रस्त हो जाता है। मद्यपान करने वाले व्यक्ति संवेगात्मक रूप से अपरिपक्व होते है ये व्यक्ति चाहते है कि लोग उनके व्यक्तिव की प्रशंसा करे। व्यक्ति के अत्यधिक मद्यपान करने का एक महत्वपूर्ण कारण उसका दुर्बल व्यक्तित्व होता है मद्यपान करने की वजह से व्यक्ति अपना कार्य स्वंय नही करना चाहता है। और दूसरो पर आश्रित रहता है। और जब दूसरे व्यक्ति उसकी किसी प्रकार की कोई सहायता नही करते हैं तब वह मद्यपान का सेवन करने लगता है।

मद्यपान करने वाले व्यक्तियों की व्यक्तित्व विशेषताएँ सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा भिन्न होती है। मद्यपान करने वाले व्यक्ति में प्रतिबल के प्रति सहनशीलता बहुत कम होती है। ऐसे व्यक्ति तनाव व प्रतिबल को सहन नही कर पाते है।

एक अध्ययन के अनुसार मद्यपान करने वाले व्यक्ति की चिन्ता मद्यपान के द्वारा कम होती है। जब एक व्यक्ति का जीवन कठोर व प्रतिबलक स्थितियों से निराश व हताश हो जाता है तब उसमें जीवित रहने व जीवन के कष्टों का भार उठाने की इच्छा नही रह जाती है इसलिए व्यक्ति मद्यपान की और अग्रसित हो जाता है। अत्यधिक मद्यपान से चेतन रूप से अपनी मृत्यु को ही निमन्त्रण देना है इस आधार पर कह सकते है। । (A man is sick not because he drinks but he drinks because he is sick)एक व्यक्ति इस कारण रोगी नही है कि अत्यधिक मदिरा पीता है बल्कि इस कारण ही मदिरा पीता है क्योकि वह रोगी है।

4. सामाजिक सांस्कृतिक कारक:-

सामाजिक सांस्कृतिक कारक भी मद्यपान को बढावा देते है यदि किसी समाज में मद्यपान को बुरा नही समझा जाता है वहा व्यक्ति अत्यधिक मद्यपान के लिए अग्रसर हो जाते है। जब व्यक्ति अपने परिवार में बढे बुढो की मध्यपान का सेवन करते हुए देखते है तो वह इसका सेवन भी करने लगते है।

जब व्यक्ति समाज में रहकर किसी कुसंगति में फस जाता है। तो भी मद्यपान करने लगता है। क्याकि जैसी संगत होती है व्यक्ति वैसा ही व्यवहार करता है।

जब व्यक्ति क पारिवारिक वातारण दोषपूर्ण होता है और वह इससे समायोजन नही कर पात है व उसके पिता व भाई किसी विकृति से ग्रसित होते है तब वह मद्यपान के सेवन को अपनाता है। बेल्स (Bales 1946) के अनुसार किसी समाज में मद्यव्यसनिता की लोकप्रियता को तीन संस्कृति कारण जिम्मेदार होते है।

1. संस्कृति द्वारा उत्पन्न किये गये आन्तरिक तनाव और प्रतिबल की मात्रा।
2. संस्कृति द्वारा पोषित मद्यपान के प्रति अभिवृत्तियां।
3. संस्कृति द्वारा असन्तुष्टि और दुश्चिन्ता का सामना करने के अन्य साधनों की उपलब्धता।

संस्कृति अभिवृत्तियों का मद्यपान पर सीधा प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए इस्लामी सभ्यता मे मद्यपान को बुरा माना जाता है। इसी तरह से यहूदियों में इसका उपयोग केवल धार्मिक कार्यक्रमों में किया जाता है। दोनो ही संस्कृतियों में मद्यपान की मात्रा कम पाया जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि सांस्कृतिक अभिवृत्तियाँ मद्यपान में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है।

उपचार:-

मद्यपान के रोगी के उपचार के लिए आवश्यक है कि उसे मदिरा से पूर्णरूप् से दूर रखा जाए। मद्यपान को दूर करने के लिए औषधियों द्वारा उपचार करना भी आवश्यक होता है। इस औषधियों के अन्तर्गत क्लोरडियाजम आक्साइड, क्लोर प्रोमेजीन जैसी औषधियों से मद्यपान के उपचार मे सहायता मिलती है। इन औषधियों की सहायता से व्यक्ति के तनावों और दुश्चिन्ता को कम किया जाता है। रोगी अपने आहारों को आसानी से पचा लेता है और उसे आराम की नींद आने लगती है।

फ्रैक्स (1966) का यह कहना है कि यदि रोगी के मदिरा में कुछ ऐसी औषधि सम्मिलित कर दिया जाये जिससे उसको इसके पीने से पहले उसमें से बुरी गन्ध आने लगे अथवा उसे पलटी आदि की शिकायत होने लगे इससे रोगी को मद्यपान छोड़ने मे सहायता मिलती है इसके संबंध में ऐमेटाइन हाइड्रोक्लोरइड व डिसूल फैरीन औषधि प्रमुख है। मद्यपान के उपचार के लिए सामूहिक उपचार तथा समाज सापेक्ष चिकित्सा सहायता मिलती है। सामूहिक चिकित्सा और व्यक्तिगत चिकित्सा के द्वारा रोगी में अपने व्यवहार के प्रति अन्तदृष्टि उत्पन्न की जा सकती है। व्यवहार उपचार पद्वति के द्वारा भी 50 से 80 प्रतिशत रोगियों की स्थिति में लाभ होते देखा गया है।
उपचार की नयी विधियों के साथ साथ औषध मानसिक और सामाजिक प्रविधियों और मद्यव्यसनिक अनामिक जैसी संस्थाओं द्वारा 60 से 80 प्रतिशत मद्यव्यसनी पूर्णरूप से सदैव के लिए मद्यपान छोड़ देते है।

9.5 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. व्यक्तित्व विकार कितने प्रकार के होते है ?
2. समाज विरोधी व्यक्ति से क्या तात्पर्य है ?समाज विरोधी व्यक्तित्व के दो लक्षणों को स्पष्ट कीजिए ?
3. समाज विरोधी व्यक्तित्व के उपचार में कौन सी विधियाँ लाभप्रद है ?
4. बाल अपराधियों की सही आयु सीमा क्या है ?
5. बाल अपराधियों के उपचार की कौन सी विधि अपनाई गई ?
6. लैगिक विचलन के कारण कौन कौन से है ?
7. लैगिंक विचलन के पाँच प्रकारो का नाम उल्लेखित कीजिए ?

9.6 सारांश

किसी भी व्यक्ति का अपने वातावरण के साथ समायोजन के लिए आवश्यक है कि उस व्यक्ति का व्यवहार वातावरण में उपस्थित सभी व्यक्तियों के साथ अच्छा होना चाहिए, परन्तु यदि व्यक्ति का व्यक्तित्व विघटित होता है तो उसका व्यवहार अच्छा नही होता है। व्यक्तित्व के विघटित होने से उसके व्यक्तित्व में विकार उत्पन्न होने

लगते है। इन विकारों के उत्पन्न होने से व्यक्ति का व्यवहार असमायोजित होने लगती है जिससे उनके शारीरिक एवं मानसिंक स्वास्थ्य पर समाज विरोधी प्रतिक्रियाओं का प्रभाव पड़ता है बहुत अधिक महत्व दिया गया है समाज विरोधी प्रतिक्रियाओं के अर्न्तगत व्यक्ति समाज के विरूद्व कार्य करने लगते है जिससे समाज को हानि पहुचँती है। इससे व्यक्ति कभी कभी अपराध करना भी आरम्भ कर देता है मदिरापान का भी सेवन करने लग जाता है इस प्रकार के कार्यो को करने से व्यक्ति के व्यक्तित्व में अनेको प्रकार के विकार उत्पन्न होने लगते है। व्यक्तित्व के प्रमुख पाँच प्रकार होते है। समाज विरोधी मनोविकृत प्रतिक्रियाए, बालापचार, प्रौढ अपराध एवं नव अपराधी, कामुक विचलन, मद्य व्यसनिता आदि।

9.7 शब्दावली

1. लैंगिक विपर्यास ((Sexual Perversion)):-

जब काम अन्तर्नोद की सन्तुष्टि सामान्यतः विरोधी लिंग के व्यक्ति के साथ मैथुन द्वारा न होकर किसी अन्य व्यवहार व साधन से होते देखा जाता है तब व्यक्ति के ऐसे लैगिक व्यवहार को लैगिक विचलन अथवा विपर्यास कहा जाताहै।

2. कामशैल्य (Frigidity):-

जब एक युवास्त्री अपने पुरूष साथी के साथ काम सम्बन्धी में प्रायः बारम्बार असन्तुष्टि तथा अतृप्ति अथवा कष्ट कारक तनाव का ही अनुभव करने लगे तब ऐसे व्यवहार को कामशैल्य कहा जाताहैं।

3. कुसमायोजित व्यवहार:-

- किसी भी व्यक्ति द्वारा किया गया वह व्यवहार जो अनैतिक हो, समाज के विरूद्व हो व उसमें समायोजन का अभाव हो कुसमायोजित व्यवहार कहलाता है ।

9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

a) व्यक्तित्व के विकार पांच प्रकार के होते है।

b) समाज विरोधी व्यक्तित्व के व्यक्ति द्वारा समाज के नियमों का उल्लंधन किया जाता वह समाज को स्वीकार्य नही होता है। समाजविरोधी लक्षण निम्न है।

1. सुखवाद एवं अवास्तविक लक्ष्य।
2. दोषपूर्ण सामाजिक संबंध।

c) समाज विरोधी व्यक्ति के उपचार में वैयक्तिक चिकित्सा, सामूहिक चिकित्सा, व्यवहार चिकित्सा, औषध चिकित्सा का उपयोग किया जाता है।

d) बाल अपराधियों की आयु सीमा 17 वर्ष तक है।

e) बाल अपराधियो के उपचार में मनोचिकित्सा व समाज सापेक्ष चिकित्सा अत्यधिक लाभकारी सिद्व होती है।

f) लैंगिक विचलन के चार प्रमुख कारण है।

1. अधिगम और पुर्नवलन।
2. त्रुटिपूर्ण सूचना।
3. कमुक कष्ठा और प्रतिबल।
4. मानसिक विकार।

g) लैंगिक विचलन के पांच प्रकार निम्नलिखित है।

1. नपुसंकता ।
2. हस्तमैथून।
3. समलिंगी कामुकता।
4. परपीडन कामुकता।
5. स्वपीडन कामुकता

9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

a. Coleman, J.C. (1976) Abnormal Psychology & Modern Life, Taraporevala

b. Davidson & Neale (1974) Abnormal Psychology, John Wiley

c. Kapil, H.K.(2001) अपसामान्य मनोविज्ञान, भार्गव प्रकाशन, आगरा

d. मखीजा और मरखीजा (2001) पसामान्य मनोविज्ञान, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन आगरा।

e. सिंह ए.के. (2009) आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, बनारसी दास, दिल्ली

9.10 निबन्धात्मक प्रश्न

a. व्यक्तित्व विकार के स्वरूप का वर्णन कीजिए तथा उसके विभिन्न प्रकारो की विवेचना कीजिए |

b. समाज विरोधी मनोविकृत प्रतिक्रियाओं के कारणो व लक्षणों को स्पष्ट कीजिए।

c. बाल अपराध से क्या तात्पर्य है ? बाल अपराध के कारणो पर प्रकाश डालिए।

d. लैंगिक विचलन क्या है इनके कारणो को स्पष्ट कीजिए |

e. लैंगिक विचलन के प्रकारो की व्याख्या कीजिए व उपचार में कौन कौन सी विधि प्रयुक्त की जाती है सविस्तार उल्लेख कीजिए|

इकाई **10.** संज्ञानात्मक विकृति (स्मृतिलोप, उन्माद एवं मनोभ्रंश) के स्वरूप; अल्ज़ाइमर के प्रकार, मनोभ्रंश, अन्य मेडिकल अवस्थाओं से उत्पन्न मनोभ्रंश

(Nature of Cognitive Disorder (Amnesia, Delirium and Dementia); Dementia of the Alzheimer's Type and Other Medical Conditions Causes of Dementia)

इकाई संरचना

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 खंड एक

10.3.1 संज्ञानात्मक विकार की प्रकृति।

10.3.2 संज्ञानात्मक विकारों के प्रकार जैसे-डिमेंशिया, डिलीरियम, एम्नीशिया, डिमेंशिया अल्जाइमर टाइप (DAT)।

10.4 खंड दो

10.4.1 संज्ञानात्मक विकारों का तुलनात्मक विवरण।

10.4.2 अन्य चिकित्सीय स्थितियों / कारणों से होने वाला डिमेंशिया।

10.5 सारांश

10.6 शब्दावली

10.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

10.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

10.9 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

संज्ञानात्मक विकारों से संबन्धित यह दसवीं इकाई है। इस इकाई में आपको संज्ञानात्मक विकारों की प्रकृति, उनके प्रकार आदि के बारे में बताया गया है।

खंड एक में संज्ञानात्मक विकारों के अंतर्गत डिलीरियम, डिमेंशिया, डिमेंशिया अल्जाइमर टाइप (DAT), और एम्नीशिया विकारों की प्रकृति, निदान, प्रसार, कारणों एवं चिकित्सीय उपचार का विस्तृत वर्णन इस इकाई में किया गया है।

इस इकाई के खंड दो में संज्ञानात्मक विकारों की तुलनात्मक प्रकृति का वर्णन और अन्य चिकित्सीय स्थितियों से होने वाले डिमेंशिया का विस्तृत वर्णन आपको इस इकाई में बताया गया है।

10.2 उददेश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

1. संज्ञानात्मक विकारों के स्वरूप को बता सकेंगें।
2. संज्ञानात्मक विकारों के विभिन्न प्रकारों को सूचीबद्ध कर सकेंगें।
3. संज्ञानात्मक विकारों की नैदानिक प्रकृति, कारणों, प्रसार, तथा उपचार एवं प्रबंधन को बता सकेंगें।
4. विभिन्न संज्ञानात्मक विकारों का तुलनात्मक विश्लेषण एवं उनमें विभेदीकरण कर सकेंगें।
5. अन्य चिकित्सीय स्थितियों से होने वाले डिमेंशिया के स्वरूप व प्रकारों को जान सकेंगें।

10.3 खंड एक

10.3.1 संज्ञानात्मक विकारों की प्रकृति (Nature of Cognitive Disorders)

संज्ञानात्मक विकार मुख्य रूप से सीखना, स्मृति, चिंतन, तर्कना क्षमता, प्रत्यक्षण समस्या समाधान (Problem Solving), और भाषा आदि मानसिक प्रक्रियाओं और संज्ञानात्मक क्षमताओं को प्रभावित करते हैं। इसमें, डिमेंशिया, अल्जाइमर रोग, एम्नीशिया और डिलीरियम आदि रोग आते हैं। चिंता विकार, मूड डिसऑर्डर और साइकोटिक विकार आदि भी स्मृति एवं संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं और क्षमताओं को प्रभावित करते हैं, परंतु इन्हें संज्ञानात्मक विकार की श्रेणी में इसलिए नहीं रखा गया है, क्योंकि इन विकारों में संज्ञानात्मक हास इनका मुख्य लक्षण नहीं है। संज्ञानात्मक विकारों से ग्रसित व्यक्ति सूचनाओं को ठीक प्रकार से संसाधित (Processed) नहीं कर पाता है। इन व्यक्तिओं को समस्या समाधान, सूचनाओं को अर्जित करने, अनुक्रिया करने की समस्याओं के चलते दैनिक जीवन में बहुत सी कठिनाईओं का सामना करना पड़ता है। DSM III (Diagnostic and Statistical manual of Mental Disorders) में डिलीरियम, डिमेंशिया और एमेनिस्टक डिसऑर्डर को "आरगेनिक मेंटल डिसऑर्डर" (Organic Mental Disorder) की श्रेणी में रखा गया था। परंतु DSM–IV में इस शब्दावली (Nomenclature) को हटा दिया गया। DSM–IV-TR (DSM का नवीन संस्करण) में इन विकारों को एक अन्य वर्ग ''डिलीरियम, डिमेंशिया और एमेनिस्टक डिसऑर्डर एंड अदर कागनेटिव डिसऑर्डर'' में रखा गया है। इन तीनों स्थितियों (डिलीरियम, डिमेंशिया और एमेनिस्टक डिसऑर्डर) का जिनमें स्मृति की गड़बड़ी शामिल है, का एक सामान्य वृद्धावस्था से अंतर किया जाना अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है। जैसे-जैसे व्यक्ति वृद्ध होता है, संज्ञानात्मक क्षमताएं जैसे स्मृति और जटिल (Complex) समस्या समाधान कम प्रभावशाली होने लगती हैं। मस्तिष्क की बहुत सी रोगात्मक स्थितियां वृद्धावस्था में आम हो जाती हैं। जैसे डिमेंशिया की सम्भावना 85 वर्ष के ऊपर अधिक हो जाती है (APA, 2000)। परंतु ये संज्ञानात्मक विकारों किस प्रकार अलग है, इस इकाई में इसका विस्तृत वर्णन किया गया है। DSM-IV-TR के बहु-अक्षीय (Multiaxial) वर्गीकरण में डिमेंशिया, डिलीरियम और एमेनिस्टक डिसऑर्डर को अक्ष एक में रखा गया है।

10.3.1a डिलीरियम (Delirium)

डिलीरियम को बरसों पहले चिहिन्त कर लिया गया था। हिप्पोक्रेट्स ने 500 BC में फ्रिनीटिस (Phrenitis) एक मानसिक विकार का वर्णन किया था, जो विषाक्ता, सिर के आघात, और उच्च ज्वर से होता था। उन्नीसवीं शताब्दी तक इसके अन्य कारणों की पहचान की गयी। DSM-I में इसे "एक्यूट ब्रेन सिंड्रोम" (Acute Brain Syndrome) नाम दिया गया। इसे अन्य नामों जैसे "एक्यूट कनफ़्युजनल स्टेट" (Acute Confusional State) "टाक्सिक साइकोसिस" (Toxic Psychosis) और "मेटाबोलिक एनसिफ़्लोंपैथी" (Metabolic encephalopathy) आदि नामों से भी से जाना जाता था (APA,1980)।

वर्तमान में डिलीरियम को परिभाषित करते हुए कहा गया है, कि "यह चेतना अवस्था या चेतना में एक परिवर्तन है, जिसमें आस-पास की दुनिया की विस्मृति, स्मृति (विशेषकर नवीन स्मृति) में गड़बड़ी, भ्रम (Hallucination) व विभ्रम (Delusion) और अपने वातावरण के प्रति ध्यान में कमी होती है।" यह बहुत तेजी से होता है, और दिन भर में इसकी गंभीरता और अवधि के दृष्टिकोण से बदलाव होता रहता है।

यह एक जैविक या कायिक मानसिक विकार है। इसकी शुरुआत तीव्र होती है। इसमें विशेषतया: चेतना, ध्यान(Attention), धारण (retention), सोच, स्मृति, भावनाओं, तथा नींद – जाग्रत चक्र में गड़बड़ी होती है। यह क्षणिक अवस्था है, जो कि लगभग चार सप्ताह में पूरी तरह ठीक हो जाती है। यह एक अस्थाई स्थिति होती है। यह प्रसंगों (Episodes) के रूप में होता है, और यह स्थिति अस्थाई एवं बार-बार घटित होती है। डिलीरियम में स्थितिजन्य जागरूकता (Situational awareness) एवं नवीन सूचना का संसाधन कठिन होता है। डिलीरियम एक मानसिक भ्रम की स्थिति है, जो कि मस्तिष्क उपापचय में गड़बड़ी के कारण उत्पन्न होती है। यह स्थिति अपेक्षाकृत तेजी से शुरू हो कर उच्च मानसिक प्रक्रियाओं में व्यवधान डालती है। यह तीव्र भ्रम की स्थिति सामान्य चेतना और अचेतना या बेहोशी की नींद (Coma) के बीच की स्थिति है। इसमें चेतना या जागरूकता के स्तर तथा संज्ञानात्मक कार्यों में बदलाव होता है।

प्रसार (Prevalence)

डिलीरियम किसी भी एक समय में एक प्रतिशत जनसंख्या में होता है। अस्पताल में भर्ती 10-30 प्रतिशत रोगियों को यह प्रभावित करता है। अस्पताल में भर्ती कैंसर के रोगियों के एक चौथाई और अस्पताल में भर्ती एड्स रोगियों में डिलीरियम का विकास हो जाता है। डिलीरियम किसी भी आयु में हो सकता है। तथा बच्चों में भी इसका जोखिम होता है। बुजुर्ग व्यक्तिओं में इसका जोखिम ज्यादा होता है।

डिलीरियम की नैदानिक विशेषतायें

यह एक संज्ञानात्मक मानसिक विकार है। जिसमें अपेक्षाकृत सम्पूर्ण रूप से मानसिक क्षमता क्षीण हो जाती है। यह क्षीणता ध्यान में कमी (अपर्याप्त ध्यान, एवं एकाग्रता में कमी), उत्तेजना में कमी, चेतना में कमी, स्मृति में कमी (नवीन घटनाओं को याद व स्मरण में परेशानी), अनुकूलन में कमी (समय, स्थान व व्यक्ति के बारे में भटकाव), प्रत्यक्षण में कमी (दृष्टि सम्बन्धी भ्रम) और बात-चीत, बोलचाल या वाक शक्ति एवं भाषा आदि में कमी। इसके अतिरिक्त नींद एवं जागने के चक्र (Sleep-Wakefulness Cycle) में परिवर्तन। नींद व जाग्रत चक्र में गड़बड़ी

जो कि अत्यधिक नींद (Hypersomnia) से लेकर अनिद्रा (Insomnia) की स्थिति भी हो सकती है। तथा कभी-कभी कम जाग्रत अवस्था जिसे "बादल आच्छादित चेतना" (Clouded Consciousness) कहा जाता है, भी हावी होने लगती है। इसका आरंभ शीघ्र होता है। आमतौर पर यह स्थिति बदली (Reversible) जा सकती है। यह किसी भी उम्र के व्यक्तियों में हो सकता है, परंतु अधिक उम्र के लोगों में इसका जोखिम ज्यादा रहता है। विभ्रम (Hallucination) और व्यामोह (Delusions) इसका एक सामान्य लक्षण है। इसके अतिरिक्त इसमें असामान्य मनोगतिकी (Psychomotor) गतिविधियां होने लगती हैं। परिभाषा के अनुसार इसके पीछे शारीरिक कारण जैसे चिकित्सीय स्थिति, दवा या कोई विषाक्ता होती है। डिलीरियम अपेक्षाकृत संक्षिप्त होता है, परन्तु इसमें सम्पूर्ण संज्ञानात्मक हानि होती है। डिलीरियम के व्यक्ति को समय व स्थान का आभास नहीं रहता है, दिन व रात में भ्रांति होती है। इनका ध्यान जल्दी-जल्दी विस्थापित होता है, जिससे इनसे वार्तालाप संभव नहीं हो पाता है। चलन गतिविधि भी अनिश्चित या घटने बढ़ने के साथ सक्रियता व सुस्ती के बीच स्थानंतरित तथा डोलने लगती है (APA,2000)।

संज्ञानात्मक गड़बड़ी के साथ व्यवहार में बदलाव जैसे-आक्रामकता, गुस्सा और विषाद आदि होता है। दृष्टि विभ्रम मुख्यतया जानवरों व व्यक्तियों की अधिकता होती है। भाषागत विकृतियां व गड़बड़ी होती है, जैसे उच्चारण की कठिनाई, चीजों के नाम, भाषण अवरोधों व अभिव्यक्ति की कठिनाई, वस्तुओं के नाम लेने में अक्षमता, बेतुकी शाब्दिक अभिव्यक्ति (Verbalization), पुनरावृति (Repetition) और शब्दों को समझने की कठिनाई आदि शामिल हैं। लेखन क्षमता भी प्रभावित होती है।

डिलीरियम आमतौर पर तीव्र होता है, तथा यह कुछ घंटों या दिनों में विकसित हो कर सप्ताह या कभी-कभी महीने के भीतर खत्म हो जाता है। अगर इसके कारणों की पहचान नहीं हो पाती है, तो व्यक्ति बहोशी के बाद कोमा में चला जाता है।

- पल्टनीय (Reversible) अर्थात इस स्थिति को बदला जा सकता है।
- कुछ मामलों में मनोभ्रंश (डिमेंशिया) के लिए प्रगति हो सकती है।
- 10-20 % मामलों में कोमा और मृत्यु हो जाती है।

अब आप देखेंगे कि कौन-कौन से कारण हैं जो डिलीरियम के लिए उत्तरदाई हैं। डिलीरियम के कारण निम्न तालिका में दर्शाए गए हैं।

डिलीरियम के कारण

1	अन्तः कपालीय कारण (Intracranial Causes) (मस्तिष्क से संबन्धित) • मिर्गी (Epilepsy) • मस्तिष्क आघात (Brain Trauma) • मेनिनजाईटिस या मस्तिष्क ज्वर (Meningitis)

	• एनसेफेलाइटिस या मस्तिष्क की सूजन (Encephalitis) • वासकुलर डिसऑर्डर जैसे दौरा।
2	दवाएं एवं टॉक्सिन (Drugs and toxins) • एल्कोहल (Alcohol) • एंटीकनवल्जेंट (Anticonvulsants) • एंटीहाइपरटेनसिव (Antihypertensive) • एंटीपरकिन्सन दवाएं (Anti-Parkinson drugs) • एंटीसाइकोटिक (Antipsychotic drugs)
3	अन्तःस्रावी ग्रंथियों की असामान्यता या एन्डोक्रेनियल डिसफन्क्सन (Endocrinal Dysfunction) एड्रीनल,पैराथाइराइड,पिटुयुटरी और थाइराइड अन्तःस्रावी ग्रंथियों का अति व निम्न स्राव।
4	उपापचयी कारण या मेटाबोलिक कारण (Metabolic Causes)
5	पोषक तत्वों की कमी या न्यूट्रिशनल डेफिसियन्सी (Nutritional Deficiency) • थायमीन की कमी (Thiamine deficiency) • निकोटिन एसिड की कमी (Nicotinic acid deficiency) • विटामिन बी 12 की कमी (B12 Deficiency)
6	संक्रमण (Infection)

अभ्यास प्रश्न

1. डिलीरियम के लक्षणों को सूचीबद्ध कीजिए।
2. डिलीरियम विकार के कारणों का वर्णन कीजिए।

10.3.1b मनोभ्रंश या डिमेंशिया (Dementia)

मनोभ्रंश बहुत से लक्षणों हेतु एक शब्द है। इन लक्षणों के अंतर्गत व्यक्ति की स्मृति क्षमता तथा तर्कणा कौशलों व क्षमता में हास होना है। अधिक गंभीर अवस्था में व्यक्ति दैनिक क्रियाकलापों को करने में भी असमर्थ हो जाता है। मनोभ्रंश के 60-80% मामलों में अल्जाइमर रोग इसका कारण होता है। डिमेंशिया आमतौर पर अपरिवर्तनीय एवं

प्रगतिशील बीमारी है। मनोभ्रंश उच्च मानसिक कार्यों जैसे स्मृति, चिंतन, भाषा, सीखना, निर्णयक्मकता में एक प्रकार की क्षति है। मनोभ्रंश का उपचार संभव नहीं है। मनोभ्रंश के लक्षण जीवन के हर कार्यो में व्यवधान डालते हैं। आरंभ में मनोभ्रंश के लक्षणों में स्मृति हास से अधिक अन्य लक्षण प्रकट हो सकते हैं। जैसे-व्यवहार में परिवर्तन, संतुलन बनाने में मुश्किल आना, बोलने में परेशानी आदि। मनोभ्रंश के लक्षण अनेक रोगों के कारण भी हो सकते हैं जैसे- अल्जाइमर रोग, लेवी बॉडीज रोग, वासकुलर डिमेंशिया, एवं पार्कीन्सन रोग आदि।

डिमेंशिया अनेक रोगों के कारण भी हो सकता है। अधिकांश रोग ऐसे हैं, जिनमें मस्तिष्क की हानि ठीक नहीं की जा सकती। मस्तिष्क के किस हिस्से में हानि हुई है, उसके अनुसार ही लक्षण प्रकट होते हैं। भारत में अधिकांशतया: आयु बढ़ने को इन सब लक्षणों का कारण माना जाता है। अक्सर बुढ़ापे के स्वाभाविक लक्षण समझ कर डिमेंशिया के लक्षणों को नजरंदाज कर दिया जाता है और समय से उपचार संभव नहीं हो पाता है। विश्व भर में डिमेंशिया की पहचान और इसके कारणों की पहचान पिछले कुछ दशक में ज्यादा बेहतर हुई है।

प्रसार

मुख्यतया यह वृद्धावस्था से संबन्धित समस्या है। इसका प्रसार 65 वर्ष से ऊपर के व्यक्तियों में 5% तथा 80 वर्ष से ऊपर के व्यक्तियों में 20% है। 60 वर्ष से कम उम्र के व्यक्तियों में यह प्रायः दृष्टिगत नहीं होता है।

लक्षण

डिमेंशिया में लघु कालीन एवं दीर्घ कालीन स्मृति में परेशानी,अमूर्त चिंतन जैसे-सम्प्रत्ययों को समझने व बताने में कठिनाई, निर्णय क्षमता (Judgement) में हास, उच्च कॉर्टैक्स कार्यों जैसे भाषा, वस्तुओं को पहचानने में कठिनाई में होती है। साथ ही सामाजिक कार्यत्मक्ता बुरी तरह बाधित होती है। डिमेंशिया के लक्षण विभिन्न प्रकार के हैं। निम्न मानसिक कार्य मुख्य रूप से प्रभावित होते हैं।

- नवीन बातों को याद रखने में कठिनाई।
- तर्कण क्षमता व निर्णय क्षमता में कमी।
- लोगों से मेलजोल न कर पाना।
- दैनिक सामान्य कार्यों को करने में कठिनाई।
- संवेगों एवं भावनाओं को अभिव्यक्त करने में कठिनाई।
- व्यक्तित्व में परिवर्तन।
- हाल की घटनाओं को भूल जाना।
- बातचीत के समय सही शब्द याद न आना।
- बैंक की स्टेटमेंट न समझ पाना।
- भीड़ में घबरा जाना।
- मोबाइल या किसी डिवाइस के बटन न समझ पाना या उन्हें संचालित करने में परेशानी होना ।
- जरूरी निर्णय न ले पाना।

- लोगों और साधारण वस्तुओं को न पहचान पाना।
- कुछ व्यक्ति अधिक उतेजित रहने लगते हैं।
- कुछ व्यक्ति अन्य व्यक्तियों से मिलना बंद कर देते हैं।

मुख्य कारण

65 % अल्जाइमर रोग के कारण।

15 % बहु रोधगलितांश डिमेंशिया द्वारा (Multi-infract Dementia)

अन्य दूसरे कारणों द्वारा।

कुछ चिकित्सा योग्य कारण

अन्य बहुत सी स्थितियों से डिमेंशिया हो सकता है। इनमें से बहुत सी स्थितियां प्रतिवर्ती (reversible) होती हैं अर्थात जिन्हें बदला या ठीक किया जा सकता है या जिनका उपचार संभव है जैसे-थाइराइड तथा विटामिन की कमी आदि द्वारा होने वाला डिमेंशिया। यदि निम्न कारणों से डिमेंशिया होता है, तब इन स्थितियों का इलाज़ संभव है-

- दवाईयां (Medicines)
- सांवेगिक विषाद (Emotional Depression)
- विटामिन बी 12 न्यूनता (Vitamin B12 Deficiency)
- मद्पानता (Chronic Alcoholism)
- टुयूमर और मस्तिष्क संक्रमण (Certain tumors or infections of brain)
- मस्तिष्क में रक्त के थक्के के कारण दबाव (Blood clots pressing the brain)
- उपापचय असंतुलन थाइराइड, व्रक्क, और यक्रत (Metabolic imbalances thyroid, kidney or liver)

मनोभ्रंश के कारण (Causes of Dementia)

1।	न्यूरो-अपक्षयी विकार (Neuro-Degenerative disorders)# • अल्जाइमर रोग (Alzheimer's Disease)* • पार्किंसन रोग (Parkinson's Disease)*

	• पिक्स रोग (Pick's Disease)* • हनटिंगटन'स रोग (Huntington's disease)* • विल्सन रोग (Wilson's Disease)* • लेवी बॉडी विकार (Lewy Body Disease)*
2.	संवहन डिमेंशिया (Vascular Dementias)* • बहु रोधगलितांश डिमेंशिया (Multi-Infract Dementia)*
3.	संक्रमण (Infections) • एचआईवी रोग द्वारा डिमेंशिया (HIV Disease) • क्रूजफेल्ट जेकब विकार (Creutzfeldt-Jacob disease)* • मस्तिष्क की सूजन (Encephalitis) • दीर्घ कालिक मस्तिष्क ज्वर (Chronic meningitis)
4.	दवाएँ और विषैले पदार्थ (Drugs and Toxins) • अल्कोहल (Alcohol) • पीड़ाहारी औषधि (Analgesic) • ब्रोमाइड नशा (Bromide Intoxication) • बेंज़ोडायजीपीनस (Benzodiazepines)# • कार्बन मोनोऑक्साइड (Carbon Monoxide) • साइकोटिक दवाएँ (Psychotropic Drugs)#
5.	अन्त:कपालीय कारण (Intracranial Causes) • मस्तिष्क टुयूमर (Brian Tumor) • मस्तिष्क का फोड़ा (Brain abscess)

6.	नॉर्मल प्रेसर हाइड्रोसिफेलस (Normal Pressure Hydrocephalus)*
7.	पोषकत्व सम्बन्धी विकार (Nutritional Disorders) • वर्निक-करसोकोफ़्फ़ संलक्षण (Wernicke-Korsakoff Syndrome)* • विटामिन बी 12 की कमी (B12 Deficiency)
8.	उपापचययी एवं अंत:स्रावी विकार (Metabolic and Endocrinal Disorders) • डाइलेसिस डिमेंशिया (Dialysis Dementia) • विलसन बीमारी (Wilson's Disease)* • थाइराइड एवं पैराथाइराइड ग्रंथि की असामान्यता (Thyroid and Parathyroid Dysfunction)

*चिहिन्त शब्दों का अर्थ व विस्तृत विवरण इकाई के शीर्षक "अन्य चिकित्सीय स्थितियों के कारण होने वाला डिमेंशिया" के अंतर्गत दिया गया है।

चिहिन्त शब्दों का अर्थ इकाई के अंत में शब्दावली के अंतर्गत वर्णित है।

निदान

डिलीरियम, डिमेंशिया आदि विभिन्न विकारों की पहचान और इनमें विभेदीकरण के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षणों, मेंटल स्टेटस परीक्षण, न्यूरोमनोवैज्ञानिक परीक्षणों CT स्कैन, MRI, PET स्कैन, आदि उपयोग में लाए जाते हैं।

प्रबंधन/उपचार

इसका कोई प्रभावी उपचार संभव नहीं है यह एक परिवर्ती स्थिति नहीं है। मात्र 10% डिमेंशिया का उपचार ही संभव है ज्यादातर मामलों की गंभीरता बढ़ती जाती है। इसके लिए चिकित्सीय उपचार(औषधी), रोगी के लिए सुरक्षात्मक उपाय (Safety measures) और सहायक सेवाएं (Support Services), संगठित वातावरण (Structured environment) आदि से कुछ बदलाव संभव हो पाता है। प्रबंधन हेतु वातावरण संबंधी बदलाव भी आवश्यक होते हैं। देख भाल करने वालों को भी सहायता व फैमिली एजुकेशन प्रदान की जाती है।

अभ्यास प्रश्न

1. मनोभ्रंश (Dementia) क्या है?
2. मनोभ्रंश डिलीरियम से किस प्रकार भिन्न है?
3. डिमेंशिया के पाँच कारणों को सूचीबद्ध कीजिए।

10.3.1c अल्जाइमर रोग (Alzheimer's Disease) या डिमेंशिया अल्जाइमर टाइप (DAT)

अल्जाइमर रोग एक प्रगतिशील (Progressive) एवं अपरिवर्तनीय (Irreversible) मनोभ्रंश है। जो धीरे-धीरे मस्तिष्क की हानि के बढ़ने से गंभीर होती जाती है। तथा आमतौर पर निदान (Diagnosis) के 10 वर्षों के भीतर व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है (APA,2000)। अल्जाइमर रोग का वर्णन सर्वप्रथम जर्मन मनोचिकित्सक (Psychiatrist) और न्यूरोपेथोलाजिस्ट अलोइस अल्जाइमर (Alois Alzheimer) ने 1906 में किया और उन्ही के नाम पर इस रोग का नामकरण हुआ। यह डिमेंशिया का सबसे प्रमुख कारण है। यह सबसे सामान्य प्रकार का मनोभ्रंश है। यह याददाश्त को प्रभावित करने वाली एक मानसिक गड़बड़ी है, जिसे डिमेंशिया कहा जाता है। अल्जाइमर इसी मानसिक गड़बड़ी का सबसे सामान्य रूप है। DSM-IV-TR में यह Axis I में "डिमेंशिया ऑफ अल्जाइमर टाइप" (DAT) शीर्षक में उल्लिखित है। अल्जाइमर रोग की शुरुआत आमतौर पर धीमी होती है, परन्तु उत्तरोतर बढ़ती जाती है। इसका अंत डिमेंशिया और मृत्यु में होता है। 1994 में राष्ट्रपति रेनोल्ड रेगन की मृत्यु के बाद इस रोग के बारे जागरूकता बढ़ी। 21 सितम्बर को अल्जाइमर के प्रति जागरूकता बढ़ाने हेतु "विश्व अल्ज़ाइमर दिवस" मनाया जाता है।

प्रसार (Prevalence)

अल्जाइमर रोग एक प्रमुख जन स्वास्थ्य समस्या के रूप में विश्व में चिहिन्त है। लगभग 65 से 74 वर्ष की 1-2 प्रतिशत जनसंख्या अल्जाइमर रोग से ग्रसित है (हेंडरिए,1998)। एक अनुमान के अनुसार 360,000 नए मामले प्रतिवर्ष बढ़ रहें हैं (ब्रूक्मेयर,1998)। भविष्य में अल्जाइमर रोग के मामलें चेतावनी पूर्ण हैं। इसका कारण अभी तक अज्ञात है, क्योंकि इस रोग का जोखिम पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं में अधिक होता है। शोध अध्ययनों के अनुसार इसका प्रसार अपश्चमी देश जैसे-जापान और कम विकसित एवं निम्न औद्धोगीकृत देशों में कम है, जैसे भारत व नाइजेरिया आदि।

निदान

इसका कारण अज्ञात है परंतु आनुवंशिकता, आयु और जीवन शैली इसके जोखिम कारणों में शामिल हैं। अल्जाइमर रोग के निदान के लिए विस्तृत नैदानिक मूल्यांकन आवश्यक है, परंतु पूर्ण रूप से पुष्टि रोगी की मृत्यु के उपरांत औटोपसी (Autopsy) से संभव हो पाती है। औटोपसी में अम्यलोइड प्लाकएस (Amyloid plaques) और नुरोफिब्रिल्लरी टंग्लेस (Neurofibrillary tangles) से अल्जाइमर रोग की न्यूरोपेथोलाजी की पुष्टि होती है। अल्जाइमर रोग आमतौर पर 45 वर्ष की उम्र के बाद होता है। अल्जाइमर रोग वृद्धावस्था की एक सामान्य स्थिति नहीं है। इसका नैदानिक रूप एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति से अलग होता है। DAT की घातक एवं धीमी शुरुआत के कारण यह अन्य डिमेंशिया से अलग है।

नैदानिक विशेषताएँ व लक्षण

अल्जाइमर रोग मस्तिष्क के स्नायुतंत्र (Nervous System) की कोशिकाओं में परिवर्तन से होता है। इसमें तंत्रिका कोशिका(Nerve Cell) के कोश शरीर (Cell body) का उत्तरोत्तर नाश होने लगता है। जैसे-जैसे बीमारी बढ़ती है, वैसे-वैसे मस्तिष्क का आकार कम होने लगता है, तथा सेरेबरल वेण्ट्रेक्लि (Cerebral ventricle) का आकार बढ़ जाता है। यह रोग धीरे-धीरे शुरू होता है, और समय के साथ बिगड़ता जाता है। अल्जाइमर रोग का आरंभिक

लक्षण स्मृति तथा संज्ञानात्मक कार्यों में गड़बड़ी होना है। सबसे स्पष्ट स्मृति की गड़बड़ी एनकोडिंग (Encoding) तथा नवीन यादों के संचयन (Storage) में होती है।

अल्जाइमर रोग का आरंभ धीरे-धीरे जीवन कार्यों में सक्रिय भागीदारी के कम होने से होता है। सामाजिक गतिविधियां एवं रुचि संकुचित होने लगती है। मानसिक सतर्कता (mental alertness) और अनुकूलनशीलता (Adaptability) कम होने लगती है। अधिकतर विचार और गतिविधि आत्मकेंद्रित और बचकानी होने लगती हैं। छोटे-छोटे व्यवहार प्रभावित होने लगते हैं, जैसे वाहन चलाने, पैसे के लेन देन, खाना पकाने, नहाने आदि कामों को करने में परेशानी होती है। रोगी स्वयं की शारीरिक क्रियाओं में ही तल्लीन रहने लगता है। जैसे–जैसे यह व्यवहार गंभीर होने लगता है, अन्य लक्षण प्रकट होने लगते हैं, जैसे-हाल की घटनाओं की स्मृति क्षीण होना, निरर्थक एवं रिक्त बोलचाल (Empty speech), अव्यवस्था (Messiness)। बाद की अवस्था में रोगी बहुत से मानसिक क्षमताओं को खोने लगता है। सर्वप्रथम नई घटनाओं की स्मृति क्षीण होती है, फिर खराब निर्णय क्षमता, समय और स्थान का भ्रम, व्यक्तिगत स्वच्छता के प्रति लापरवाही, वास्तविकता से संबंध खत्म होना आदि लक्षण गंभीर होने लगते हैं।

उपचार (Treatment)

अल्जाइमर रोग का अभी तक कोई उपचार संभव नहीं हो पाया है, और न ही क्षतिग्रस्त हुई मानसिक क्षमताओं को दुबारा प्राप्त करना संभव हो पाया है। हालांकि इस बीमारी का उपचार अब तक उपलब्ध नहीं है। लेकिन बीमारी के शुरुआती दौर में नियमित जांच और इलाज से इस पर काबू पाया जा सकता है। उपचार मदद तो करता है, परंतु बीमारी या रोग को ठीक नहीं करता। दवाएं कुछ लक्षणों को दूर करने में सहायता कर सकती है। यह रोग के लक्षणों की गति को धीमा कर सकती हैं। देख-रेख करने वालों (caregivers) को रोगी के लक्षणों का प्रबन्धन करने हेतु सहायता दी जाती है। अल्जाइमर रोगी प्राय: सामान्य समस्यात्मक व्यवहार से पीड़ित होते हैं जैसे-आवारा तरीके से घूमना, असंयम, स्वंय की देख भाल में परेशानी आदि। इस प्रकार के लक्षणों हेतु व्यवहारात्मक चिकित्सा अधिक कारगर है। क्योंकि अल्जाइमर रोगी में संज्ञानात्मक क्षमतायें क्षतिग्रस्त होती हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. अल्जाइमर रोग के मुख्य जोखिम कारणों को बताइए।

2. अल्जाइमर रोग में किस प्रकार की न्यूरोपेथोलाजिकल असमान्यताएं होती हैं ?

10.3.4 Amnestic Disorder

स्मृति लोप विकार को आमतौर पर एम्नीशिया भी कहते हैं। इसमें व्यक्ति न तो दीर्घ कालीन स्मृतियों को न ही लघु कालीन स्मृतियों को संचित कर पाता है। अन्य संज्ञानात्मक विकारों से भिन्न एम्नीशिया में व्यक्ति सामंजस्यपूर्ण रहता है।

लक्षण

डिमेंशिया के विपरीत एमेनिसटीक सिंड्रोम में व्यक्ति के सम्पूर्ण (overall) संज्ञानात्मक कार्यात्मकता (functioning) लगभग संरक्षित रहती है। इसका मुख्य लक्षण स्मृति में गड़बड़ी है। इसमें तात्कालिक प्रत्याहान प्राय: प्रभावित नहीं होता है। लघु कालीन स्मृति बुरी तरह प्रभावित होती है। जिसके कारण व्यक्ति कुछ मिनटों पहले की घटनाओं की स्मृति खो देता है। इसमें व्यक्ति को नवीन सीखने में परेशानी होती है।

निदान/लक्षण

स्मृति लोप पहचान योग्य कारणों द्वारा होता है। स्मृति लोप विकार मस्तिष्क आघात, क्षति जैसे संक्रमण, ऑक्सीजन कि कमी और टुयूमर आदि का परिणाम है। एमेनेस्टिक सिंड्रोम का मूल कारण मस्तिष्कीय क्षति (Brain damage) है। एमेनेस्टिक सिंड्रोम मुख्यतया अत्यधिक शराब पीने (Chronic alcohol Use) और विटामिन B1 (थायमीन) की कमी से भी होता है। दूसरा मुख्य कारण सिर में आघात, स्ट्रोक, शल्य चिकित्सा, टेम्पोरल लोब में ऑक्सीजन की कमी जिसे हाइपोक्सिया (hypoxia) कहते हैं, द्वारा होता है। कुछ मस्तिष्कीय संक्रमण के कारण भी स्मृति लोप हो सकता है।

उपचार

अगर स्मृति लोप का कारण चिंता है, तो उसका उपचार मनोचिकित्सा, ट्रेएनकूलाईजर तथा अन्य दवाओं द्वारा संभव है।

DSM-IV-TR
एमेनेस्टिक डिसआर्डर के लिए मानदंड (Criteria for Amnestic disorder)
➢ स्मृति में क्षति/हानि का बढ़ना। (नवीन सूचनाओं को सीखने तथा पूर्व में सीखी गई सूचनाओं के प्रत्याहन में असमर्थता/अक्षमता। ➢ स्मृति बाधा के कारण सार्थक कार्यात्मक असमर्थता और पूर्व के कार्यात्मक स्तर में गिरावट या हास। ➢ स्मृति बाधा डिलीरियम एवं डिमेंशिया के कारण प्रकट ना होना। (The memory disturbance does not occur exclusively during the course of a delirium and dementia).

अभ्यास प्रश्न

1.स्मृतिलोप अन्य संज्ञानात्मक विकारों से किस प्रकार भिन्न है?

2. स्मृतिलोप के लक्षणों को सूचीबद्ध कीजिए।

खंड दो

10.4.1 डिमेंशिया, डिलीरियम, अल्जाइमर रोग एवं एमनेस्टिक सिंड्रोम का तुलनात्मक अंतर

	डिमेंशिया	डिलीरियम	अल्जाइमर रोग	स्मृति लोप
आरंभ (Onset)	धीमा (Insidious)	तीव्र (Acute)	धीमा (Gradual)	धीमा (Gradual)
घटनाक्रम (Occurrence)	समान्यतया बुजुर्ग व्यक्तियों में	बच्चों व बुजुर्ग व्यक्तियों में	बुजुर्ग व्यक्तियों में	उन व्यक्तियों में जो अल्कोहल आदि का सेवन करते हैं
अवधि (Duration)	एक महीने से अधिक	एक महीने से कम	जीवनभर (Lifelong)	निश्चित नहीं
स्थिति (Condition)	अपरिवर्तनीय (Irreversible)	परिवर्तनीय (Reversible)	अपरिवर्तनीय (Irreversible)	प्रतिवर्ती (Reversible)
व्यवस्था (Orientation)	दुर्बल (Impaired	दुर्बल (Impaired)	दुर्बल (Impaired)	लगभग अखंड (Mostly intact)
चिंतन (Thinking)	असंगठित (Organized)	असंगठित (Disorganized)	असंगठित (Disorganized)	संगठित (Organized)
ध्यान (Attention)	अखंड (Intact)	खराब (Poor)	खराब (Poor)	खराब (Poor)
जागरूकता (Awareness)	जागरूकता खंडित (Intact)	अस्थिर (Fluctuating)	अस्थिर (Fluctuating)	अस्थिर (Fluctuating

स्मृति (Memory)	नवीन स्मृति में कमी	स्मृति में कमी	लघु एवं दीर्घ कालीन दोनों स्मृति में हास	लघु कालीन स्मृति ज्यादा प्रभावित
नींद-जागृत अवस्था (Sleep-wake cycle)	बहुधा सामान्य (Usually normal)	हमेशा बाधित (Always disrupted)	बाधित (disrupted)	अबाधित

10.4.2 अन्य चिकित्सीय स्थितियों के कारण होने वाला डिमेंशिया

अब आप जानेगें कि बहुत सी चिकित्सीय (Medical) स्थितियां और रोग ऐसे हैं, जिनके कारण डिमेंशिया उत्पन्न होता है या डिमेंशिया के लक्षण होने लगते हैं। इन स्थितियों और रोगों का वर्णन दिया जा रहा है।

10.4.2 (1) संवहन डिमेंशिया (Vascular dementia)

यह अल्जाइमर रोग के बाद डिमेंशिया का दूसरा सबसे प्रमुख कारण है। यह मनोभ्रंश 65 वर्ष से अधिक उम्र के लोगों में अल्जाइमर रोग के बाद मनोभ्रंश का दूसरा प्रमुख कारण है। इस प्रकार का मनोभ्रंश स्ट्रोक (stroke) के उपरांत होता है।यह सबसे अधिक या सामान्य प्रकार का मनोभ्रंश है। यह अधिकांश महिलाओं की तुलना में पुरुषों को अधिक प्रभावित करता है। नाम के अनुसार यह डिमेंशिया मस्तिष्क के बहुत से हिस्सों में रक्त प्रवाह अथवा आपूर्ति के अवरोधित होने के कारण मस्तिष्क के हिस्सों में क्षति होने से होता है। स्ट्रोक के कारण मस्तिष्क में रक्त के प्रवाह में अवरोध पैदा होता है। स्ट्रोक एक प्रकार की रुकावट या मस्तिष्क के किसी हिस्से में रक्त की आपूर्ति की रुकावट है। स्ट्रोक को कभी-कभी बहु-रोधगलितांश (Multi-Infract) भी कहा जाता है।

बहु रोधगलितांश डिमेंशिया (Multi-Infract Dementia) के कारण

- मधुमेह (Diabetes)
- धमनियों का कठोरीकरण (Hardening of arteries or atherosclerosis)
- उच्च रक्तचाप (High Blood pressure)
- धूम्रपान (Smoking)
- दौरा (Stroke)

10.4.2 (2) पार्किंसन रोग (Parkinson's Disease)

यह रोग एक स्नायविक या न्यूरोलाजिकल स्थिति है तथा यह शारीरिक गतिविधि को प्रभावित करती है। इसमें व्यक्ति के शरीर में लगातार कंपन (Tremors) होने लगते हैं। संतुलन व गति कौशल बुरी तरह प्रभावित होते हैं। इसमें संज्ञानात्मक क्षमता व कार्यात्मकता प्रभावित होता है। पार्किंसन रोग में मस्तिष्क के वह हिस्से क्षतिग्रस्त हो जाते हैं, जो माँसपेशियों की गतिविधि को नियंत्रित करते हैं। इस रोग का कोई ईलाज नहीं है, परंतु इसके लक्षणों को नियंत्रित किया जा सकता है। इसमें संतुलन एवं चलन की समस्या, माँसपेशियों में जकडन, कंपकपी आदि होती है। इस रोग के प्रति जागरूकता बढ़ाने हेतु "विश्व पार्किंसन दिवस" 11 अप्रैल को मनाया जाता है।

10.4.2 (3) हनटिंगटन रोग (Huntington's Disease)

हनटिंगटोन रोग एक दुर्लभ प्रकार का अपक्षयी या डीजेनेरेटिव केंद्रीय स्नायु तंत्र रोग है। यह रोग बहुत दुर्लभ प्रकार का रोग है। हनटिंगटोन रोग एक आनुवांशिक, डीजेनेरेटिव मस्तिष्कीय विकार है। अभी तक इस बीमारी का कोई इलाज़ नहीं है। इस रोग में व्यक्ति की चलने, बोलने और तर्कना क्षमता खत्म हो जाती है। इस रोग से पीड़ित व्यक्ति पूर्णतया अन्य लोगों पर निर्भर हो जाता है। हनटिंगटोन रोग पूरे परिवार को संवेगात्मक, सामाजिक और आर्थिक गंभीर रूप से प्रभावित करता है। डॉक्टर जॉर्ज हनटिंगटन (Dr.George Huntington) जो कि एक अमेरिकन न्यूरोलोजिस्ट थे। इन्होंने सबसे पहले इस आनुवांशिक रोग का पता 1872 में लगाया। इस रोग को एक प्रमुख जिनेटिक डिसऑर्डर के रूप में पहचाना जाता है। शुरुआती लक्षणों में संज्ञानात्मक क्षमता और चलन क्षमता प्रभावित होती है। साथ ही विषाद, भूलना, बैडोलता (clumsiness), अनैच्छिक फड़कन आदि होता है। जैसे-जैसे बीमारी की गंभीरता बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे व्यक्ति की एकाग्रता और लघु कालीन स्मृति में हास तथा सिर व गर्दन में अनैच्छिक गति होने लगती है। चलना, बोलना तथा निगलने की क्षमता बुरी तरह प्रभावित होती है। बीमारी की गंभीरता और बढ़ने पर रोगी अपनी देखभाल खुद नहीं कर पाता है, तथा रोगी की मृत्यु दम घुटना, संक्रमण तथा हृदयाघात द्वारा होती है। यह रोग मध्य जीवन अवधि जैसे 30-50 वर्ष की आयु में आरंभ होता है। बहुत ही दुर्लभ (rare) स्थिति में यह बच्चों में होता है। यह रोग पुरुष और महिला दोनों में समान रूप से होता है।

10.4.2 (4) मल्टिपिल स्क्लेरोसिस Multiple sclerosis

मल्टिपिल स्क्लेरोसिस एक प्रकार की अपक्षयी या डिजेनेराटिव बीमारी है। इसमें न्यूरॉन की मायलीन शीट (Myelin Sheath) में घाव हो जाते हैं। मायलीन शीट तंत्रिका कोशिका (न्यूरॉन) के एक्सोन के चारों तरफ वसा की कोशिकाएं का एक आवरण होता है। इनका कार्य तंत्रिका संदेश (Nerve Impulse) को ठीक प्रकार से आगे बढ़ाना है। मल्टिपल स्क्लेरोसिस में घाव और पल्अक्स मायलीन शीट को नष्ट कर देतीं हैं, जिससे तंत्रिका संदेश अवरोधित, विकृत और धीमा हो जाता है।जिससे व्यक्ति के लगभग सभी संज्ञानात्मक शांताएं प्रभावित होती हैं। यह एक प्रकार की आटोइम्यून (Autoimmune) रोग या बीमारी है। यह माना जाता है, कि शरीर की स्वयं की प्रतिरक्षा प्रणाली (Immune System) मायलीन शीट पर आक्रमण करती है।

10.4.2 (5) पिक्स रोग (Pick's Disease)

पिक्स रोग अर्नोल्ड पिक्स जो कि मनोचिकित्सक (Psychiatrist) थे, उनके नाम पर रखा गया। इन्होंने इस रोग का सर्वप्रथम 1892 में पता लगाया। पीक'स रोग मस्तिष्क में तंत्रिका कोशिकाओं के प्रगतिशील विनाश (Progressive degeneration) का कारण बनता है, यह एक दुर्लभ न्यूरोडीजेनरेटिव (Neurodegenerative) रोग है। इसके लक्षणों में वाणी हास (Aphasia) और मनोभ्रंश शामिल हैं। आरंभ में कुछ लक्षण कम या ठीक किए जा सकते हैं, परंतु जैसे-जैसे बीमारी बढ़ती है, वैसे-वैसे इसकी गंभीरता बढ़ती जाती है, और रोगी की मृत्यु दो से दस वर्षों में हो जाती है। इस बीमारी या रोग की निर्धारक विशेषता (Defining characteristic) न्यूरोन में टौ प्रोटीन (Tau Protein) का बनना जो कि चाँदी जैसी गोलाकार रूप में होती हैं उनका जमाव व एकत्रीकरण होता है, जिन्हें पिक्स बॉडी (Pick's Bodies) कहा जाता है।

10.4.2 (6) विलसन रोग (Wilson's Disorder)

यह एक आनुवांशिक रोग है, जिसमें व्यक्ति के अंगों जैसे यकृत (Liver), मस्तिष्क आदि में अत्यधिक मात्रा में कॉपर या तांबा (Copper) एकत्रित हो जाता है। इसे अन्य नाम हेपेटोइंट्रीकुलर डीजेनेरेशन (Hepatoenticular Degeneration) से भी जाना जाता है। कॉपर तंत्रिका, अस्थि, कोलेजन, त्वचा के मिलेनिन के विकास में वैसे तो सहायक होता है। परंतु अधिक मात्रा में कॉपर के जमाव से स्थिति घातक हो जाती है। अगर इसकी पहचान जल्दी हो जाती है तो इसका इलाज संभव है।

10.4.2 (7) लेवी बॉडी विकार (Lewy Body Disease)

लेवी बॉडी रोग की मुख्य पहचान/ विशेषता मस्तिष्कीय कोशिकाओं में एल्फा सिनक्लिन प्रोटीन (Alpha-synclein protein) का जमाव होना है। प्रोटीन जमाव प्रत्यक्षण, चिंतन, और व्यवहार में गड़बड़ी उत्पन्न करता है। इस जमाव को "लेवी बॉडीज" कहा जाता है। यह नाम फेडरिक एच. लेवी (Friederich H. Lewy) के नाम पर रखा गया है, क्योकि इन्होने इसका वर्णन सर्वप्रथम 1900 में किया था। लेवी बॉडी डिमेंशिया अन्य तरह के डिमेंशिया से भिन्न है, इसमें दृष्टि भ्रम (Visual Hallucination), अस्थिर सतर्कता (Fluctuating alertness), गंभीर नींद सम्बन्धी समस्याएँ एवं गंभीर अनैच्छिक गतियाँ होने लगती हैं।

10.4.2 (8)नार्मल प्रेसर हाइड्रोसिफेलस (Normal pressure Hydrocephalus)

नार्मल प्रेसर हाइड्रोसिफेलस एक मस्तिष्कीय विकार है। यह किसी भी आयु में हो सकता है लेकिन बड़ी उम्र में इसके होने की संभावना अधिक होती है। इसमें सेरीब्रोस्पाइनल द्रव्य (Cerebrospinal Fluid) मस्तिष्क के वेंट्रिकल में अधिक मात्रा में जमा हो जाता है। जिससे व्यक्ति में चिंतन और तर्कना (Reasoning) सम्बन्धी समस्याएं होने लगती हैं। इसके अतिरिक्त चलने व मूत्राश्य नियंत्रण में कठिनाई होने लगती हैं। सेरीब्रोस्पाइनल द्रव्य के मस्तिष्क में बढ़ने से वेंट्रिकल का आकार भी बढ़ने लगता है, जिससे मस्तिष्क के भागों पर अत्याधिक दबाव बढ़ जाता है। इसके तीन मुख्य लक्षण हैं, जिससे इस रोग की पहचान होती है-मानसिक या संज्ञानात्मक हास (Mental or Cognitive Decline), चलने में समस्या तथा मूत्राशय नियंत्रण में परेशानी। इसका उपचार सर्जरी द्वारा संभव है और इन लक्षणों को बदला जा सकता है।

10.4.2 (09) क्रियुट्ज़फेल्ड - जेकब रोग (Creutzfeldt-Jacob Disease)

इसे "मैड काऊ रोग" (Mad Cow Disease) के नाम से भी जाना जाता है। यह रोग गाय या बैल में होता है, तथा यह विशेष परिस्थितियों में मानव शरीर में कभी-कभी संचारित (Transmit) हो जाता है। यह एक वाइरस के कारण होता है, जो मस्तिष्क की कार्यक्षमता को प्रभावित करता है। इस रोग के कारण होने वाला डिमेंशिया बहुत तेजी से बढ़ता है, और ध्यान, एकाग्रता, दृष्टि एवं समन्वयन (Coordination) को प्रभावित करता है। यह एक घातक रोग है। यह घातक रोग स्मृति तथा समन्वयन को प्रभावित करता है और व्यवहार में बदलाव लाता है।

10.4.2.(10) एचआईवी संक्रामण द्वारा डिमेंशिया (Dementia from HIV-1 Infection)

ह्यूमन इम्यूनों डेफ़िश्यंसी वायरस (HIV) इम्यून प्रणाली को नष्ट करता है। समय बीतने के साथ संक्रमण एड्स में बदल जाता है। एचआईवी वाइरस शरीर को खत्म करने के साथ ही न्यूरोलॉजिकल रोगों जिसमें डिमेंशिया शामिल है, को उत्पन्न करता है। यह दो प्रकार से होता है, प्रथम इम्यून प्रणाली कमजोर पड़ने से HIV से ग्रसित व्यक्ति परजीवियों आदि के संक्रमण से अधिक संवेदी हो जाता है, दूसरा वाइरस मस्तिष्क को नष्ट (damage) करने लगता है, जिससे स्नायु चोट (Neuronal injury) और मस्तिष्क कोशिकाएं नष्ट होने लगती हैं।

10.4.2.(11). वर्निक्क-कोर्सोकोफ्फ संलक्षण (Wernicke-Korsakoff Syndrome)

यह संलक्षण विटामिन B 12 की कमी के कारण होता है। जब व्यक्ति में थायमीन की कमी होती है तो मस्तिष्क शर्करा को ऊर्जा में बदल नहीं पाता है, जिससे मस्तिष्क अपने कार्य ठीक प्रकार से नहीं कर पाता है और डिमेंशिया के लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं, जैसे- भ्रम व स्मृति हास आदि। इसे अन्य नाम जैसे "कोर्सोकोफ्फ साइकोसिस", "वर्निक्क एनसिफेलोपेथी" और "अलकोहल एनसिफेलोपेथी" से भी जाना जाता है। यह दीर्घकालीन (Chronic) व गंभीर विकार है। इसका मुख्य जोखिम कारण एल्कोहल का सेवन व मद्यपानता है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी यह AIDS, कैंसर, दीर्घ-कालीन संक्रमण, किडनी डाइलसिस आदि के कारण भी होता है। जिसके कारण अपर्याप्त पोषण होता है। इससे होने वाले डिमेंशिया में भ्रांति (Confusion), उदासीनता, भ्रम (Hallucination), सम्प्रेषण (Communication) समस्या और गंभीर स्मृति की गड़बड़ी होती है। थायमीन थेरेपी के उपरांत व्यक्ति सामान्यतया ठीक हो जाता है।

आपको बता दें कि उपरोक्त स्थितियों और रोगों के अतिरिक्त अन्य बहुत से चिकित्सीय कारण जैसे यकृत की बीमारी, हेपेटिक एन्सीफेलोपथी, यूरिनरी ट्रेक्ट सिंड्रोम, कार्डिओवास्कुलर रोग, पलमोनरी रोग, कम रक्त शर्करा के बाद की स्थिति (Post Hypoglycemic State), पोषक तत्वों की कमी से होने वाले रोगों आदि के द्वारा भी डिमेंशिया के लक्षण प्रकट होते हैं।

10.5 सारांश

संज्ञानात्मक विकार मुख्य रूप से सीखना, स्मृति, प्रत्यक्षण और समस्या समाधान आदि मानसिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करते हैं। चिंता विकार, मूड डिसऑर्डर और साइकोटिक विकार आदि भी स्मृति एवं संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं को प्रभावित करते हैं। परंतु इन्हें संज्ञानात्मक विकार की श्रेणी में इसलिए नहीं रखा गया है, क्योंकि इन

विकारों में संज्ञानात्मक हास इनका मुख्य लक्षण नहीं है। संज्ञानात्मक विकार में डिलीरियम, डिमेंशिया, अल्जाइमर रोग, और एम्नीशिया आदि रोग आते हैं। डिलीरियम की शुरुआत तीव्र होती है। इसमें विशेषतया: चेतना, ध्यान, धारण (retention), सोच, स्मृति, भावनाओं, तथा नींद–जाग्रत चक्र में गड़बड़ी होती है। डिमेंशिया आमतौर पर अपरिवर्तनीय एवं प्रगतिशील बीमारी है। मनोभ्रंश उच्च मानसिक कार्यों जैसे स्मृति, चिंतन, भाषा, सीखना, निर्णयक्मकता में एक प्रकार की क्षति है। अल्जाइमर रोग मस्तिष्क के स्नायुतंत्र की कोशिकाओं में परिवर्तन से होता है। इसमें तंत्रिका कोशिका के कोश शरीर का उत्तरोत्तर नाश होने लगता है। यह डिमेंशिया का सबसे प्रमुख कारण है। यह सबसे सामान्य प्रकार का मनोभ्रंश है। इसमे व्यक्ति न तो दीर्घ कालीन स्मृतियों को न ही लघु कालीन स्मृतियों को संचित कर पाता है। अन्य संज्ञानात्मक विकारों से भिन्न एम्नीशिया में व्यक्ति सामंजस्यपूर्ण रह्ता है। डिमेंशिया के विपरीत एमेनिसटीक सिंड्रोम में व्यक्ति के सम्पूर्ण संज्ञानात्मक कार्यात्म- कता लगभग संरक्षित रहती है। इसका मुख्य लक्षण स्मृति में गड़बड़ी है। इसके अतिरिक्त बहुत सी अन्य चिकित्सीय स्थितियां के कारण होने वाला जैसे- बहु रोधगलितांश डिमेंशिया, पार्किंसन रोग, हनटिंगटन रोग, मल्टिपिल स्क्लेरोसिस, विलसन रोग, एचआईवी संक्रामण द्वारा डिमेंशिया, पिक्स रोग, लेवी बॉडी विकार, नार्मल प्रेसर हाइड्रोसिफेलस, क्रियुट्ज़फेल्ड-जेकब रोग और वर्निक्क-कोर्सोकोफ्फ संलक्षण आदि द्वारा भी डिमेंशिया के लक्षण उत्पन्न होते हैं।

10.6.पारिभाषिक शब्दावली

एंटीसाइकोटिक दवाएँ- साइकोसिस के इलाज़ की दवाए

एंटीकनवल्जेंट- दौरे के इलाज़ की दवाए।

एंटीहाइपरटेनसिव- उच्च रक्त चाप की दवाए।

न्यूरो-अपक्षयी विकार-न्यूरॉन की सरंचना और कार्यों में लगातार हानि और क्षति होना और उसके द्वारा होने वाले संज्ञानात्मक समस्यायें।

व्यामोह-अवास्तविक व नकारात्मक विश्वास।

मनोचिकित्सक-यह मेडिकल डॉक्टर होता है जिसे मनोरोग (psychiatry) में विशेषज्ञता होती है।

औटोपसी- मृत्यु के बाद निदानात्मक परीक्षण।

10.7 संदर्भ सूची

1- रोबर्ट सी कार्सन,जेम्स एन बचर,सुज़ेन मिनेका और जिल एम हूले (2011),अबनोरमल साइकॉलॉजी द्संवा संस्करण,पिएरसन एजूकेशन।
2- ललित बत्रा (2006)।शॉर्ट हैंडबुक ऑफ साइकेट्री,पीपी पब्लिशर एंड डिस्ट्रीबुयूटर।
3- जेफरी इ, हेक्कर एंड जिओफ्फ्री एल.थोर्पे (2010). इंटरोंडकशएन टू क्लिनिकल साइकोलाजी।
4- केप्लान, जे. एंड सडोक्क,बी.जे. कंपरहनसिव टैक्स्टबुक ऑफ साइकेट्री।

5- शुक्ला,के.सी.(2008)एनसाइक्लोपिडिइक डिक्शनरी ऑफ साइकोलाजी।

10.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

http://www.alz.org.

10.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. संज्ञानात्मक विकार का अर्थ स्पष्ट करते हुए प्रकारों का वर्णन कीजिए।
2. अन्य किन-किन चिकित्सीय स्थितियों के कारण डिमेंशिया होता है उनका वर्णन कीजिए।
3. विभिन्न संज्ञानात्मक विकारों का तुलनात्मक विवरण दीजिए।

इकाई 11. मानवतावादी – अनुभवात्मक और फ्रायडियन मनोविश्लेषण चिकित्सा एवं इनके लक्ष्य; अहं-विश्लेषक, वस्तु- संबंध और अन्तर्वैयक्तिक मनोगत्यात्मक चिकित्सा

(Humanistic-Experiential and Freudian Psychoanalytic Therapy and its Goals; Ego Analytic, Object-Relation and Interpersonal Psychodynamic Therapy)

इकाई संरचना

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 मानवतावादी चिकित्सा
11.3 मानवतावादी चिकित्सा के स्वरूप
11.3.1 मानवतावादी अनुभावात्मक के लक्ष्य
11.3.3 मानवतावादी अनुभावात्मक चिकित्सा में प्रयुक्त विधियाँ
11.4 फ्रायडियन मनोविश्लेशणात्मक चिकित्सा
11.4.1 मनोविश्लेषण की विधियाँ।
11.4.2 मनोविष्लेशात्मक चिकित्सा के लक्ष्य
11.5. अंह विश्लेषिक चिकित्सा
11.5.1 अंह विश्लेषिक चिकित्सा के गुण दोष
11.6 वस्तु संबंध चिकित्सा
11.6.1 वस्तु सम्बन्ध चिकित्सा के चरण
11.6.2 वस्तु चिकित्सा के गुण दोष
11.7 अन्तर्वैयक्तिक मनोगत्यामक चिकित्सा
11.8 स्वमूंल्याकन हेतु प्रश्न
11.9 सारांश
11.10 शब्दावली
11.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.12 सन्दर्भ ग्रन्ध सूची
11.13 निबन्धात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

मानवतावादी अनुभवात्मक चिकित्सा का उदेश्य व्यक्तिको अपने ढग से सामाजिक बन्धको से दूर होकर अपनी अन्तदृष्टि के माध्यम से रोग का उपचार ढूढना होता है |इस चिकित्सा पद्वति के माध्यम से व्यक्ति स्वंय अपना उपचार करता है |उसे किसी अन्य चिकित्सा की आवश्यकता नही पडती है फ्रायडियन मनोविश्लेषाणामक चिकित्सा में व्यक्ति के अन्दर के डर, संधर्ष, इच्छाओ आदि को बाहर निकालकर उनमें सूझ या समझ को उत्पन्न

करने का प्रयास किया जाता है |जिससे रोगी अपनी जीवन में होने वाली समस्याओ को आसानी से कम करने का प्रयास करता है। अंह वैश्लेषिक चिकित्सा का कार्य व्यक्ति के वास्तविक दुनिया की उलझनो को कम करने का होता है जिसे वह अंह विश्लेषण की उलझनो को कम करना है जिसे वह अंह विश्लेषण चिकित्सा के माध्यम से कर पाता है। वस्तु संबंध सिद्वांत में मॉ शिशु अन्तक्रिया से उत्पन्न होने वाले अन्तः वैयक्तिक संबंध तथा अंह की शक्ति एवं संरचना पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। अन्तैयक्तिक मनोगत्यामक चिकित्सा में रोगी तथा उसके सामाजिक वातावरण के अन्तक्रिया पर अधिक जोर दिया जाता है कि रोगी वातावरण में लोगो तथा वातावरण के प्रति किसा प्रकार अन्त क्रियाऐ करता है।

11.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अर्न्तगत हम मानवतावादी अनुभावात्मक चिकित्सा, फ्रायडियन चिकित्सा अंह वैश्लेषिक चिकित्सा, वस्तु संबंध चिकित्सा व अंतर्वैयक्तिक क मनोणत्याकमक चिकित्सा के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे ।

11.3 मानवतावादी

मानवतावादी अनुभवात्मक चिकित्सा का उदेश्य रोगी को अपने लक्षणो के प्रति आवश्यक अन्तदृष्टि को विकसित करना होता है |यह चिकित्सा पद्वति एक प्रकार की सूझ केन्द्रित चिकित्सा पद्वति है जिसमें व्यक्ति के असामान्य व्यवहार का उपचार व्यक्ति की आवश्यकताओं तथा प्रेरणाओं मे वृद्धि करके किया जाता है इस प्रकार की मनोचिकित्सा को परिधटनात्मक मॉडल भी कहा जाता है इस माडल में मानव व्यवहार का आधार चेतन अनुभूति को माना है |इस चिकित्सा पद्वति की उत्पति व्यवहार वाद व मनोविश्लेषणवाद के पुराने दृष्टिकोण के विरोध में एक प्रतिक्रिया के रूप में विकसित हुई। इस चिकित्सा पद्वति को मनोचिकित्सा जगत की तीसरी शक्ति के रूप जाना जाता है इस प्रकार की चिकित्सा से चिकित्सक की भूमिका केवल रोगी में आन्तरिक चेतना को जाग्रत करना होता है |इस चिकित्सा पद्वति मे रोगी को स्वंय अपने रोगो के लक्षणो को जानकर उसके उपचार के लिए प्रयास करना पडता है चिकित्सक केवल रोगी के अन्दर की चेतना को ही जाग्रत करते है।

11.3.1 मानवतावादी अनुभवात्मक चिकित्सा के लक्ष्य:-

इस प्रकार की चिकित्सा में चिकित्सा रोगी को अपनी अन्दर की अन्तःशक्ति को पहचानने एवं उस तक पहुचाने में मदद करते है रोगी अपनी अन्त शक्ति की सहायता से बिना किसी के मदद के ही जिन्दगी की समस्याओा का समाधान करने में स्वयं सफल हो पाता है इस चिकित्सा पद्वति में चिकित्सक तथा रोगी का संबंध फूल तथा माली के समान होता हैं जिस प्रकार माली अपनी प्रयासो से फूलो को उचित प्रकार से उन्नत बनाता है ठीक उसी प्रकार चिकित्सक रोगी के भीतर छिपे हुई अन्तःशक्ति का विकास करता है जिससे रोगी को समस्याओं का समाधान करने मे लाभ प्राप्त होता है इस चिकित्सा पद्वति में रोगी और चिकित्सक के संबंधो का महत्वपूर्ण माना गया है जिससे रोगी की अन्तःशक्ति में वर्धन होता है यह एक प्रकार का वास्तविक अन्तवैयक्विक संबंध होता है इस तरह की चिकित्सा में चिकित्सीय संबंध को तात्कालिक अनुभूतियों को काफी महत्वपूर्ण माना हैं इससे रोगी सामान्य लोगो के समान ही होते है रोगी वातावरण के प्रति प्रत्यक्षण के अनुरूप् ही व्यवहार करते है।

11.3.2 परिघटनात्मक मॉडल में प्रयुक्त चिकित्सा पद्वतिः-

परिघटनात्मक मॉडल में रोगियों का उचार किया जाता है इस मॉडल में निम्नांकित चिकित्सा मुख्यतौर पर अपनाया गया है।

1. क्लायट चिकित्सा
2. गेस्टाल्ट चिकित्सा
3. लोगो चिकित्सा
4. अस्तित्ववादी चिकित्सा

1. क्लांयट केन्द्रित चिकित्साः-

इस चिकित्सा विधि का प्रतिदिन कार्ल रोजर्स द्वारा 1940 के दशक में किया इसे अन्य नामों जैसे व्यक्ति केन्द्रित चिकित्सा, अनिदेशित चिकित्सा भी कहा जाता है।

रोजर्स ने अपनी चिकित्सा विधि में रोगी के लिए क्लांयट तथा चिकित्सक के लिए सलाहकार शब्द का प्रयोग किया है। रोजर्स फ्रायड के इन विचारो से सहमत नही थे इसलिए उन्होने इन विचारो को अस्वीकृत कर दिया –

पहला अविवेकी मूल प्रवृतियों से व्यक्ति का व्यवहार प्रभावित होता है तथा दूसरा चिकित्सीय प्रक्रिया में चिकित्सक को एक निदेशक व्याख्याता तथा जाचकर्ता के रूप् में कार्य करना होता है|

इस चिकित्सा के अर्न्तगत एक रोगी के संबंधित लक्षणो के कारणो समझने तथा उपचार हेतु उन्हे दूर करने के उपायो को ढूढ निकालने में मुख्य भूमिका रोगी की होती है| इसमें चिकित्सक रोगी को अपने निर्देश नही देता है इस लिए अनिदेशित चिकित्सा पद्वति कहते हैं

इस चिकित्सा मे रोगी को अपने लक्षणो एवं कारणो को जानने के लिए तथा उनके निराकरण के लिए किसी ब्राह होती है रोगी के लिए इस संबंध में एक ऐसी विशेष अनूकूल मनौवैज्ञानिक परिवेश की आवश्यकता होती है जिसमें व्यक्ति अपने दमित भावो, अनुभवो व कुष्ठाओं को खुलकर मनोचिकित्सक के सामने व्यक्त कर दें।

मानव की प्रकृति को समझने के लिए रोजर्स 1961 ने कई तरीको पर प्रकाश डाला है।

1. किसी भी व्यक्ति को उनके अपने प्रत्यक्षण व भाव के आधार पर आसानी से समझ सकते है इन व्यक्त्यिो को अपने व्यवाहार के बारे मे पूर्णत जानकारी होती हैं

2. स्वस्थ व्यक्ति जन्मजात रूप से उत्तम व प्रभावी होते है वे तभी आप्रभावी व विचलित हो जाते है ही जब उनमे दोषपूर्ण सीखने की अनुभूति आ जाती है एक स्वस्थ्य व्यक्ति उदेश्यपूर्ण व लक्ष्य निदेशित होत है ये लोग आत्म निर्देशित होत है।

3. इसमे चिकित्सक रोगी की घटनाओ में परिवर्तन करके उसके अनुरूप् नही बनना चाहिए बाल्कि उसे वैसी अवस्था उत्पन्न करनी चाहिए कि रोगी स्वंत्रत होकर निर्णय दे सके।

इस चिकित्सा में एक ऐसी अन्तर्वयक्तिक संबंध को उत्पन्न किया जाता है जिसका उपयोग व्यक्ति वर्दन के लिए रोगी करता है व्यक्तिगत वर्धन उत्पन्न करने के लिए चिकित्सक के साथ तीन गुण होना चाहिए। बिना शर्त के धनात्मक सम्मान, परानुभूति संगलता

1. शर्तहीन धनात्मक सम्मान:-

इस मनोवृति से निम्नांकित तीन तरह के सकेत मिले है-

अ. चिकित्सक क्लांयट (रोगी) पर एक व्यक्ति के रूप में विशेष ध्यान देते है:-

इसमे चिकित्सक रोगी से कहती है कि वह उनकी बातोको ध्यान से सुन रहा है उसे उसकी बात बहुत अच्छी लग रही है इससे रोगी में आत्म अभिव्यक्ति को तीव्र प्रेरणा जागती है।

ब. चिकित्सक उन्हे स्वीकार करते है।:-

इसमें चिकित्सक किसी रोगी को किसी फैसले का निर्णय तथा शर्ते के बिना स्वीकार करता है क्लायट केन्द्रित चिकित्सा में चिकित्सक क्लांयट के भावो को न अनुमोदित करता है न ही उसे नामंजूर करता है बल्कि स्वीकार करता है।

स. चिकित्सक क्लायंट के परिवर्तन की क्षमता में विश्वास रखता है:-

चिकित्सक क्लांयट के समास्या समाधान एवं वर्धन की अन्तशीलता में विश्वास रखता है रोजर्स के अनुसार यदि क्लायंट यह समझता है कि चिकित्सक को उसकी अन्तःशक्ति मे विश्वास नही है तो क्लायंट में आत्मा विकास नही होने का खतरा उत्पन्न होता है वही दूसरी तरफ यदि क्लायंट यह समझता है कि उसकी अन्तःशक्ति मे चिकित्सक को विश्वास है तो इसमें उसमें आत्म निर्भर का गुण विकसित होता है।

2. परानुभूति:-

परानुभूति को तात्पर्य यह है कि चिकित्सक क्लायट के भावो को ठीक से समझकर अपनी नजर से ना देखकर क्लायंट की नजर से देखे इससे चिकित्सीय संबंध मजबूत होत है इसे रोजर्स ने परानुभूतिक समझ कहा हे।

परानुभूति मनोवृति को संचारित करने में परिवर्तन की भूमिका पर बल डाला गया है| परावर्तन मे चिकित्सक क्लायंट के विचारो एवं व्याख्यों के मात्र दोहराता नही है बल्कि इसमें वह क्लायंट के भावो को और अधिक स्वच्छ बना कर उन्हे स्वीकार करता है।

3. संगतता :-

संगतता जिसे यथार्थता भी कहते है से तात्पर्य है कि चिकित्सक को क्लायंट के साथ एक यथार्थ एंव वास्तविक सबंध विकसित करना चाहिए। वह जितना अधिक ऐसा सबंध स्थापित करेगा उतना ही सफल होगा। चिकित्सक व क्लांयट के भाव व क्रियाएं एक दूसरे के साथ मिलती है।

1. क्लायंट मनोचिकित्सक के पास अपनी समास्या व लक्षणो के समाधान के लिए जाता है वह सहायता करने के लिए कहत है।

2. मनोचिकित्सक क्लायंट की समस्या व लक्षणो के प्रति मन में उठने वाली प्रत्येक अभिव्यक्तिभाव को ढंग से सुनता है और क्लायंट के मन मे आने वाले संकोचो व प्रतिरोधो को तुरन्त दूर करते है भाव को व्यक्त करने के लिए निरन्तर प्रोत्सहित करते है।

3. इसके अर्न्तगत रोगी में मनोचिकित्सक के सहयोग से अपने लक्षणो के प्रति अन्तदृष्टि विकसिक होने लगता है और वह अपने लक्षणो एंव कारणो को स्पष्ट रूप् से समझने लगता है।

4. मनोचिकित्सक अपने निर्णन व कार्य दिशाओं को प्रति सकारात्मक अश्वासन मिलने से क्लायंट सन्तुष्टि का सुखद अनुभव करता हैं

5. जब क्लायंट मे अपने लक्षणो के प्रति अन्तदृर्ष्टि विकसिक हो जाती है और मनोचिकित्सको से निणयो के प्रति सकारात्मक अश्वासन मिल जाता है तब इस प्रक्रम समापन की स्थिति आ जाती है।

रोगी केन्द्रित चिकित्सा के द्वारा क्लांयट में एक नवीन चेतना, आत्म-वोध की भावना, आत्मा निदेशन व प्रभावी आत्म सिद्धि मार्ग की उपलब्धि होती है।

रोगी केन्द्रित चिकित्सा की विमाएँ:-

i क्लायंट के अभिज्ञा (Awareness) में वृद्धि :-

इस तरह की चिकित्सा मे क्लायंट अपने उन भावो के पास जाता है जिसकी जानकारी न होने पर वह उनसे दूर रहता था। इससे रोगी अपने अुभूत्तियों पर ध्यान केन्द्रित करता है। इससे क्लायंट में आत्मा अभिज्ञा में काफी वृद्धि होती है।

ii आत्म स्वीकरण मे वृद्धि :-

क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा इस तरह की संज्ञानात्मक आवद्वता दूर करने परिस्थिति को विभिन्न ढंग से प्रत्यक्षण करने की प्रेरणा क्लायंट कर देता है।

iii संज्ञात्मक लोच में वृद्धि (**Increased Cognitive flexibility**) :-

क्लायंट चिकित्सा इस तरह की संज्ञानात्मक आबद्वता (Cognitive Fixedness**)** दूर करके परिस्थिति को विभिन्न ढंग से प्रत्यक्षण करने की प्रेरणा क्लायंट को देता है।

iv अंतर्वैयक्तिक आराम में वृद्धि: -

क्लायंट सुरक्षात्मक अंतर्वैयक्तिक क उपागम को त्याग देता है और उसे जैसा वह है के बारे में अन्य लोगो को बताकर काफी खुशी होती है।

v आत्म अस्था में वृद्धि :-

चिकित्सा का सत्र जैसे जैसे बढता है क्लायंट दूसरो पर कम निर्भर रहता है उसे अपने ऊपर पूरा भरोसा हो जाता है।

vi क्लायंट के स्पष्ट व्यवहारों में परिवर्तन:-

क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा में क्लायंअ के स्पष्ट व्यवहारो में काफी परिवर्तन हो जाता है उसका व्यवहार पहले से अधिक परिपक्व हो जाता हैं

मूल्यांकन:-

साधारण कुसमायोजित व्यवहार के लिए क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा उत्तम प्रविधि है यह चिकित्सा मनोगतिकी के किसी विशिष्ट सिद्वांत के समर्थन पर निर्भर नही करता है राजर्स के प्रथम बार चिकित्सीय सत्र टेप रिकार्डिग करने पर बल डाला।

क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा गंभीर मानसिक रोगो के लिए उपयुक्त नही होता है क्योकि ऐसे व्यक्ति गम्भीर रूप् से विक्षिप्त होते है| क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा में क्लायंट की समस्याओं की गहराई में न पहुचकर मात्र सतह पर ही रहा जाता है इस तरह की चिकित्सा का धनात्मक परिणाम, चिकित्सा के परानुभूति, यथार्थता तथा सौहद्विता से संबंधित होता है उस पर आधारित होता है।

2. गेस्टाल्ट चिकित्सा:-

इस चिकित्सा पद्वति का प्रतिपादन फ्रेडेरिक एम0 चर्ल्स 1970 द्वारा किया गया है गेस्टाल्ट पद का अर्थ है सम्पूर्ण |गेस्टाल्ट चिकित्सा मन तथा शरीर की एकता पर बल डालता है जिसमें चिन्तन भाव क्रिया के समन्वय की आवश्यकता अधिक जोर दिया गया है।

रोजर्स की भाति पर्ल्स ने भी व्यक्ति की प्रकृति को समझने मे धनात्मक बल दिया। जब व्यक्ति के जीवन में अनेको कुष्ठाओं दुश्चिन्ताएँ व निराशाएँ घर करने लगती है तभी उसके व्यवहार में समस्याएँ व विकार उठ जाती है।

गेस्टाल्ट चिकित्सा के अर्न्तगत रोगी को अपनी वर्तमान विचारों का निसंकोच व खुलकर व्यक्त करने अभिप्रेरित किया जाता है इस चिकित्सा के द्वारा व्यक्ति अपनी चेतना को विस्तृत करने व्यक्त करता है जिससे उसमें सार्थक जीवन के प्रति आवश्यकता चेतना, योग्यता व क्षमत में समुचित वृद्धि हो सके। इस चिकित्सा पद्वति का विशेष

बल व्यक्ति के वर्तमान प्रत्यक्ष पर रहता है। क्योक्ति उसके वर्तमान के आधार पर ही उसके संवंगो भावो व विचारो का स्वरूप निर्धारित होता है।

गेस्टाल्ट चिकित्सा का मुख्य लक्ष्य रोगी को अपनी आवश्यकता इच्छा एवं आशंकाओं का समझने एंव स्वीकार करने में मदद करना होता है तथा उसको यह बताता है कि अपने लक्ष्य तक पहुचने में किस प्रकार असफल रहे।

पर्ल्स के अनुसार रोगी की वास्तविक जिंदगी को उन्नत बनाने एंव चिकित्सा में विका के लिए आवश्यक है कि रोगी को वर्तमान की अनुभूतियों की जानकारी बढे तथा उसमें अपने उत्त्र दायित्व को समझने की तत्परता बढे। इसलिए तीन महत्वपूर्ण तथ्यों का ध्यान रखना आवश्यक है।

पर्ल्स के अनुसार रोगी की वास्तविक जिंदगी को उन्नत बनाने एंव चिकित्सा में विकास के लिए आवश्यकता है कि रोगी को वर्तमान की अनुभूतियों की जानकारी बढे तथा उसमें अपने उत्तर दायित्व को समझने की तत्परता बढे। इसलिए तीन महत्वपूर्ण तथ्यों को ध्यान रखना आवश्यक है।

1. इस प्रकार की चिकित्सा का उदेश्य रोगी के वर्तमान के विश्वास को सुदृढ़ करना होता है रोगी की समस्याओं का उत्तर मूतकाल मे ढूढना अर्थ हीन होगा। जब वर्तमान, भूत या भविष्य के चिन्तनों में अन्तर होता है तो रोगी में चिंता उत्पन्न होती है इसलिए चिकित्सक चिकित्सा के दौरान कोशिश करता है कि रोगी का ध्यान उसके वर्तमान भावों, चिन्तनों एवं अनुभूतियों पर रहे।

2. इससे अनुभूतियों को स्वीकार करने की क्षमता जानकारी होती है।

3. गेस्टाल्ट चिकित्सा का एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि व्यक्ति अपनी क्रियाओं एवं भावो की जवाब देही अपने कधों पर लेता है। लेविटस्काई एवं पर्ल्स (1970) के अनुसार गेस्टाल्ट चिकित्सा में दो प्रविधियां सम्मिलित होती है एक के नियम दूसरे को खेल कहा जाता है इस चिकित्सा के कुछ नियम इस प्रकार है। इसमें रोगी को वर्तमान की अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए कहा जाता है तथा बीती यादो व भविष्य की बातो से दूर रखा जाता है बातचीत किसी विशेष व्यक्ति व विशेष रूप में नही की जाती है, बल्कि समान्तर की जाती है, इसमें इधर उधर की बातो पर ध्यान नही दिया जाता है इसके अर्न्तगत रोगी को मै तथा उत्तरदायित्व का अधिक से अधिक प्रयोग करने पर जोर दिया जाता हैं।

गेस्टाल्ट चिकित्सा में कुछ गेस्टाल्ट गेम्स भी किये जाते है गेम्स के अर्न्तगत रोगी को जोर जोर से बोलकर टिप्पणी व वाक्य को दोहराने के लिए कहा जाता है। इसमें रोगी भिन्न भिन्न तरह की भूमिका वाले गैम्स भी खेलने पड़ते है।

गेस्टाल्ट चिकित्सा में निम्नलिखित सप्रत्ययों को भी महत्वपूर्ण माना गया है क्योकि इन सबसे रोगी की वर्तमान अवस्थाओं को समझने में मदद मिलती है।

1. टाप डौग तथा अंडर डौग:-

गेस्टाल्ट चिकित्सा मे टापडौग से तात्पर्य करीब करीब वही है जो फ्रायड के सिद्धांत मे उपाह का है जब व्यक्ति के इन दोनो पहलुओं में सघर्ष होता है तो रोगी को माध्यकम से इन दोनो की भूमिका करने पडती है ताकि आत्म के इन दोनो पहलुओं को आपस में समन्वित कर सके।

2. स्वप्न:-

गेस्टाल्ट चिकित्सा सत्र के दौरान रोगी को अपपने स्वप्न के बारे मे वर्तमान काल का उपयोग करते हुए बतलाना होता है और इस तरह से उसे स्वप्न के विषय के अनुरूप भूमिका करनी होती है।

3. रक्षाएँ-

गेस्टाल्ट चिकित्सक का कार्य रक्षात्मक तह को हटाकर रोगी को वास्तविकता से अवगत कराना हेाता हे इस तरह की वास्तविक जानकारी होने से रोगी मे सम्पूर्णता एवं प्रफूल्लता आती है।

4. अशाब्दिक व्यवहार का उपयोग:-

चिकित्सक को चिकित्सक सत्र के दौरान क्लायंट क्या कहता है तथा वह क्या करता है पर काफी ध्यान देना होता है उनके इन अशाब्दिक व्यवहारो से कुछ ऐसे महत्वपूर्ण सूचनाएँ मिलती है जो क्लायंट द्वारा बोलकर दी सूचनाओं के विपरीत हाती है और वे चिकित्सा के लिए काफी महत्वपूर्ण है। इससे क्लायंट द्वारा उपयोग किया गया रक्षात्मक प्रतिक्रियाओं का वास्तविक अर्थ समझने में मदद मिलती है।

गेस्टाल्ट चिकित्सा में वर्तमान, उत्तर दायित्व अनुभव तथा अभिज्ञा पर अधिक बल डाला जाता हैं यह सरल व सुगमविधि है।

4. लोगो चिकित्सा (Logo Therapy):-

लोगो चिकित्सा की प्रविधि फ्रेक्ल द्वारा विकसित की गयी। यह विधि अस्तित्वात्मक सिद्वान्तों पर आधारित है अत कुछ लोगो ने इसे अस्तित्वात्मक चिकित्सा का ही एक भाग मना हैं

लोगो चिकित्सा में लोगो से तात्पर्य अर्थ से होता है। इसे शब्दिक भाषा में अर्थ पर अधारित चिकित्सा कहा गया है। इस तरह की चिकित्सा में व्यक्ति की जिंदगी में अर्थहीनता के भाव से उत्पन्न होने वाली समस्याओं एवं चिन्ताओं की दूर किया जाता है।

फैक्ल के अनुसार व्यक्ति का सबसे प्रमुख अभिप्रेरक अर्थ की इच्छा होता है अर्थ की इच्छा से तात्पर्य अपनी जिन्दगी के आध्यात्मिक एवं मनोवैज्ञानिक पहलुओं के अर्थ एवं संगतता को वास्तविक ढंग से समझकर उसके अनुरूप व्यहार करना होता है। जब व्यक्ति अपनी जिंदगी के आध्यात्मिक या दार्शनिक समस्याओं एवं प्यार तथा जीवन मुत्यु आदि से संबंधित अर्थ मे दिशाविहीनता उत्पन्न हो जाती है तो इससे उसमे अस्तित्वात्मक कुणा उत्पनन

हो जाती है जिसे व्यक्ति पहले अपने स्तर से दूर करने की कोशिश करता है जब कुठा की मात्रा अधिक होकर नियंत्रण से बाहर हो जाती है तो स्नायुविकृत कहा जात है इस तरह की स्नायु विकृति मे अन्तोंद अभिप्रेरक या मूलप्रवृतियों के बीच किसी तरह का संधर्ष नही पाया जाता है बल्कि व्यक्ति के नैतिक सिद्वांतो का टकराव से उत्पन्न संधर्ष को दूर करना लोगो चिकित्सा का उदेश्य है। इस चिकित्सा में रोगी को अपनी जिंदगी के उत्तरदायित्व से जानकारी कराने की कोशिश की जाती है।

लोगो चिकित्सा की दो विधियां अधिक लोगप्रिय हैं

1. परस्पर विरोधी अभिप्राय विधि 2. अधिंतन प्रविधि।

ये दोनो प्रविधियां अन्य स्नायुविकृति में मनोग्रसित बाध्यता व दुर्भीति के रोगियों के उपचार के लिए लोकप्रिय है।

लोगो चिकित्सा में आत्मानिष्ठता अधिक व वस्तुनिष्ठता कम है। इसमें क्रमबद्वता नही है। कुछ सप्रत्यंय ऐसे हैं जिसे समझना कठिन है।

5. अस्तिवत्व वादी चिकित्सा:-

अस्तित्वपरक चिकित्सा का उदेश्य संबंधित रोगी को उसके भावो अनुभावों व मूल्यों की संवृद्धि व आत्म सिद्वि के मार्ग का पता लगाने व उस पर ही चलने को उत्साहित तथा प्रोत्साहित करना होता है।

इस चिकित्सा विधि के प्रमुख समर्थक विन्सवैन्गर 1942 तथा एन्जिल एवं एलेन वर्गर 1958 है इस चिकित्सा विधि में रोगी के उपचार या चिकित्सा में कोई निश्चित कार्य विधि नही अपनायी जाती है। परन्तु इसमें प्रत्येक व्यक्ति की वैयवित्ता तथा उसके मूल्यों एवं भावों को समझकर रोगी स्वस्थ्यकर अस्तित्व के लिए एक माहौल तैयार किया जाता है।

अस्तित्ववाद में व्यक्ति के स्वतंत्र इच्छाओं तथा उत्तरदायित्व पर अधिक जो दिया जाता है इसमें वह चिन्ताऐ अधिक महत्वपूर्ण है जिसे व्यक्ति अपनी जिंदगी में मुख्य पंसद या चयन करने में अनुभव करता है ऐसे चयन को अस्तित्वादी चयन कहा जाता है। ऐसे चयन पर व्यक्ति का व्यक्तित्व निर्भर करता है किसी अभुक नौकरी करना या ना करना अस्तित्वादी चयन का एक उदाहरण है व्यक्ति को जीवित रहने के लिए उन चिन्ताओं में अवगत होना चाहिए जो अस्तित्ववादी चयन से उत्पन्न होती है। यह चिन्ताऐ अत्यधिक रूप में है।

यह चिन्तन कि हम लोग एक दिन मर जायेगे, अस्तित्वादी चिन्ता उत्पन्न करना है, यह चिन्तन कि हम लोग अकेले है अस्तित्वादी चिंता उत्पन्न करता है।

अस्तित्वादी चिकित्सा का उदेश्य की उक्त तरह की चिंताओं सु मुक्त करना होता है। चिकित्सक विन्सवैनम्गर (1942) द्वारा विकसित विधि जिसे डेजिन एनालिसिस (**Daesein Analysis**) की संज्ञा दी गयी है का भी अनुसरण करते हैं

लाभ-अलाभ-

1. अस्तित्वादी चिकित्सा रोगी अपने भीतर छिपे अन्त शक्ति से अवगत कराकर उसे अर्थ पूर्ण ढंग से जीवित रहने की प्रेरणा दी जाती है।

2. इसमें क्लायंट अपने अस्तित्व को समझने की कोशिश करता है और अस्तित्वादी स्नायुविकृति के लक्षणो को स्थायी रूप से दूर करने में काफी सहायता मिलती है।

3. अस्तित्व वादी चिकित्सा क्लायंट को व्यक्तिगत अनुभूतियों पर अधिक निर्भर करता है।

4. अस्तिव्ववादी चिकित्सा को एक चिकित्सा प्रविधि न कहकर चिकित्सा द्वारा अपनाया गया एक सामान्य मनोवृति कहना अधिक उचित हैं।

11.4 फ्रायडियन मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा

मनोचिकित्सा के इतिहास मे फ्रायड पहले ऐसे व्यक्ति थे जिन्होने मानसिक विकृतियों से ग्रसित व्यक्तियों के उपचार में मनोवैज्ञानिक विधियों का वैज्ञानिक प्रयोग किया। इनके द्वारा प्रतिपादित विधि को मनोवैश्लेषिक चिकित्सा या मनोगतिकी चिकित्सा कहा है।

फ्रायड द्वारा प्रतिपादित चिकित्सा में व्यक्ति के दामित इच्छाओं, चिन्तन, सघंर्ष एवं डर आदि पर मनोवैश्लेषिक दृष्टि कोण से स्पष्ट किया जाता है कि ऐसे संधर्ष, इच्छाओं, डर आदि को अचेतन से बाहर निकालकर उसमें उत्पन्न होने वाले संवेगात्मक एवं समयोजन संबंधी कठिनाईयों को रोगी ठीक प्रकार सुलझा सके।

इसके अन्तर्गत व्यक्ति के अचेतन में दमित अन्द्वन्दो व मानसिक विषय जालो को मुक्त साहचर्य, स्वप्न विश्लेषण तथा कभी कभी दैनिक जीवन की त्रुटियों व विस्मृतियों के संकेतो के आधार पर किया जाता है इस प्रविधि में चिकित्सा को मनोविश्लेषिक या संक्षेप में विश्लेषज्ञ भी कहा जाता है इस विधि को निर्देशात्मक चिकित्सा कहा जाता हैं

मनोविश्लेषण की विधियां:-

1. स्वतंत्र सहचर्य की अवस्था:-

इसके अन्तर्गत रोगी को एक कम प्रकाश वाले कमरे में आरामदार विस्तर पर लिटा दिया जाता है तथा चिकित्सा पीछे बैठ जाता है फिर चिकित्सक रोगी से साधारण ढंग से बातचीत करके सौहार्दपूण्र संबंध स्थापित करते है और रोगी से अनुरोध करते है कि उसके मन मे जो भी कुछ आता जाए बह बिना किसी संकोच के कहता जाए, चाहे वे सार्थक हो या निरर्थक हो नैतिक हो या अनैतिक। रोगी द्वारा कही गई सारी बातो को चिकित्सक ध्यान से सुनता है और यदि उसे कोई परशानी होती है तो चिकित्सक उसे दूर करता है। इस प्रविधि को स्वंतत्र साहचर्य की विधि कहा

जाता है जिसका उदेश्य रोगी के अचेतन में छिपे अनुभवो, मनोलैंगिक इच्छाओं एवं मानसिक संधर्षो को चेतन स्तर पर लाना होता है।

जब तक मनोचिकित्सक के विचार में मनोविश्लेषण का उदेश्य पूर्ण नही होता तब तक मुक्त साहचर्य का कार्यक्रम निरन्तर चलता रहता है। यह पद्वति अति दीर्धकालिक जाटिल तथा खचीली पद्वति है इसकी सफलता की कोई गारण्टी नही है अत इसका उपयोग व्यापक स्तर पर ना होकर प्राय कुछ विशिष्ट स्थितियों में होता है।

2. प्रतिरोध की अवस्था:-

प्रतिरोध की अवस्था स्वंतत्र साहचर्य की अवस्था के बाद उत्पन्न होती है जब रोगी चिकित्सक को मन में आने वाले विचारो को बताते बताते रूक जाता है व चुप हो जाता है वह कुछ बनावटी बाते करने लगता है इस अवस्था को प्रतिरोध की अवस्था कहा जाता है यह अवस्था तब उत्पन्न होती है जब किसी शर्मनाक घटना व चिन्ता उत्पन्न करने वाली बात को बताते हुए चुप हो जाता है।

प्रतिरोध को खत्म करनेके लिए वह सुझाव सम्मोहन, लिखकर विचार व्यक्त करने, पेन्टिग , चित्राकन आदि का सहारा लेता है।

3. स्वप्न विश्लेषण की अवस्था:-

रोगी के अचेतन में दमित प्रेरणाओ, बाल्यावस्था की मनोलैगिक इच्छाए ,मानसिक संधर्षो को चेतन स्तर पर लाने के लिए विश्लेषक रोगी के स्वप्न का अध्ययन कर उसका विश्लेषण करता है। स्वप्नो का विश्लेषण करके चिकित्सक रोगी के अचेतन के संधर्षो एवं चिन्ताओं के बारे मे जान पाता है और रोगी के स्वप्नों के अत्यक्त विषयो के अर्थ को चिकित्सक उसे समझाता है। जिससे रोगी को अपने आप मानसिंक संधर्ष एवं संवेगात्मक कठिनाई को समझने से सहायता मिलती है।

4. स्थानान्तरण की अवस्था:-

चिकित्सा के दौरान जैसे जैसे रोगी एवं चिकित्सक के बीच अन्त क्रिया हो जाती है, दोनो के बीच जटिल एवं सांवेगिक नये संबंध बनते है रोगी अक्सर अपने गत जिंदगी में जैसी मनोवृति शिक्षक, माता या पिता या दोनो के प्रति बना रखा था, वैसी ही मनोवृति वह चिकित्सक के प्रति विकसित कर लेता है। इसे स्थानान्तरण कहते है स्थानान्तरण विकसित होने से रोगी शांत मन से एवं पूर्ण विश्वास के साथ अपने विचारो की अभिव्यक्ति करता है।

स्थानन्तरण तीन प्रकार का होता है।

1. धनात्मक स्थान्तरण:-

इसमें रोगी विश्लेषक के प्रति अपने स्नेह एवं प्रेम की प्रतिक्रियाओं को दिखलाता है।

2. त्रृणात्मक स्थानान्तरण:-

इसमें रोगी विश्लेषक के प्रति अपनी धृणा एवं संवंेगात्मक विलगाव की प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति करता है।

3. प्रति स्थानान्तरण:-

इसमें विश्लेषक ही रोगी के प्रति स्नेह, प्रेम एवं संवेगात्मक लगाव दिखता है।

4. समापन की अवस्था:-

रोगी मे सूझ का विकास हो जाने से चिकित्सक रोगी से धीरे धीरे संबंद्व विच्छेद करने का प्रयास करता है चिकित्सक को संबंध विच्छेद अचानक नही करना चाहिए कभी कभी अचानक संबंध विच्छेछ करने से नये लक्षण प्रकट होने का डर रहता है।

मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा अधिक स्थायी होती है रोग के उपचार के बाद इसके लक्षण दोबारा नही दिखते है यह प्रविधि हिस्ट्रीरिया, स्नायुविकृत विषाद, अर्न्तमुखी तथा कम अभिप्रेरित रोगियों के लिए सबसे अधिक प्रभावकारी माना गया है।

इस विधि द्वारा उपचार में काफी समय लगता है इस विधि द्वारा उपचार में एक रोगी को प्रति हफते तीन से पांच बार तक लगातार कई महिनों तक बल्कि कई वर्षो तक चिकित्सक के पास जाना पडता है यह अधिक खचीर्ली विधि है जिसका लाभ धनी व्यक्ति ही उठा पाते है इस विधि का उपयोग काफी छोटे बालको या काफी बूढे लोगो पर नही किया जा सकता है यह चिकित्सा विंशेषकर उन रोगियों के लिए लाभप्रद है जो अपना आत्म मूल्यांकन यह अपनी अस्थाओं मे सूझ को विकसित करना चाहते है।

11.5 मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा के लक्ष्य:-

मनोविश्लेषणात्क, चिकित्सा का लक्ष्य रोगी को अपने आप को उत्तम ढंग से समझने में मदद से होता है ताकि रोगी समायोजी ढंग से सोच सके तथा उसके अनुरूप व्यवहार करने का वास्तविक कारण क्या होता है जो प्राय अचेतन में होते हे तथा उनको जब हय स्पष्ट होता है कि ये कारण ठोस एवं वैध नही है तो वह कुसमायोज ढंग से व्यवहार करना बन्द कर देता है इस प्रकार से रोगी मे उत्पन्न हुए लक्षण समाप्त होने लगते हैं|

फ्रायड 1935 ने मनोविश्लेणात्मक चिकित्सा के लक्ष्य को स्पष्ट करते हुए कहा है कि रोगी का अंह उसके आंतरिक मानसिंक संधषो से कमजोर पड़ जाता है इन मानसिंक संधर्षो में उपाह का मूल प्रवृत्तिक भग तथा पराह की नैतिकतापूर्ण मांग का महत्पूर्ण योगदान होता है चिकित्सक रोगी को इन मानसिक संधर्षो से उत्पन्न समस्याओं में उनहे मदद करता है इस उदेश्य से रोगी तथा विश्लेषक दोनो मिलकर पराह तथा उपाह की प्रवृतियों से निबटने के लिए कार्य करते है इसमें रेागी व चिकित्सक एक दूसरे की सहायता करते हैं।

विश्लेषक उन सामग्रियों को जो रोगी के अचेतन द्वारा प्रभावित हो चुका है की नयी व्याख्या करता है जिससे रोगी को अपनी अज्ञानता तथा भूल का एहसास हो जाता है।

मनोविष्लेषणात्मक उपचार के तीन मुख्य उदेष्य है-

1. रोगी के समस्यात्मक व्यवहार के कारणो में बौद्विक एवं सांवेगिक सूझ विकसित करना होता है इस तरह की सूझ रोगी में एक दो मनोविश्लेणात्मक सत्र में न विकसित होकर कई सत्रो से गुजरने के बाद विकसित होता है।

2. रोगी में सूझ विकसित होने के बाद उस सूझ का आशय के बारे मे पता लगाना है।

3. धीरे धीरे रोगी के उपाह तथा पराह की क्रियाओं पर अंत के नियत्रण को बढाना होता है।

लक्ष्यों को प्राप्त करने की प्रक्रिया में रोगी के व्यक्तित्व का क्रमिक पुर्नसंरचना सम्मिलिति होती है यह प्रक्रिया बहुत लम्बर चलती है करीब 3 से 5 सत्र प्रति सप्ताह 2 साल से 15 साल तक चलती है इसकी फीस भी अधिक है इसमें उच्च स्तरीय चिकित्सीय कौशल की आवश्यकता होती है।

11.6 अंह वैश्लेषिक चिकित्सा (Ego Analytic Therapy):-

अंह वैश्लेषिक चिकित्सा में अहं कार्य उपाह तथा वास्तविक दुनिया के उलझनों की सुलझाने में मध्यस्ता ही करना नही है बल्कि और भी अन्य महत्वपूर्ण कार्य करना है। अंह कार्य अचेतन के संघार्षो य उलझनों को सुलझाने तथा दुश्चिनता से बचाने के अतिरिक्त भी कुछ है मनोवैज्ञानिकों के अनुसार अहम् के अन्य कार्यो में समायोजी कार्य तथा उलझन मुक्त कार्य भी है जिसमें स्मृति, सीखना तथा प्रत्यक्षण आदि भी सम्मिलित होते है

मनोवैज्ञानिकों का एक समूह ऐसा है जो फ्रायड द्वारा प्रतिपादित नियमों एवं संप्रत्यायो को एडलर के समान पूर्णत अस्वीकृत न करके उसमें कुछ परिमार्जन किया है और उसे अपनी चिकित्सा पद्वति में उपयोग किया है इस समूह की अंह वैश्लेषिक कहा गया है। इनमें हार्टमान फ्रायड की सुपुत्री अन्ना फ्रायड, क्रिस इरिक्सन तथा रेपापोर्ट मुख्य रूप से मशहूर है।

1. अंह विश्लेषको द्वारा प्रतिपादित चिकित्सा फ्रायड द्वारा प्रतिपादित चिकित्सा का लक्ष्य पुर्ना शिक्षणीय होता है जबकि फ्रायडियन मनोविश्लेषिक चिकित्सा का लक्ष्य पुनसरर्चनात्मक होता है।

2. अंह विश्लेषको की चिकित्सा में शैशावास्था की अनुभूतिया तथा स्थानांतरण स्नायुविकृति पर फ्रायडियन मनोवैश्लेषिक चिकित्सा की तुलना में कम बल डाला जाता है।

3. अंह विश्लेषिक चिकित्सा में व्यक्ति के वर्तमान समस्याओं पर अधिक जबकि फ्रायडियन मनोविश्लेषिक चिकित्सा में व्यक्ति के गत जिंदगी की अनुभूतियों पर अधिक बल डाला है।

अंह विष्लेषिक चिकित्सा में चिकित्सक निम्नांकित पूर्वकल्पना करके चिकित्सा कार्य करता है-

1. मानवन व्यवहार का निर्धारण मूल प्रवृति द्वारा न होकर अंह द्वारा किये गये विभिन्न कार्यो द्वारा होता है।

2. मूल प्रवृत्ति या उपाह तथा वास्तविकता से अलग हटकर अंह की स्वायक्ता होती हैं|

3. अंह समायोजी सीखना तथा पर्यावरणी निपुणता के लिए ऐसा प्रणोद उत्पन्न करता है जो लैगिक तथा अक्रामक मूल प्रवृति से भिन्न होता हैं।

4. महिला लैगिकता पुरूष लैगिकता से कम न होकर समकक्ष होता है।

5. उपांह, (**Id**) अंह (**Ego**) तथा पराहम (**Super Ego**) द्वारा व्यक्तित्व की संरचना की संन्तोषजनक व्याख्या नही होती है।

6. सर्जनात्मकता तथा अनुराग प्रणोद के लिए व्यक्ति मे अन्तःशक्ति छिपी रहती है।

7. विशेष क्रिया तथा लचीलेपन को मनोचिकित्सा के लिए आवश्यक माना है।

8. अंह वैश्लेषिक चिकित्सा को करते समय कुछ बातो पर ध्यान आवश्यक रखना चाहिए।

सबसे पहले क्लांयट के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध स्थापित करके उसकी वर्तमान समस्याओं के बारे में सोचकर बताने का आग्रह किया जाता है जिससे उसे मनोविश्लेषण की पुरानी विधियों जैसे स्वप्न विश्लेषण तथा स्वतत्र साहचर्य का उपयोग ना करना पडे तो अधिक अच्छा रहेगा। क्लायंट को विशेष तरह की अनुभूतियों जैसे माता पिता के साथ उलझनो एवं भयानक अनुभूतियों के बारे बताने को कहा जाता है चिकित्सा क्लायट के भीतर विशेष सुझाव देकर वर्तमान समस्याओं को सुलझाने में सूझ उत्पन्न करता है जब क्लायंट समस्याओं को सुझलाने के लिए अपने आप सक्षम हो जाता है तो चिकित्सक क्लायंट से धीर धीरे मिलना कम कर देते है।

अंह वैष्लेषिक चिकित्सा के गुण दोष:-

1. ब्लैक एवं ब्लैक (1974) के अनुसार इस चिकित्सा पद्वति में क्लायंट के वर्तमान लक्षणो तथा उनसे संबंधित घटनाओ के बीच के संबंध को समझने पर बल दिया जाता है अत चिकित्सा का परिणाम स्थायी एवं प्रभावी होता है।

2. इसमें रोगी के चिकित्सीय संबंध में पुनर्शिक्षा के माध्यम से विश्वास उत्पन्न किया जाता है इसलिए इस चिकित्सा विधि द्वारा रोगी के कुसमायोजी रोगी के स्नायुविकृत पहलुओं को ही नही बल्कि भावात्मक पहुओं की अन्तक्रियाओ को भी समझता है इसमें समग्रता तथा गहनता का विशेष गुण होता हे।

3. इसमे चिकित्सक रोगी के स्नायुविकृत पहलुओं को ही नही बल्कि भावात्मक पहलुओं की अन्तक्रियाओं को भी समझता है इसमें समग्रता तथा गहनता का विशेष गुण होता है।

दोष-

1. इसमें अंतरण तथा स्वंतत्र साहचर्य जैसी विधियों को महत्व नही दिया जाता है अत चिकित्सा प्रक्रिया का परिणाम निर्भर योग्य नही होता है।

2. इस चिकित्सा पद्वति में स्वतप्न विश्लेषण जैसी विधियों का उपयोग न के बराबर किया जाता है जिससे इसकी वैधता पर आंशका होती है।

विनर (1976) के अनुसार अह वैश्लेषण उपागम में बहुत सारे योग्य चिकित्सकों के विचार किसी एक पद्वति के सैद्वान्तिक उत्केन्द्रता या विशिष्ट शब्दावली से जुढे हुए बिना ही सम्मिलिति होते है और चूकि यह व्यक्तित्व विकास तथा मनाविकृति के बहुचार्चित मनोगत्यात्मक सम्प्रत्यायों से संबंधित है।

11.7 वस्तु संबंध चिकित्सा (Object Releation Therapy) :-

मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण विकल्प वस्तु संबंध चिकित्सा है जिसका आधार वस्तु संबंध सिद्धांत हैं| इस सिद्धांत का प्रतिपादन कई ब्रिटिश विश्लेषको जिसमें फेयरर्वेन (1952), विनिकोट (1965) क्लिन (1975) मार्गरेट मेहलर (1975), ओटो कर्नवर्ग (1976) एवं कोहूट (1983) आदि के नाम मुख्य है ,द्वारा किया गया।

वस्तु संबंध सिद्वांत में माँ शिशु अन्तक्रिया से उत्पन्न होने वाले अंतर्वैयक्तिक क संबंध तथा अंह की शक्ति एवं सरंचना पर उसके पडने वाले प्रभाव का अध्ययन किया जाता है |जब इन संबंधो का स्वरूप् कुछ ऐसा होता है कि शिशु महत्वपूर्ण आरभिक आवश्यकताओं की पहचान नही कर पाता है और उसका संगठित सम्पूर्ण आत्म का विकास नही हो पाता है तो उसका आत्मन् दोषपूर्ण हो जाता है जो शिशु की जिंदगी में आगे चलकर व्यक्तित्य विकृति के रूप प्रदर्शित होता है।

चिकित्सा सत्र के दौरान विश्लेषक का मुख्य कार्य एक अनुक्रियाशील, हार्दिक एवं परानुभूतिपूर्ण, आत्मवस्तु के रूप् मं अपने आप का पेश करना होता है ताकि रोगी अपने शिशुकाल मे आरभिक आवश्यकताओ की पहचाना नही कर पाता है तो उसका संगठित सम्पूर्ण आत्म का विकास नही हो पाता है और उसका आत्मन दोषपूर्ण हो जाता है जो शिशु की जिंदगी में आगे चलकर व्यक्तित्य विकृति के रूप प्रदर्शित होता है।

चिकित्सा सत्र के दौरान विश्लेषक का मुख्य कार्य एक अनुक्रियाशील, हार्दिक एवं परानुभूतिपूर्ण, आत्मवस्तु के रूप मे अपने आप को पेश करना होता है ताकि रोगी अपने शिशुकाल के आरंभिक आवश्यकताओं की अभिवयक्ति करने में प्रोत्साहित हो सके। इससे रोगी का आत्मन् पूर्ण होता है और प्रक्रिया को आत्मपूरण कहा जाता है।

कोहर 1983 ने आत्मपूरण के लिए तीन तरह के आत्म वस्तु हस्तांतरण महत्वपूर्ण बताये है-

1. दपर्ण हस्तांतरण 2. आदशत्मिक हस्तांतरण 3. सर्वसम हस्तान्तरण।

वस्तु संबंध चिकित्सा में कुछ चरण निम्नांकित है-

1. प्रथम चरण में रोगी के साथ सौहार्द पूर्ण संबंध स्थापित करके एक उत्तम आत्म वस्तु की भूमिका प्रदान करता है।

2. एक ऐसा चिकित्सा संबंध स्थापित किया जाता है कि जिसे आवश्यकता तुष्टि सबंध कहा जा सके। इस चिकित्सीय संबंध को रोगी के लिए एक दूसरा ऐसा समान अवसर मानते है जिससे रोगी शौशवस्था में प्राप्त करने वाली संन्तुष्टि से , वंचित रह जाता है आसानी से प्राप्त कर लेता है।

3. इस चरण में रोगी में यह ज्ञान विकसित हो जाता है कि उसका वर्तमान व्यक्तित्व उलझन किस तरह से आरम्भिक सांवेगिक वंचनो से उत्पन्न हुआ है।

4. अंतिम चरण में विश्लेषक रोगी से अपना संबंध धीरे धीरे विच्छेदित कर लेता है।

वस्तु चिकित्सा के गुण:-

1. इसमें आवश्यकता तुष्टि संबंध विकसित करने कपर बल डाला जाता है इससे रोगी में आरंभिक सांवेगिक वचनो की क्षतिपूर्ति तेजी से होती है।

2. इससे अंह समर्थन तथा स्वीकृति पर अधिक बल डाला जाता है फलत रोगी में उत्पन्न मनौवैज्ञानिक आघात वंचनो की क्षति पूर्ति तेजी से दूर हो जाते है|

दोष-

1. क्लासिकी मनोविश्लेषकों ने वस्तु संबंध चिकित्सा के परिणाम पर शक जाहिर करते हुए कहा कि इसके द्वारा कहाँ तक निदान हो पायेगा कहना मुश्किल है क्याकि इसमें मात्र उन्हे स्नेह या अनुराग द्वारा चिकित्सा पर बल डाला है।

11.8 अंतर्वैयक्तिक मनोगत्यात्मक चिकित्सा (Interpersonal Psychodynamic Therapy) :-

अंतर्वैयक्तिक मनोगत्यात्मक चिकित्सा का प्रतिपापदन हैरी स्टे सुलिभान द्वारा किया गया इस चिकित्सा में रोगी तथा उसके सामाजिक वातावरण पर जोर दिया गया है सुलिमान को नव फ्रायडियन भी कहा जाता है उनके अनुसार माता पिता तथा बच्चो के अंतर्वैयक्तिक संबंध में विघटन से उत्पन्न होता है

सुलिभान के अनुसार चिकित्सक अंतर्वैयक्तिक क संबंधो का एक विशेषज्ञ होता है जो रोगी को स्पष्ट करता है कि किस प्रकार उसका संज्ञान तथा संबंधित दोषपूर्ण व्यवहार शैली उसे अपनी जिंदगी उत्तम ढंग से जीने में कठिनाई उत्पन्न कर रहा है। जब रोगी इस पहलू को समझ लेता तो वह अधिक समायोजनशील तरीको से व्यवहार करने के लिए प्रेरित हो उठता है।

सुलिभान द्वारा प्रतिपादित चिकित्सा में फोर्ड एवं अर्वन 1963 के निम्नांकित चरण सम्मिलित है-

1. पहले चरण में चिकित्सक रोगी की प्रमुख समस्याओं की समीक्षा करता है।
2. दूसरे चरण में उन व्यवहारों का पता लगाया जाता है जो उसकी समस्या में जुडे होते है।
3. तीसरे चरण में समस्या के सामान्य रूप रेखा या प्रकार के बारे में एक निर्णय लिया जाता है।
4. चौथे चरण में रोगी की सम्पूर्ण अनुक्रियाओं का सावधानी पूर्वक एवंम विस्तृत अध्ययन किया जाता है|
5. पाचवे चरण में रोगी के चिन्ताओं परिवर्तन पैटर्न तथा वह अंतर्वैयक्तिक परिस्थिति जिसमें वह होते है उनका पता लगाया जाता है।
6. छटे चरण में रोगी को इन विभिन्न पैटर्नो के बारे में विस्तार रूप् से बताया जाता ह।
7. सातवें चरण में रोगी को दुश्चिताओं का व्यवहार पर पडने वाले प्रभावो से अवगत कराया जाता है।
8. आठवे चरण में रोगी में चिन्ता की तीव्रता धीरे धीरे कम हो जाती है क्योकि उसे अपनी चिन्ता का कारण समझ आ जाता है।

मनोगत्यात्मक अंतर्वैयक्तिक चिकित्सा का समकालीन उदाहरण क्लरमैन तथा विसमैन द्वारा प्रतिपादित अंतर्वैयक्तिक क चिकित्सा है इसमें सम्मिलिति चरण लगभग वही है जो सुलिभान के चिकित्सा पद्वति में है तथा विषाद के रोगियों के लिए अधिक लाभकारी बताया है।

अंतर्वैयक्तिक मनोगत्मात्मक चिकित्सा के गुण तथा दोष-

1. इस तरह की चिकित्सा विषाद, मनोदशा तथा व्यक्तित्व विकृतियों के रोगियों के उपचार के लिए काफी लाभदायक सिद्व हुई है।

2. ऐसी चिकित्सा में एक समय मे रोगी के व्यवहारो मनोवृतियों एवं भावो के सीमित प्रसार पर ध्यान दिया जा सकता है।

11.9 स्वमूल्याकन हेतु प्रश्न–

i मनवतावादी अनुभवात्मक चिकित्सा किस प्रकार की चिकित्सा पद्वाति है?

ii मनवतावादी अनुभावात्मक चिकित्सा प्रयुक्त की गई चिकित्सा कौन कौन सी है?

iii क्लांयट केन्द्रित चिकित्सा का प्रतिपादन किस मनोवैज्ञानिक ने किया है?

iv क्यायंट केन्द्रित चिकित्सा को किन किन नामो से जाना जाता है ?

v गेस्टाल्ट चिकित्सा का प्रतिपादन किस मनोवैज्ञानिक ने किया ?

vi अस्तित्ववादी चिकित्सा के समर्थको के नाम उल्लेखित कीजिए |

vii मनोविश्लेषण की विधियां कौन कौन सी है?

viii वस्तु सबंध चिकित्सा के ब्रिटिश विश्लेषक कौन कौन है ?

11.10 सारांश

मानवतावादी अनुभवात्मक चिकित्सा से तात्पर्य रोगी को अपने लक्षणों को पहचानकर अन्तदृष्टि को विकसिक करना होता है। मानवतावादी अनुभावात्मक चिकित्सा में क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा, गेस्टाल्ट चिकित्सा लोगो चिकित्सा, अस्तित्वादी चिकित्सा पर अत्यधिक जोर दिया जाता है। फ्रायडियन मनौविश्लेषणात्मक चिकित्सा में रोगी के डर चिन्ताओं, दमित इच्छाओं को अचेतन से निकालकर उनमें सूझ विकसित करने का प्रयास करता है जिससे व्यक्ति अपने जीवन की कठिनाइयों को आसानी से समझ पाता है और समस्याओ का असमाधान करने मे सक्षम हो पाता है।

फ्रायडियन मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा में कोई विधिया प्रयुक्त की जाती है जिनमें कुछ इस प्रकार से है। 1. स्वतन्त्र साहचर्य की अवस्था 2. प्रतिरोध की अवस्था 3. स्वप्न विश्लेषण की अवस्था 4. स्थानान्तरण की अवस्था 5. समापन की अवस्था।

अहं वैश्लेषिक चिकित्सा से तात्पर्य अंह का कार्य व्यक्ति के लिए समायोजन संबंधी कार्य व किसी भी उलझन मुक्त कार्य से है इसमें स्मृति प्रत्यक्षण सीखना आदि भी सम्मिलित है अन्तवैयक्तिक मनोगत्यात्मक चिकित्सा में रोगी तथा उसके सामाजिक वातावरण पर जोर दिया जाता है रोगी का अपने समाजिक वातावरण के अंतर्वैयक्तिक क संबंधो को स्पष्ट किया जाता है।

11.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

i मानवतावादी अनुभवात्मक चिकित्सा चिकित्सा सूझ केन्द्रित चिकित्सा है।

ii मानवतावादी अनुभात्मक चिकित्स में प्रयुक्त् की गई चिकित्सा निम्न प्रकार से है। 1. क्लांयट केन्द्रित चिकित्सा। 2. गेस्टाल्ट चिकित्सा। 3. लोगो चिकित्सा। 4. अस्तित्व वादी चिकित्सा।

iii क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा का प्रतिपादन रोजर्स द्वारा किया गया।

iv क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा को व्यक्ति केन्द्रित चिकित्सा, अनिदेशित चिकित्सा की कहा जाता है।

v अस्तित्ववादी चिकित्सा के समर्थक विन्सवैन्गर, में ऐन्जिल तथा ऐलन वर्गर है।

vi मनोविश्लेषण की विधियां निम्न प्रकार से है।

1. स्वतत्र साहचर्य की अवस्था।
2. प्रतिरोध की अवस्था।
3. स्वटन विश्लेषण की अवस्था।
4. स्थानान्तरण की अवस्था।
5. समापन की अवस्था।

vii वस्तु सबंध चिकित्सा के ब्रिटिश विश्लेषक फेयरबेंक, विनिकोट क्लिन, मार्गरेट , मेहलर, ओटो कर्नवर्ग एवं काहूट आदि प्रमुख है।

11.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

i) Coleman, J.C. (1976) Abnormal Psychology & Modern Life, Taraporevala

ii) Davidson & Neale (1974) Abnormal Psychology, John Wiley

iii) Kapil, H.K. (2001)अपसामान्य मनोविज्ञान, भार्गव प्रकाशन, आगरा

iv) मखीजा और मरखीजा (2001) अपसामान्य मनोविज्ञान, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन आगरा।

v) सिंह ए.के. (2009) आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, बनारसी दास, दिल्ली

11.13 निबन्धात्मक प्रश्न

i) मानवावादी अनुभवात्मक चिकित्सा से क्या तात्पर्य है ?

ii) मानवतावादी अनुभावात्मक चिकित्सा में प्रयुक्त की गई चिकित्सा की विस्तार सहित विवेचना कीजिए ।

iii) फ्रायडियन मनोविश्लेषणात्क चिकित्सा से तात्पर्य क्या है मनोविश्लेषण की विधियों को विवेचिकत कीजिए |

iv) मनोवैश्लेषणात्मक चिकित्सा के लक्ष्य की व्याख्या कीजिए|

v) अंह विश्लेषक चिकित्सा तथा वस्तु संबंध चिकित्सा की व्याख्या कीजिए|

vi) अंतर्वैयक्तिक कता मनोगत्यात्मक चिकित्सा पर प्रकाश डालिए ।

इकाई-12 समूह चिकित्सा, अर्थ एवं प्रक्रिया, सामूहिक चिकित्सा के मॉडल सामूहिक चिकित्सा का मूल्यांकन, पारिवारिक चिकित्सा, अर्थ लक्ष्य और प्रकार, पारिवारिक चिकित्सा की समस्या एवं मूल्यांकन(Group therapy meaning and Process, Models or Approaches of group therapy, evalution of Group therapy, Family therapy, meaning, Goals and types, problem and evaluation of family therapy)

इकाई संरचना

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 सामूहिक चिकित्सा।
12.3 सामूहिक चिकित्सा का अर्थ।
12.3.1 सामूहिक चिकित्सा के प्रारूप।
12.3.3 सामूहिक चिकित्सा के कारक।
12.3.4 सामूहिक चिकित्सा के मॉडल या उपागम।
12.3.5 सामूहिक चिकित्सा का मूल्यांकन।
12.3.6 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न।
12.4 पारिवारिक चिकित्सा।
12.4.1 पारिवारिक चिकित्सा के लक्ष्य।
12.4.2 पारिवारिक चिकित्सा के प्रकार।
12.4.3 पारिवारिक चिकित्सा का उपयोग।
12.4.5 पारिवारिक चिकित्सा की समस्याएँ।
12.4.6 स्वमूल्यांकन प्रश्न
12.5 सारांश
12.6 शब्दावली
12.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.8 सन्दर्भ ग्रन्ध सूची
12.9 निबन्धात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

सामूहिक चिकित्सा जैसा कि नाम से ही ज्ञात होता है वैसी चिकित्सा पद्धति को कहा जाता है जिसमें एक साथ कई रोगियों का उपचार समूह में किया जाता है। इस तरह की चिकित्सा पद्धति का विकास द्वितीय विश्वयुद्ध में हुआ।

अधिकतर मानसिक समस्याओं की उत्पत्ति विशेषतौर पर सामाजिक संदर्भ में होती है जिसमें सामाजिक कारकों की भूमिका प्रधान होती हैं। इसी कारण इस चिकित्सा पद्धति में रोगियो का उपचार अलग अलग न करके एक समूह में किया जाने लगा। नैदानिक मनोवैज्ञानिक द्वारा तभी से इसे सामूहिक चिकित्सा कहा जाने लगा।

सामूहिक चिकित्सा में एसी परिस्थितियां उत्पन्न की जा सकती है जिसमें किया जाने वाला सामाजिक आदान प्रदान वास्तविक जीवन के अधिक निकट होता है इसी कारण से यह चिकित्सा पद्धति रोगी के सामजिक जीवन में अधिक प्रभावी एवं मूल्यवान सिद्ध हुई है।

सामूहिक चिकित्सा में रोगी को अपनी समस्याओं को सुलझाने में दूसरो की सहमति तथा सहायता मिल जाती है। समूह संदर्भ की स्थिति में रोगी को जीवन की वास्तविकता को व्यापक आधार पर मूल्यांकन करने का सुअवसर प्राप्त होता है।

पारिवारिक चिकित्सा एक विशिष्ट प्रकार की समूहि चिकित्सा ही है। इस चिकित्सा पद्धति में पारिवारिक समूह का एक इकाई के रूप में उपचार किया जाता है। ताकि पारिवारिक वातावरण रोगी के मानसिक स्वास्थ को ठीक बनाये रखने में प्रभावकारी हो सकें।

पारिवारिक चिकित्सा मे समूह के सदस्य अपरिचित न होकर एक ही परिवार के सदस्यगण होते है पारिवारिक चिकित्सा में चिकित्सक को रोगी के परिवार की चिकित्सा करना आवश्यक होता है। जिससे रोगीं के मानसिक स्वास्थय पर दोषपूर्ण वातारण का प्रभाव कम पड़े।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हम निम्न बिंदुओं को समझाने में सक्षम हो सकेंगे कि हम :

1. सामूहिक चिकित्सा का अर्थ।
2. सामूहिक चिकित्सा का प्रारूप।
3. सामूहिक चिकित्सा के कारक।
4. सामूहिक चिकित्सा की प्रक्रिया।
5. सामूहिक चिकित्सा के माडल या उपागम
6. सामूहिक चिकित्सा का मूंल्याकन।
7. पारिवारिक चिकित्सा का अर्थ
8. पारिवारिक चिकित्सा के लक्ष्य।

9. पारिवारिक चिकित्सा के प्रकार।

10. पारिवारिक चिकित्सा की समस्या।

11. पारिवारिक चिकित्सा का उपयोग।

12. पारिवारिक चिकित्सा का मूल्याकन ।

12.3 सामूहिक चिकित्सा का अर्थ -

सामूहिक चिकित्सा में रोगियों का उपचार एक समूह में किया जाता है, रोंगियों का यह समूह एक दूसरे से संबंधित भी हो सकता है या असंबंधित भी हो सकता है। जब यह समूह संबंधित व्यक्तियों का होता है तो उसे परिवारिक तथा वैवाहिक चिकित्सा तथा जब यह समूह असंबंधित व्यक्त्यिों का होता है तो उसे सामूहिक चिकित्सा कहा जाता है।

द्वितीय विश्व युद्ध में सैनिकों मे मानसिक रोगियों की संख्या इतनी अधिक हो गई थी कि इनके उपचार के लिए पर्याप्त संख्या में मनोचिकित्सक उपलब्ध नही थे इसके फलस्वरूप ही समूह चिकित्सा का विकास हुआ।

सामूहिक चिकित्सा का प्रारम्भ जोसेफ एच0प्राट द्वारा 1905 में किया गया। उन्होने इस चिकित्सा का उपयोग क्षय रोग से ग्रस्त रोगियों को डाक्टरो के उपचार संबंधी सुझावो तथा उनके दबे मनोबल को ऊँचा उठाने के लिए किया। लाजेल तथा मार्श ने मनोचिकित्सीय रोगियों के लिए सामूहिक चिकित्सा की प्रवधि को अपनाया।

सामूहिक चिकित्सा में जे0एल0 मोरेनो का योगदान काफी महत्वपूर्ण है जिन्होने वियाना में 1900-1910 के बीच सामूहिक चिकित्सा विधि पर अधिक कार्य किये और अमेरिका आने पर 1925 में मनोनाटक का प्रतिपादन किया जिसे समूह चिकित्सा की नई विधि कहा गया और इसे समूह चिकित्सा के पद के रूप में विश्लेषित किया।

“बुरो (Burrow) ने सामूहिक चिकित्सा को समूहिक विश्लेषण की संज्ञा दी, सामूहिक चिकित्सा का विकास नैदनिक संदर्भ के अतिरिक्त सामान्य शैक्षिक संदर्भ में भी हुआ। शैक्षिक संदर्भ में विकास 1945 - 1950 के बाद हुआ, शैक्षिक संदर्भ में सामूहिक चिकित्सा का उद्देश्य रोगात्मक संवोगिक विकृति का उपचार करना नही था बल्कि सामान्य लोगो के अन्तवैयक्तिक कौशलो, समायोजन क्षमता तथा संवेदनशीलता का उचित विकास करना था।

कर्ट लेविन तथा उनके सहायोगियों द्वारा समूह गत्यात्मकता के संप्रत्यय का विकास किया गया तथा इसके कुछ विधियों का भी प्रतिपादन किया गया। इस विधि मे टी ग्रुप विधि काफी लोकप्रिय है | इसे ट्रनिग ग्रुप विधि (Training Group Method) कहा जाता है।

सामूहिक चिकित्सा का महत्व आजकल अत्यधिक बढता जा रहा हे। सामूहिक चिकित्सा पद्धति न केवल व्यावहारिक स्तर पर सफल पाई गई बल्कि कुछ स्थितियों में वैयक्तिक चिकित्सा से भी अधिक उपयोगी व प्रभावी सिद्ध हुई है-

12.3.1 सामूहिक चिकित्सा के प्रारूप-

1. प्रबोध समूह चिकित्सा (Didactive Group Therapy):-

इस चिकित्सा पद्धति में व्याख्यान तथा विचार विर्मश होते है जो कि मनोचिकित्सक तथा मनौवैज्ञानिक करता है। इस चिकित्सा पद्धति का उदेश्य संबंधित रोगियों को विशेषत मद्यव्यसनियों को मदिरा से होने वाले दुष्परिणामों को उपदेशो नाटको एवं फिल्मों के माध्यम से समझाने व बताने से संबंधित होता है। इसका प्रयोग विशिष्ट रोगियों के अतिरिक्त नही किया जाता है। इस चिकित्सा पद्धति से आवश्यक सुधार होते भी देखे जाते रहे है। परन्तु यह चिकित्सा पद्धति अधिक प्रभावी सिद्ध नही हुई।

2. खेल चिकित्सा (Play Therapy):-

यह चिकित्सा पद्धति बच्चों पर प्रयुक्त की जाती है। इस चिकित्सा के अर्न्तगत बालकों के सम्मुख समस्या से संबंधित कुछ उद्दीपक परिस्थितियां उत्पन्न की जाती है और बालको को इनके प्रति अपनी स्वाभाविक प्रतिक्रियाएं व्यक्त करने के लिए प्रेरित किया जाता है। इसके अन्तर्गत कठपुतली का तमाशा, अगुंली चित्रण तथा अन्य ऐसी सर्जनात्मक क्रियाएँ आती है जो संवेगात्मक मोचन (Release)तथा पुनर्शिक्षण का माध्यम प्रदान करती है।

3. **प्रेरणात्मक समूह चिकित्सा (**Inspiration Group Therapy**)-** यह चिकित्सा पद्धति एक दूसरो के अनुभवों को बाँटने और धनात्मक सामूहिक संवेंगो पर अधिक बल देती है। इस चिकित्सा के अर्न्तगत रोगियों में एक दूसरे के साथ मिलकर कार्य करने के लिए अभिप्रेरित किया जाता है इससे वह एक दूसरे को अत्यधिक समझने का प्रयास करने लगते है। यह मद्यव्यसन के उपचार मे अधिक प्रभावी सिद्ध हुयी है। मद्यव्यसन अनामिक संस्था (Alcohalics AnonymouS) इसका एक रूप है।

4. साक्षात्कार समूह चिकित्सा (Interview Group Therapy**):-**

इस प्रविधि में रोगी स्वयं अपनी समस्याओ पर विचार विर्मश करते हैं और समूह के अन्य सदस्य को इसमें भाग लेने के लिए अभिप्रेरित करते हैं। इसके अर्न्तगत उन रोगियों का चयन किया जाता है। जिनमें समायोजन प्राप्त करने और सुधार के लिए स्पष्ट इच्छा होती है। समूह न तो अधिक विषम जातीय होना चाहिए और न ही समाजातीय । इस चिकित्सा के द्वारा रोगी अपने दमित संवेगात्मक द्धन्दो के समाधान ढूँढने का प्रयास करते है।

5. मनोविश्लेषणात्मक समूह चिकित्सा (Psychoanalytic group therapy)-

इसके अर्न्तगत अनेक रोगियो का मनोविश्लेषण वैयक्ति आधार पर न करके सामूहिक आधार पर किया जाता है। इसमें समूह के विभिन्न सदस्य मुक्त साहचर्य के द्वारा अपने अचेतन में दमित अन्तद्ध्न्द्धो व सघर्षो को खुलकर व्यक्त करते है।

6. परिवार चिकित्सा (Family Therapy):-

यह एक विशिष्ट प्रकार की समूह चिकित्सा हैं जो अत्यधिक लोकप्रिय है। व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास और समायोजन में परिवार का स्थान अधिक महत्वपूर्ण होता है रोगी के ठीक होने में परिवार का दायित्व अत्यधिक होता है यदि रोगी का पारिवारिक वातावरण दोषपूर्ण होगा तो रोगी के उपचार में कठिनाईयो का सामना करना पड़ता है। इन दोषपूर्ण कारकों को दूर करने के लिए पारिवारिक चिकित्सा अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

7. मनोनाटक (Psychodramas):-

मनोनाटक का विकास वियना के चिकित्सक मौरेना (1921) द्वारा किया गया। मनोनाटक विशेष रूप से आयोजित मंच पर खेला जाता है। इस नाटक के प्रमुख नायक रोगी, निदेशक अर्थात् चिकित्सक, सहायक पात्र अर्थात दूसरे रोगी व सहायक चिकित्सक और श्रोता समूह होते है।

8. वैवाहिक चिकित्सा (Marital Therapy):-

यह चिकित्सा पद्धति परिवाररिक चिकित्सा के अर्न्तगत आती है। वैवाहिक चिकित्सा के अन्तर्गत पति पत्नी दोनो को ही वैवाहिक जीवन के प्रति समायोजन के लिए पारस्परिक निष्ठा, समर्थन, अनुमोदन पर अत्यधिक बल दिया जाता है।

9. प्रतिरोधी समूह चिकित्सा:-

इस चिकित्सा के अन्तर्गत छ से लेकर बारह तक प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्तियों का एक ऐसा समूह होता है जो कि रोगियों के साथ साथ सामान्य व्यक्तियों को भी उनकी समस्याओं के सामाधान के व्यक्तिगत व प्रभावी उपायो को बतलाता है। ऐसे प्रशिक्षित प्रतिरोधी समूह को टी समूह कहा जाता है।

10. समाज सापेक्ष चिकित्सा (Sociotherapy):-

इस चिकित्सा पद्धति के मुख्य रूप से तीन रूप होते है। सर्वप्रथम इसका कार्य उन बालको की देख रेख करना होता है जिनका पालन पोषण उनके विकृतिजन पारिवारिक पर्यावरण में हुआ है जो कि स्वंय एक समस्या है। ऐसी स्थिति में बालक को उसके दोषपूर्ण पारिवरिक पर्यावरण से निकालकर उसको एक प्रतिपालक ग्रह में भरती कराने की आवश्यकता होती है।

क. सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका:-

प्रायः जो रोगी मनोचिकित्सालय के उपचार के पश्चात लौटकर अपने पारिवारिक जीवन में प्रवेश करते है, तो उनके प्रति भी समाजसापेक्ष चिकित्सा के रूप में सामाजिक कार्यकर्ता की अतिममहत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसके अन्तर्गत सामाजिक कार्यकर्ता रोगी से सम्बन्धित परिवार के सदस्यों को रोगी के प्रति विशिष्ट प्रकार की सद्भाव एवं सहानुभूति पूर्वक व्यवहार करने पर बल देने की सलाह देते है।

ख. परिवार की भूमिका:-

इसके अर्न्तगत परिवार में सदस्यो द्वारा रोगी के प्रति सकारात्मक व्यवहार पर जोर दिया जाता है।

ग. अनुवर्ती कार्य (Follow up work):-

इसके अन्तर्गत समाजिक कार्यकर्ता रोगी की उत्तर सेवा का अनुवर्ती कार्यक्रम भी बनातो है जिससे कही ऐसा न हो कि उत्तर सेवा के अभाव में रोगी को फिर से मनोचिकित्सालय में भरती करने की आवश्यकता पड़ जाये''

12.3.2 सामूहिक चिकित्सा के कारक--

यालोम (1975) ने सामूहिक चिकित्सा के ग्यारह कारको की विवेचना की है जो निम्नलिखित है।

1. प्रत्याशा:-

सामूहिक चिकित्सा व्यक्ति मे यह उम्मीद या प्रत्याशा उत्पन्न करता है कि उनकी सांवेगिक समस्याओं में परिवर्तन होगा।

2. सूचना प्रदान करना:-

सामूहिक चिकित्सा मे व्यक्ति मनोवैज्ञानिक क्षुब्धता, मनोगत्यात्मक, पुनर्वलन प्रसंभाव्यता आदि के बारे में सूचना प्राप्त करते है। व्यक्ति अपनी समस्याओ के बारे में समूह के विशिष्ट व्यक्ति या अन्य व्यक्तियों से सलाह, राय व निर्देशन भी प्राप्त कर सकता है इससे व्यक्तियों को समूह के बारे में सभी प्रकार की सूचनाएँ प्राप्त होती है।

3. सार्वभौमिकता (Universality) :-

सामूहिक चिकित्सा मे जब व्यक्ति अन्य व्यक्तियों की समस्याओं के बारे में सुनता है तब उसे ऐसा लगने लगता है कि उसकी चिंता आंशका, समस्याओ के समान ही दूसरे व्यक्ति भी इन्ही प्रकार की समस्यओं व चिन्ताओं से ग्रस्त है उसे अनुभव होने लगता है कि संसार मे वह ऐसा अकेला प्राणी नही है जो इस प्रकार की समस्याओ से जुझ रहा है इसका प्रभाव उस पर चिकित्सीय दृष्टिकोण से उत्तम प्रभाव पड़ता है।

4. परोपकारिता:-

सामूहिक चिकित्सा में समूह के सदस्यगण एक दुसरे व्यक्तियों को राय देते है। तरह तरह के प्रोत्साहन देते है तथा सहानुभूति दिखाते है। प्रोत्साहन तथा सहानुभूति की भावना से व्यक्ति को कभी भी ऐसा नही लगता है कि वह संसार में अकेला है। इस प्रकार के सामजिक समर्थन के आदान प्रदान से चिकित्सा का गुणकारी प्रभाव स्पष्ट देखने को मिलता है।

5. सामजिक कौशल का विकास:-

इस चिकित्सा मे जब व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों का सुधरात्मक पुननिवेशन (Corrective Feedback)प्राप्त होता है, तो वह अपने व्यवहार के त्रुटियों को सुधार लेता है। इस प्रकार के सामाजिक कौशल के विकास से परिणाम धनात्मक होने की सम्भावना तीव्र हो जाती है।

6. अनुकरणशील व्यवहार:-

समूह चिकित्सक तथा समूह के अन्य सदस्य नये तरह के व्यवहार को सीखने के लिए अनुकरणशील के रूप में मॉडल साबित होते है।

7. प्राथमिक पारिवारिक समूह के सुधारात्मक सार:-

सामूहिक चिकित्सा मे समूह एक परिवार की तरह होता है जिसमें चिकित्सक माता पिता तथा अन्य सदस्य भाई बहन की भूमिका में होते है इस तरह समूह रोगी के मौलिक परिवार द्वारा उत्पन्न घाव एवं अवरोधो को दूर करने मे सक्षम होता है।

8. अन्तर्वैयक्कि सीखना:-

सामूहिक चिकित्सा में व्यक्ति समूह के अन्य सदस्यों के साथ अन्त क्रिया करके समझने की शक्ति को विकसित कर लेता है। एक दूसरे के साथ रहने से व्यक्ति के दूसरे सदस्य अन्तवैयक्तिक संबंध बन जाते है। वह एक साथ तरह तरह के व्यवहार करना सीख लेता है। इस तरह समूह एक सामजिक प्रयोगशाला के रूप में कार्य करता है।

9. समूह समग्रता:-

समूह चिकित्सा में समूह में घनिष्ठता तथा एक होने का भाव एक सम्रग रूप से विकसित होता है। जिससे व्यक्ति को आराम, निश्चितता तथा प्रोत्साहन प्राप्त होने लगता है।

10. विरेचन (Catharsis):-

समूह के सुरक्षात्मक वातावरण में सदस्य अपने उन संवेगों एवं इच्छाओं को स्वतन्त्रता पूर्वक व्यक्त करने लगात है जो उसे कई वर्षो से परेशान करते आये है।

11. अस्तित्ववादी कारक:

सामूहिक चिकित्सा में व्यक्ति अन्य लोगो के साथ अन्तःक्रिया करने के बाद यह सीखते है कि व्यकित का जीवन, भीतर से ठीक व इतना सुन्दर नही होता है यद्यपि अन्य लोगो का संर्मथन व प्रोत्साहन मददगार साबित होता है फिर भी वे मौलिक रूप से अकेले है तथा उन्हे स्वंय से ही स्वस्थ्य जीवन के लिए प्रयास करना चाहिए|

12.3.3 सामूहिक चिकित्सा की प्रक्रिया (Process of Group Therapy)-

सामूहिक चिकित्सा की प्रक्रिया से तात्पर्य उन चरणो या कारकों की व्याख्या से होती है जिसमें होकर चिकित्सा का यह कार्य सम्पन्न किया जाता है। नैदानिक मनौविज्ञानिको के अनुसार इस प्रक्रिया मे निम्नाकित चार कारको को महत्वपूर्ण माना गया हैं।

1. औपचारिक व्यवस्था:-

सामूहिक चिकित्सा के लिए सदस्यों की सख्या 6 से 12 की होती है परन्तु 8 से 20 व्यक्तियों की सख्या अधिक उचित होती है इन सदस्यों को एक वृत्ताकार एवं खुले वातावरण में बैठाया जाता है। ताकि प्रत्येक सदस्य एक दूसरे का तथा चिकित्सक को ठीक ढंग से देख सके। समूह चिकित्सा में एक चिकित्सक होता है परन्तु कभी-कभी उनके सहयोगी भी हो सकते हैं। अगर दो चिकित्सक होते है तब एक स्त्री तथा एक पुरूष चिकित्सक होते है। चिकित्सा प्रारम्भ होने के बाद भी उसमें नये सदस्यो को शामिल किया जा सकता है।

2. समूह संगठन:-

समूह में 10 सदस्यों की सख्या उचित होती है परन्तु समूह यदि बहुत छोटा है या अधिक बडा है तो दोनो ही परिस्थिति मे समूह चिकित्सा की प्रभावशीलता में कमी आती है समूह का निर्माण करते समय कुछ बातो का ध्यान आवश्यक रूप् से रखना चाहिए। समूह के निर्माण में स्थिर -व्यामोही, मस्तिकष्कीय क्षति रोगी, समाज विरोधी व्यक्ति वाले रोगी, को समूह में समूह में सम्मिलित नही करना चाहिए आत्मरोगभ्रमी रोगीं समूह में व्यक्ति को शामिल करने के पहले प्राकमूल्यांकन कर लेना चाहिए जिससे स्पष्ट हो जायेगा की व्यक्ति को चिकित्सा की आवश्यकता है या नही। समूह तैयार करने से पहले यह निश्चय करना चाहिए कि समूह समजातीय हो या विषमजातीय हो।

3. समूह की अवधि:-

सामूहिक चिकित्सा कितने समय तक चलना चाहिए। समूहिक चिकित्सा सत्र कितने घंटे का होना चाहिए आदि कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न है जिसके बारे में चिकित्सक को निर्णय करना होता है। सामान्यता इसका सत्र डेढ से दो घंटे तक होता है जो सप्ताह में एक या दो बार होता है। प्राय सत्र सायंकाल में प्रस्तावित होता है।

4. सामूहिक चिकित्सा की भूमिका:-

सामूहिक चिकित्सा में न तो पूर्ण नियंत्रण रखकर और न ही उसे पूरी स्वंतत्रता देकर कार्य करना होता है। चिकित्सक को समूह में एक विशेष संस्कृति उत्पन्न करना होता है। तथा उसे संपोषित करना होता है|

12.3.4 सामूहिक चिकित्सा के मॉडल या उपागम -

सामूहिक चिकित्सा के कई माडल या उपागम का वर्णन नैदानिक मनोवैज्ञानिको द्वारा किया गया है इन माडलों को निम्नलिखित चार भागो में बाटाँ गया है:-

1. मनोगतिकी सामूहिक चिकित्सा माडल:-

इस माडल में बाल्यावस्या मे उत्पन्न मानसिक संघर्ष में रेागी में सूझ उत्पन्न करके उसका उपचार किया जाता है। वैसक्तिक चिकित्सा के समान मनोगतिकी सामूहिक चिकित्सा मे यालोम के सांतवा एवं आठवा बिन्दू अर्थात प्राथमिक परिवारिक समूह के सुधारात्मक स्तर तथा अन्तर्वैयक्तिक सीखना पर अधिक बल डाला जाता है। इसमें उपचार की प्रतिरोध, स्थानान्तरण तथा स्वप्न का विश्लेषण आदि प्रमुख विधि है। इस माडल के अन्तर्गत सबसे चर्चित स्लावसन (1964) का विश्लेषणात्मक सामूहिक मनोचिकित्सा है इसमें साहचर्य स्थानान्तरण, प्रतिरोध की व्याख्या आदि करके रोगी के मानसिक संघर्ष मे सूझ उत्पन्न करने की कोशिश की जाती है। वोल्फ (1975) ने भी इस बात पर बल दिया कि मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा को समूह में भी संपन्न किया जा सकता है।

मनोनाटक:-

मनोनाटक भी एक सामूहिक चिकित्सा है जिसे मनोविश्लेषाणात्मक समूह चिकित्सा माडल के अर्न्तगत रखा गया है। मनोनाटक का प्रतिपादन मोरेनो (1946)1959) द्वारा किया गया इस विधि में रोगी एक समूह की नियंत्रित परिस्थिति में अपनी कठिनाइयों एवं मानसिक संघर्षो को अभिव्यक्त करने का अभिनय करता है। मोरेनो ने मनोनाटक में भाग लेने वाले प्रत्यके पात्रो को विशेष नाम से सबोधित किया जो इस प्रकार है।

(क) नाटक का प्रधान अभिनेता:-

नाटक का प्रधान अभिनेता या पात्र स्वय रोगी ही होता हैं

(ख) निर्देशक:-

मुख्य चिकित्सक को निर्देशक कहा जाता है। जिसके देख रेख में मनोनाटक का संचालन एवं क्रियान्वयन होता है।

(ग) सहायक अहम्:-

नर्स सहायक चिकित्सक तथा अन्य रोगी व कर्मचारिगण आदि मिलकर सहायक अहम् की भूमिका का निर्वाह करते है।

(घ) श्रोता या दर्शक:-

श्रोता या दर्शक की भूमिका में अन्य व्यक्तियों या रोगियो को रखा जाता है।

मनोनाटक का उपयोग वहाँ अधिक लाभकारी होता है जब रोगी चिकित्सा की अन्य विधियों में भाग लेने से इन्कार कर देता है।

संव्यवहार विश्लेषण (Transactional Analysis):-

संव्यवहार विश्लेषण एक अन्य विधि है जिसे मनोगतिकी समूह चिकित्सा के अन्तर्गत रखा गया है। इस विधि का प्रतिपादन बर्नी द्वारा 1950 वाले दशक में किया गया है। सव्यवहार विश्लेषण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें समूह में व्यक्तियों के विभिन्न पहलुओं के बीच होने वाले अन्तःक्रियाओ का विश्लेषण किया जाता है। इस विश्लेषण का केन्द्र बिन्दु व्यक्ति के अहम् अवस्था के तीन मुख्य पहलू होते है। तीन अवस्थाए-चाइल्ड अहम् अवस्था, परेन्ट अहम् अवस्था, एडल्ट अहम् अवस्था। इन अवस्थाओं के अर्थ लगभग वही है जो फ्रायड के क्रमशः उपाह (id), अहम् (Ego), तथा परांह (Super ego) के है।

तीनो अहम् अवस्थाओं के बीच दोषपूर्ण अन्तवैयक्तिक अनुक्रिया होने से व्यक्ति में कुसमायोजित व्यवहार पनपता है। इस विधि मे चिकित्सक कुसामायोजित व्यक्यिों के समूह के सदस्यों को इस ढग से अन्तःक्रिया करने के लिए प्रेरित करते है कि उन लोगो मे कुसमायोजित व्यवहार कम होने लगता है। ज्। में गेम्स का पहलू अधिक लोकप्रिया हुआ है। ज्। मे कभी कभी अनुबंध की प्रक्रिया भी सम्मिलित होती है। सव्यवहार विश्लेषण में उन इकाईयो अर्थात् उद्दीपक एवं अनुक्रियाओं का विश्लेषण होता है जो एक दिये हुए समय में दो या दो से अधिक व्यक्तियों के अहम् अवस्थ्याओं के बीच सक्रिय होता है। इन इकाइयों को सव्यंवहार कहा जाता है।

2. व्यवहारपरक सामूहिक चिकित्सा माडल (Behavioral group Therapy Model) :-

इस मॉडल मे व्यवहार चिकित्सा की प्रविधियों का उपयोग रोगियो के एक समूह में किया जाता है। व्यवहार परक समूह में या लोम द्वारा बतलाये गये कारको की सूची मे से दूसरा, पाँचवा तथा छठा कारक अर्थात, सूचना प्रदान करना, सामाजिक कौशल का विकास तथा अनुकरणशील व्यवहार पर अधिक बल डाला जाता है। इस माडॅल मे दो तरह की चिकित्सा पर अधिक बल डाला गया है।

क. समाजिक कौशल प्रशिक्षण (Social Skills Training) :-

सामाजिक कौशल प्रशिक्षण में ऐसी परिस्थितियों के प्रति चिकित्सक को व्यवहार परक रिहर्सल के माध्यम से यह बतलाता है कि लक्षित व्यवहार को कैसे करना है। चिकित्सक स्वंय करके रोगी को दिखाता है तथा उन परिस्थितियों में उनको अभ्यास करने के लिए प्रेरित करता है जिसमें उन्हे कठिनाई का अनुभव होता है।

समाजिक कौशल प्रशिक्षण को वैयक्तिक या समूहिक किसी भी परिस्थिति में सम्पन्न किया जाता है जब यह समूह मे सम्पन्न किया जाता है तब यह समूहिक चिकित्सा का प्रारूप ले लेता है। सामूहिक चिकित्सा पहले रोगियों का

एक समूह तैयार करता है जिनकी अन्तैयक्तिक समस्याएँ एक समान हो फिर उनकी इन समस्याओ पर प्रशिक्षण दिया जाता है।

ख. निश्चयात्मकता प्रशिक्षण (Assertiveness Training):-

निश्चयात्मकता से तात्पर्य दूसरो के अधिकार का बिना अतिक्रमण किये अपने अधिकार के लिए डटे रहने से होता है। एण्ड्रीऊ साल्टर (1949) इसके प्रमुख प्रर्वत्तक है। सामूहिक निश्चयात्मक प्रशिक्षण में रोगी अपनी समस्याओं पर विचार विमर्श निश्चयात्मकता के साथ चिकित्सक के निर्देशन में करता है तथा उन परिस्थितियों में निश्चयात्मक अनुक्रियओं का भूमिका निर्वाह होता है।

3. मानवतावादी सामूहिक चिकित्सा मॉडल:-

मानवतावादी सामूहिक चिकित्सा मॉडल, सामूहिक चिकित्सा का एक प्रमुख मॉडल है मानवतावादी समूह की अनुभूतियों को चिकित्सा के लिये सर्वोकारी माना जाता है। इस माडल में यालोम के परोपकारिता तथा अन्तवैयक्तिक सीखना पर अधिक बल डाला जाता है। मानवतावादी समूह में तीन तरह के मॉडलों पर अधिक बल दिया गया है।

1. भिंड़त समूह मॉडल (Encounter Group Model):-

इस प्रकार की समूह चिकित्सा का शुभांरभ कैलीफोर्निया के इसेलेन संस्थान मे हुआ। इसमें समूह में खुला विचार, स्वतंत्र एवं स्पष्टवादी अभिव्यक्ति के माध्यम से व्यक्तिगत वर्द्धन तथा व्यक्तिगत संबंधो में ईमानदारी पर बल डाला जाता है। समूह के सदस्यों को शारीरिक रूप से एक दूसरे को स्पर्श करने, चिल्लाने, रोने तथा संवेग की अन्य अप्रतिबंधित अभिव्यक्ति करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है |

2. टी समूह या संवेदनशीलता प्रशिक्षण मॉडल (T-group or sensitivity group model):-

टी समूह जिसे संवेदनशीलता समूह भी कहा जाता है मानवतावादी सामूहिक चिकित्सा का ऐसा प्रकार है जिसे 1947 में नेशनल ट्रेनिंग लेबोरेट्री में किये गये शोधो एवं प्रशिक्षण कार्यक्रमों के परिणाम स्वरूप विकसित किया गया। टी समूह का मौलिक उदेश्य प्रजातंत्रीय विधियो से समूह के नेता को समूह के कार्यो को उन्नत बनाने में मदद करना अैर बाद में व्यवसायी कार्यपालको को अपने कर्मचारियों के साथ संबंधो को सुधारना था। टी समूह से प्रशिक्षित व्यक्त्यिों में उत्तम संचार की क्षमता में बृद्धि हो जाती है। सामूहिक चिकित्सा माडल में सदस्यो को शारीरिक सम्पर्क न करके शाब्दिक प्रविधियों द्वारा उन्हे प्रशिक्षित किया जाता

3. गेस्टाल्ट समूह मॉडल:-

जब ऐसी चिकित्सा एक समूह में सम्पन्न की जाती है, तो सदस्यगण एक दूसरे को अपनी सां वेगिक कठिनाईयों का समाधान करने मे मदद करते है। गेस्टाल्ट समूह चिकित्सा में रोगी के गत अनुभूति एवं इतिहास को महत्वपूर्ण समझकर उपचार किया जाता है।

4. समकक्षी आत्म मदद समूह चिकित्सा मॉडल:-

इस मॉडल के अन्तर्गत जिन व्यक्तियों में एक समान समस्याए होती है, वे एक साथ मिलकर एक समूह का निर्माण करते है जो आपस में बिना किसी चिकित्सा की मदद से उस पर विचार विमर्श करते है और उसका एक समाधान ढूढते है अल्कोहलिक एनोनिमस जो सबसे पहले 1930 वाले दशक में निर्मित हुआ इसका एक उत्तम उदाहरण है। आज के समय में कई समस्याओं के निदान के लिए आत्म-मदद समूह का निर्माण किया जाता है। जैसे कैंसर के रोगियों का समूह, विधवाओं का समूह, विधुर का समूह, अल्कोहल पीने वाले पत्नी-पति का समूह आदि द्वारा आत्म मदद समूह का निर्माण करके अपनी-अपनी समास्याओ को कम करने की कोशिश की जाती है।

12.3.5. सामूहिक चिकित्सा का मूल्यांकन (Evaluation of Group Therpy) -

सामूहिक चिकित्सा की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करने के लिए वेडनर एंव कॉल (1978) ने सामूहिक चिकित्सा के क्षेत्र में किये गये अध्ययनो को तीन क्रमबद्ध रूप से समीक्षा की है।

1. इन अध्ययनों में रोगियों की उन्नति का संबंध उनकी मनोवृत्ति तथा आत्म संप्रत्यय में केवल धनात्मक परिवर्तन से था और इसका संबंध व्यक्ति के वास्तविक व्यवहार से नही था।

2. समीक्षा में शामिल किये गये कई अध्ययनों की कार्य विधि प्रयोगात्मक एंव वैज्ञानिक दृष्टिकोण से दोषपूर्ण थे।

3. सामूहिक चिकित्सा का क्षेत्र इतना विस्तृत एवं विषम है कि उसका एकांकी मूल्याकन करना मुश्किल है। फिर भी उक्त समीक्षा से समूहिक चिकित्सा के कुछ लाभ तथा परिसीमाओं का स्पष्ट पता चलता है जो इस प्रकार है

लाभ:-

विभिन्न प्रकार के सामूहिक चिकित्सा विभिन्न प्राणी के रोगियों के लिए गुणकारी सिद्ध हुआ है। इस चिकित्सा का धनात्मक प्रभाव रोगियों पर देखा गया। सामूहिक चिकित्सा में भाग लेने के लिए सामान्य कौशल को बतलाना तथा उसमें उत्पन्न अनुभूतियों के प्रति धनात्मक मनोविकृति उत्पन्न करने से सामूहिक चिकित्सा दोनो तरह के लोगो दूसरों पर आश्रित व्यक्ति तथा आत्म निर्भर व्यक्ति के लिए लाभदायक होता है सामूहिक चिकित्सा के अर्न्तगत कम समय में सदस्य एक दूसरे के साथ खुलकर संवेगात्मक अभिव्यक्ति करते है जिनसे उनका संवेगात्मक तनाव कम हो जाता है।

परिसीमाये (Limitations):-

इस चिकित्सा विधि द्वारा गंभीर रूप से ग्रसित मानसिक रोगियों का उपचार संभवन ही है। सामूहिक चिकित्सा में प्रायः एक ही बार में कई रोगियों का उपचार किया जाता है, जिसके कारण से चिकित्सक सभी रोगियों पर बराबर ध्यान नही दे पाता है। इसके कारण से चिकित्सा की प्रभावशीलता कम हो जाती है। इन परिसीमाओं के बावजूद भी सामूहिक चिकित्सा का उपयोग वर्तमान में काफी बढ़ गया है और इसका चिकित्सीय परिणाम भी धीरे धीरे बढ़ रही है जिसके कारण से अधिक लोकप्रिय हो रहा है।

12.3.6 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न -

1. समूह चिकित्सा से क्या तात्पर्य है ?
2. समूह चिकित्सा का प्रतिपादन कब तथा किसके द्वारा किया गया ?
3. शैक्षिक संदर्भ का विकास किस काल में हुआ ?
4. टी-ग्रुप विधि का पूर्ण नाम क्या है ?
5. समूहिक चिकित्सा कितने प्रकार की होती है ?
6. यालोम द्वारा सामूहिक चिकित्सा के कितने कारको की विवेचना की गई है ?
7. समूहिक चिकित्सा के माडल कौन कौन से है ?

12.4 पारिवारिक चिकित्सा (Family Therapy)

पारिवारिक चिकित्सा एक तरह की समूह चिकित्सा है जिसके समूह के सदस्य अपरिचित न होकर एक परिवार के सदस्यगण होते है। पारिवारिक चिकित्सा का शुभांरभ 1950 वाले दशक में हुआ परन्तु 20 वर्षो में यह चिकित्सा अत्यधिक लोकप्रिय हुई है।

पारिवारिक चिकित्सा की शुरूआत इसलिए हुई क्योकि मानसिक विकृति के कई रोगियों को किसी वैयक्तिक चिकित्सा से उपचार करने के बाद उन्हे अपने परिवार मे कुछ दिनों तक रहने के बाद उनके रोग के लक्षण पुनः वापस आने लगते है। इसका कारण परिवार के अन्य सदस्यों का उनके प्रति दोषपूर्ण अन्तःक्रिया होती है। रोगी के कुसमायोजित व्यवहार के लक्षणों को जड़ से दूर करने के लिए आवश्यक है कि रोगी के परिवार के अन्य लोगो का भी उपचार किया जाना चाहिए।

पारिवारिक चिकित्सा में चिकित्सक पूरे परिवार की समस्याओ, जो सदस्यो में चिन्ता उत्पन्न करती है उनकी पहचान करके परिवार के सदस्यों से उन पर विचार विमर्श करते है तथा परिवार के अन्य सदस्यों को नये ढंग से अन्तःक्रिया करने तथा समास्याओ को कम करने के उपायो को बतलाते है। जिससे परिवार के सदस्यों मे एक दूसरे के प्रति सहानुभूति की भावना उत्पन्न होती है।

पारिवारिक चिकित्सा में चिकित्सक कभी कभी एक एक करके परिवार के सदस्यों को बुलाता है तथा उनके साथ विचार विमर्श करता है परन्तु कभी कभी परिवार के सभी सदस्यो को एक साथ बुला लेता हैं इस तरह की पारिवारिक चिकित्सा पर "साटीर 1967" द्वारा अधिक बल दिया गया है तथा इस तरह की चिकित्सा को सयुक्त पारिवारिक चिकित्सा की संज्ञा दी गयी है।

दोषपूर्ण विकृतिजन्य परिवार समूह में प्रायः संचार प्रत्याशा, भूमिका, मूल्यों, पारिवारिक संगठन तथा अन्तः क्रिया के अन्य पक्षों की समस्याएँ पायी जाती है जिनके कारण परिवार के एक या अधिक सदस्य मानसिक रोग से पीडित हो जाते हैं। परिवार चिकित्सा का उद्वेश्य परिवार के सदस्यों की भावनाओं को अभिव्यक्त करने में सहायता देना, एक दूसरे को अधिक समझना, एक दूसरे के साथ अधिक प्रभावशाली ढंग से संबंध रखना तथा साधारण समास्याओं का समाधान ढूढने में सहायता करना होता है।

व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास और समायोजन में परिवार का महत्वपूर्ण भूमिका होती है, परिवार के दोषपूर्ण होने से व्यक्ति का व्यक्तित्व भी प्रभावित होता है ऐसी स्थिति में पारिवारिक चिकित्सा की आवश्यकता अत्यधिक बढ जाती है।

(12.4.1) पारिवारिक चिकित्सा के लक्ष्य:-

पारिवारिक चिकित्सा के निम्नलिखित प्रमुख लक्ष्य है:-

1. समस्या ग्रस्त पहलुओं को पहचानना:-

पारिवारिक चिकित्सा का पहला लक्ष्य उन पहलुओं की पहचान करना है जो समस्या उत्पन्न करते है तथा जो परिवार के सभी सदस्यों से संबंधित होता है। इसमें चिकित्सा का लक्ष्य होता है परिवार का जो सदस्य समस्या उत्पन्न कर रहा है उसका पता लगाना और कौन-कौन सदस्यों को प्रभावित कर रहा हैं इसका यह लाभ होता हैं कि परिवार के कौन-कौन से सदस्यों को उपचार किया जाये, इसकी जानकारी हो जाती है।

2. उन्नत संचार:-

पारिवारिक चिकित्सा का उदेश्य रोगी तथा उसके परिवार के सदस्यों के बीच संचार को ठीक करना होता है जिससे रोगी तथा परिवार के सभी सदस्य एक दूसरे से बिना किसी अवरोध के किसी भी समस्या पर बातचीत कर सके व समाधान कर सके।

3. उन्नत स्वायतता एवं वैयक्तिकता:-

पारिवारिक चिकित्सा का उद्देश्य रेागी मे स्वंय भावना व स्वांयत्ता को भावना को उत्पन्न करना होता है ताकि वह अधिक से अधिक आत्म निर्भर होकर कोई निर्णय कर सके। यह गुण होने से उसमें आत्मसम्मान का भाव विकसित होता है।

4. उन्नत परानुभूति (Improved Empathy) :-

परानुभूति से तात्पर्य अपने आप को दूसरो की जगह रखकर दूसरे के मन मे होने वाले भावो से अवगत होना होता हैं। पारिवारिक चिकित्सक यह चाहता है कि वह केवल रोगी के नही बल्कि परिवार के अन्य सदस्यों में भी परानुभूति की क्षमता उत्पन्न कर सके जिससे पारिवारिक संबंध सुचारू रूप से चल सके।

5. लचीला नेतृत्व:-

पारिवारिक चिकित्सा में चिकित्सक का व्यवहार रोगियों के प्रति लचीला तथा झुकावदार होता हैं वह रोगी तथा उनके परिवार के प्रति सहानुभूति की भावना रखता है।

6. उन्नत भूमिका सहमति:-

पारिवारिक चिकित्सा में रोगी के दोषपूर्ण समायोजन का एक प्रमुख कारण परिवार के सदस्यो की भमिकोओं में अस्पष्टता होती है। जिसे ठीक करना चिकित्सक का लक्ष्य होता है।

7. संघर्ष को कम करना:-

पारिवारिक चिकित्सा का उद्देश्य रोगी तथा परिवार के अन्य सदस्यों के बीच होने वाले वाद विवाद तथा संधर्षो को दूर करना होता है। इसमें चिकित्सक को एक शिक्षक की भूमिका निभानी पड़ती है। परिवार में होने वाले वाद विवाद व संधर्ष से घर का वातावरण दोषपूर्ण हो जाता है जिससे रोगी का मानसिक सन्तुलन बिगड़ हो जाता है।

8. वैयक्तिक रोग सूचक उन्नति:-

पारिवारिक चिकित्सा में चिकित्सक रोगी के सभी प्रकार के मनौवैज्ञानिक लक्षणों की पहचान कर रोग को दूर करने का यथासंभव प्रयास करता है। रोग को दूर करने के लिए वह रोगी की आदतो क्रियाओं, संचार आदि पर अधिक ध्यान देकर उन्हे दूर करने का प्रयास करता है।

9. उन्नत वैयक्तिक कार्य निष्पादन:-

पारिवारिक चिकित्सक का कार्य रोगी तथा उसके परिवार के सदस्यों के कार्य निष्पादन को उन्नत बनाना होता है। जिससे वह वास्तविक जिदंगी कार्य ठीक प्रकार से अधिक से अधिक कर सके। और उनको कार्य करने में किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव न हो।

(12.4.2) पारिवारिक चिकित्सा के प्रकार:-

पारिवारिक चिकित्सा के निम्नांकित 10 प्रकार प्रमुख है।

1. सयुंक्त पारिवारिक चिकित्सा:-

पारिवारिक चिकित्सा के इस प्रकार का प्रतिपादन वर्जीनिया साटिर (1967) द्वारा किया गया। इस प्रकार की चिकित्सा में एक ही चिकित्सक परिवार के सभी सदस्यों का एक प्रेक्षण करता है। संयुक्त पारिवारिक चिकित्सक का उद्देश्य दोषपूर्ण संचार, अन्त क्रियाओं तथा परिवार के सदस्य के संबंधों को उन्नत बनाना होता हैं साटिर के अनुसार सयुक्त पारिवारिक चिकित्सा में चिकित्सक एक शिक्षक,एक स्त्रोत व्यक्ति तथा एक उत्तम संचारक के रूप में कार्य करता है। इस प्रकार की चिकित्सा में चिकित्सक सभी व्यक्तियो में संचार की सही क्रिया के बारे में बताता है तथा सभी व्यक्त्यिों के साथ कैसे सौहार्दपूर्ण संबंध बनाया जा सकता हैं। यह सभी जानकारी चिकित्सक उचित प्रकार से रोगी व उसके परिवार के सदस्यों को समझाता है। इसके कारण से संयुक्त चिकित्सा अत्यधिक लाभकारी सिद्ध होती है।

2. समवर्ती पारिवारिक चिकित्सा:-

इस प्रकार की पारिवारिक चिकित्सा में एक ही चिकित्सक परिवार के सभी सदस्य से विचार विमर्श करता है परन्तु सबसे अलग अलग वैयक्तिक सत्र में इस चिकित्सा का उद्वेश्य है कि रोगी की वैयक्त्कि समास्याओं को अलग से तथा अन्य लोगो के सहयोग से उचित ढग से समझा जा सके।

3. सहयोगी पारिवारिक चिकित्सा:-

इस प्रकार की चिकित्सा में परिवार के प्रत्येक सदस्य के लिए एक अलग चिकित्सक कार्यरत होते है। इसके बाद सभी चिकित्सक मिलकर रोगी व उसके परिवार के सदस्यों से विचार विर्मश करके कोई राय व निर्देश देने के लिए तैयार होते है।

4. वैवाहिक या युग्म चिकित्सा:-

इस प्रकार की चिकित्सा में चिकित्सक पत्नी तथा पति को एक साथ उपचार के लिये बुलाता है इस प्रकार की चिकित्सक का केन्द्र बिन्दु असमायोजित, क्षुब्ध वैवाहिक जीवन होता है न कि कोई स्नायुविकृति। चिकित्सक का मुख्य उद्देश्य पति व पत्नी के संबंधो को ठीक करना होता है। जिससे वैवाहिक जीवन सुचारू रूप से चल सके।

5. मनोगति की पारिवारिक चिकित्सा:-

स्कार्फ एवं स्कार्फ के अनुसार इस तरह की चिकित्सा में परिवार के सदस्यों के वर्तमान संबंध में जो समस्याएँ है, उनका मुख्य कारण अचेतन की इच्छाएँ उनके प्रति अपनायी गयी सुरक्षा तथा अपरिवर्तित पुरानी प्रत्याशाएँ होती है इस तरह की चिकित्सा 1980 के दशक से प्रारम्भ होने लगी।

6. व्यवहारपरक पारिवारिक चिकित्सा:-

इस तरह की चिकित्सा में चिकित्सक पारिवारिक समस्याओं को व्यवहारपरक विश्लेषण करता है जिससे चिकित्सक को पता चलता है कि किन व्यवहारो की बारंबारता तथा अवाँछित व्यवहार को पीछे छिपे पुनर्वलन

क्या है या किस तरह के पुनवर्लन से वांछित व्यवहार में बृद्धि या मजबूती हो सकती है। चिकित्सा प्रक्रिया प्रारम्भ करने के बाद परिवार के सदस्यों को एक दूसरे के लिए उचित पुनर्वर्लन प्रदान करने के लिए कहा जाता हैं ताकि वे लोग वांछित व्यवहार कर सके।

7. नेटवर्क पारिवारिक चिकित्सा:-

इस प्रकार की चिकित्सा में रोगी के साथ उसके परिवार के सदस्यो के साथ साथ दोस्त, पास पड़ोस के लोग तथा अन्य संबंधित लोगो को भी शामिल किया जाता है और उनके विचार प्राप्त किये जाते है। नेटवर्क पारिवारिक चिकित्सा की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि सभी व्यक्ति चिकित्सक के साथ कितना अधिक सहयोग करते है जितना अधिक सहयोग लोग करेंगे उतनी ही अधिक नेटवर्क पारिवारिक चिकित्सा सफल होगी। नेटवर्क स्पेक तथा एटनीव (1971) इस चिकित्स के प्रमुख समर्थक है।

8. बहुप्रभाव चिकित्सा:-

इस चिकित्सा के प्रमुख समर्थक मैक ग्रिगोर, रिशी, सेरानो तथा स्कुस्टर (1964) रहे हैं। पारिवारिक चिकित्सा में चिकित्सक का एक दल पुरे परिवार के सभी सदस्यों के साथ आपस में हुई अतः क्रियाओं का प्रेक्षण करता है। इसके पश्चात परिवार के प्रत्येक सदस्य के साथ वैयक्तिक सत्र में उनकी अतः क्रियाओं का विश्लेषण करके उनकी समस्याओं की पहचान की जाती है। इससे चिकित्सक द्वारा विवाह, प्राधिकार की भूमिका, बच्चो का परिवार के प्रति विचार, पर अधिक ध्यान दिया जाता है।

9. बहुपारिवारिक चिकित्सा:-

इस पारिवारिक चिकित्सका के समर्थन लाख्यूआर तथा स्ट्रेलानिक (1977) है। इस तरह की चिकित्सा में कई युगल जोड़ी या परिवारो को मिलाकर एक समूह तैयार किया जाता है जिससे चिकित्सक के द्वारा उनकी उलझनों एवं समस्याओं की पहचान करके उनका समाधान ढूढाँ जाता है।

10. संरचनात्मक पारिवारिक चिकित्सा:-

संरचनात्मक पारिवारिक चिकित्सा का महत्वपूर्ण लक्ष्य परिवार के संगठन या संदर्भ को इस ढंग से परिवर्तित करना होता है कि परिवार के सदस्य एक दूसरे के साथ पहले से अधिक सहयोग करते हुए धनात्मक ढंग से व्यवहार कर सके। इसमें चिकित्सक परिवार के वर्तमान अतःक्रियाओं पर अधिक ध्यान देता है मिनुचीन तथा फिशमैन (1981) संरचनात्मक परिवारिक चिकित्सा के प्रमुख समर्थक है। मिनुचीन तथा फिशमैन (1975) तथा उनके सहयोगियों ने संरचनातक पारिवारिक चिकित्सा का उपयोग सफलतापूर्वक वैसे परिवारो के बच्चों के उपचार में किये जिनमें मनौदैहिक बीमारियाँ उत्पन्न हो गयी थी।

पारिवारिक चिकित्सा के कई प्रकार है रोगी एवं परिवार की समस्या के अनुरूप चिकित्सक पारिवारिक चिकित्सा का प्रारूप अपनाकर समस्या को दूर करने का प्रयास करता है।

(12.4.3) पारिवारिक चिकित्सा का उपयोगः-

पारिवारिक चिकित्सा का उपयोग ऐसी स्थिति में किया जाता है जब परिवार के किसी भी एक सदस्य की समस्या कुछ ऐसी होती है जिसके कारण से पूरे परिवार के सदस्य परेशान हो जाते है। ऐसी स्थिति में पूरे परिवार के सदस्यों को चिकित्सा में सम्मिलित किया जाता है। इसके अन्तर्गत ऐसी उम्मीद की जाती है कि परिवार के सभी सदस्यों को सम्मिलित कर लेने से परिवार में उत्पन्न प्रतिरोध दूर हो जायेगा और पूरा परिवार समस्यामुक्त हो जायेगा। परिवार में परिवार समस्यामुक्त हो जायेगा। परिवार में वैवाहिक या लैंगिक असांमजस्य होने पर भी यह चिकित्सा उपयोगी सिद्ध होती है।

जब परिवार के सदस्यों में सामजिक मूल्यों तथा अन्य संबंधित पहलुओं के बारे में टकराव होतो पारिवारिक चिकित्सा अधिक उपयोगी माना गया है।

12.4.4 पारिवारिक चिकित्सा की समस्याए:-

पारिवारिक चिकित्सा से संबन्धित निम्न समस्याएँ है-

1. पारिवारिक चिकित्सा करते समय सदस्यों द्वारा तीव्र संवेग, नकारात्मक भाव तथा आक्रमकता एवं विद्वेष की अभिव्यक्ति होती है जिससे पारिवारिक चिकित्सा करने में समस्या उत्पन्न होती है और यह चिकित्सक के लिए सिरर्दद बन जाता है।

2. पारिवारिक चिकित्सा में चिकित्सक कभी कभी यह नही समझ पाता है कि परिवार में वास्तविक रोगी कौन है। वह परिवार के सभी सदस्यों से विचार विमर्श करता हैं तब उसे ज्ञात होता है कि रोगी के साथ साथ परिवार के किस सदस्य में विकृतियां है। रोगी के अलावा अन्य किसी सदस्य में विकृतियाँ होने से चिकित्सक के सामने यह समस्या उत्पन्न हो जाती है कि वह किस व्यक्ति को वास्तविक रोगी समझे।

3. पारिवरिक चिकित्सा में कुछ प्रश्नों का स्वरूप् स्पष्ट नही हो पाता है। रोगी द्वारा दिये गये गुप्त सूचनाओं को किस तरह से निपटाया जाए। पारिवारिक चिकित्सा में रोंगी चिकित्सक के प्रश्नों का उत्तर स्पष्ट रूप से नही दे पाता है परिवार के सदस्यों के मूल्यों की तुलना में चिकित्सक के मूल्यों की क्या भूमिका होगी ? ,आदि प्रश्नों का कोई उत्तर नही मिल पाता है।

12.4.5 पारिवरिक चिकित्सा का मूल्यांकन:-

हाजेलरिन, कूपर एवं वोरडुईन (1987) ने 20 अध्ययनो का मेटाविश्लेषण करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि पारिवारिक चिकित्सा का गुणकारी प्रभाव बहुत तरह के पारिवारिक समस्याओं के लिए हेाता पाया गया हैं इन अध्ययनो में कार्य संबंधी दोष पाये गये रिसकीन एवं फाऊन्स (1972) भी पारिवारिक चिकित्सा के शोध अध्ययनों में कार्य विधि से संबंधित दोष महत्वपूर्ण बतलाये हैं। बेल्सिक एवं ट्रोक (1980) ने तीन साल तक एक अनुवर्ती अध्ययन किया जिसमें पाया गया कि गंभीर विकृतियों पर पारिवरिंक चिकित्सा के जो गुणकारी प्रभाव पड़ते देखे गये उनमें अब कमी आ गयी है क्योंकि करीब 57 प्रतिशत रोगियों को पुन चिकित्सा की आवश्यकता अनुभव की गई।

12.4.6 स्वंमूल्याकन हेतु प्रश्न

1. पारिवारिक चिकित्सा का शुभारंभ किस दशक में हुआ ?
2. पारिवारिक चिकित्सा किस प्रकार की चिकित्सा है ?
3. पारिवारिक चिकित्सा से क्या तात्पर्य है ?
4. संयुक्त परिवारिक चिकित्सा का प्रतिपादन किसने किया ?
5. पारिवारिक चिकित्सा कितने प्रकार की होती है ?
6. उन्नत संचार क्या होता है ?
7. परानुभूति से क्या तात्पर्य है ?
8. संरचनात्मक पारिवारिक चिकित्सा के प्रमुख समर्थक कौन है ?

12.5 सारांश

सामूहिक चिकित्सा का औपचारिक शुभांरभ जोसेफ एच प्राट द्वारा 1905 में किया गया। सामूहिक चिकित्सा के इतिहास में जे0एल. मारेने का भी योगदान काफी महत्वपूर्ण रहा है। यालोम (Yalom, 1975) ने 11 कारको की पहिचान की जो सामूहिक चिकित्सा के सारतत्व है, सामूहिक चिकित्सा के मुख्य रूप से चार मॉडल है। मनोगतिकी सामूहिक चिकित्सा मॉडल, व्यवहार परक सामूहिक चिकित्सा मॉडल तथा समकक्षी आत्म मदद समूह मॉडल (Peer Self Help Model) तथा मानवतावदी सामूहिक चिकित्सा मॉडल।

परिवरिक चिकित्सा एक तरह का समूह चिकित्सा ही है जिसमें समूह के सदस्य अपरिचित न होकर एक ही परिवार के सदस्यगण होते है पारिवारिक चिकित्सा में चिकित्सक पूरे परिवार की सामान्य समस्याओं जो अधिकतर सदस्यों

में चिन्ता उत्पन्न कर रही होती है, की पहचान करता है तथा उस पर विचार विमर्श करता है, इसके पश्चात वह परिवार के सदस्यों को नये ढंग से आपस में अन्त क्रिया करने तथा संघर्षो को दूर करने के उपायों पर बल डालता है। पारिवारिक चिकित्सा के 10 प्रमुख प्रकार है जिसमें संयुक्त पारिवारिक चिकित्सा, वैवाहिक चिकित्सा, मनोगति की पारिवारिक चिकित्सा, बहुप्रभाव चिकित्सा तथा संरचनात्मक पारिवारिक चिकित्सा समवर्ती पारिवारिक चिकित्सा, सहयोगी पारिवारिक चिकित्सा, नेटवर्क पारिवारिक चिकित्सा आदि सम्मिलित है।

12.6 शब्दावली

1. सामूहिक विश्लेषण:- समूह मे सम्मिलित सदस्यों के बीच मे होने वाली अन्तःक्रियाओं की विवेचना को सामूहिक विश्लेषण कहते है।

2. समायोजन क्षमता:- किसी भी व्यक्ति का वातावरण तथा वावतारण में उपस्थित कारकों के साथ समायोजन उस व्यक्ति की समायोजन क्षमता पर निर्भर करता हैं

3. समजातीय:- यदि किसी भी समूह के सदस्य आयु, बुद्धि व लिंग में समान होते है तो ऐसे समूह को समजातीय समूह कहते है।

4. विषम जातीय:- जब किसी भी समूह में भिन्न भिन्न वर्ग, आयु, लिंग, बुद्धि के सदस्य सम्मिलित होते है तो ऐये समूह को विषम जातीय कहा जाता है।

5. अर्न्तद्वन्द:- किसी व्यक्ति के मस्तिष्क में होने वाली हल चल व किसी भी समस्या से उत्पन्न सधर्षो को अर्न्तद्वन्द कहते है।

6. परानुभूति:- परानूभूति का अर्थ अपने आप को दूसरो की जगह रखकर दूसरे के मन होने वाले भावों को जानता होता है ।

12.7 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

उत्तर: 1.सामूहिक चिकित्सा से तात्पर्य रोगियों का उपचार एक साथ समूह में करना होता है।
2. सामूहिक चिकित्सा का प्रतिपादन जोसेफ एच0प्राट द्वारा 1905 में हुआ।
3. मनोनाटक का प्रतिपादन मोरेनो द्वारा किया गया।
4. शैक्षिक संदर्भ का विकास 1945-1950 दशक के बाद हुआ।
5. टी ग्रुप विधि का सम्पूर्ण नाम ट्रेनिग ग्रुप विधि है।
6. सामूहिक चिकित्सा दो प्रकार की होती है।
7. यालोम द्वारा सामूहिक चिकित्सा के 2 महत्वपूर्ण कारको की विवेचना की गई।
8. समूहिक चिकित्सा के माडल चार प्रकार के होते है।
1. मनोगतिकी सामूहिक चिकित्सा मॉडल।
2. व्यवहार परक सामूहिक चिकित्सा मॉडल।

3. मनवतावादी सामूहिक चिकित्सा मॉडल।

4. समकक्षी आत्म-मदद समूह चिकित्सा मॉडल।

9. पारिवारिक चिकित्सा का प्रारम्भ 1950 के दशक मे हुआ।

10. पारिवारिक चिकित्सा एक समूह चिकित्सा है।

11. पारिवारिक चिकित्सा से तात्पर्य रोगी के साथ साथ परिवार के अन्य सदस्यों का भी उपचार किया जाता है।

12. संयुक्त पारिवारिक चिकित्सा का प्रतिपादन वर्जीनिया साटिर (1967) द्वारा किया गया।

13. पारिवारिक चिकित्सा 10 प्रकार की होती है।

14. उन्नत संचार से तात्पर्य किसी व्यक्ति तथा अन्य व्यक्तियों के बीच के समायोजित संचार को उन्नत संचार कहते है।

15. परानुभूति से तात्पर्य अपने आप को दूसरो की जगह रखकर दूसरो के मन में होने वाले भावो से अवगत होना है।

16. संरचनात्मक पारिवारिक चिकित्सा के प्रमुख समर्थक मिनुचीन तथा फिशमैन (1981) है

12.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

. Coleman, J.C. (1976) Abnormal Psychology & Modern Life, Taraporevala

. Davidson & Neale (1974) Abnormal Psychology, John Wiley

. Kapil, H.K. (2001), अपसामान्य मनोविज्ञान, भार्गव प्रकाशन, आगरा

. मखीजा और मरखीजा (2001) पसामान्य मनोविज्ञान, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन आगरा।

. सिंह ए.के. (2009) आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, बनारसी दास, दिल्ली

12.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सामूहिक चिकित्सा से क्या तात्पर्य है ? सामूहिक चिकित्सा के प्रकारो को विवेचित कीजिए।

2. यालोम द्वारा समूहिक चिकित्सा के बतायें गये कारको की विवेचना कीजिए ?

3. सामूहिक चिकित्सा के उपागमो व माडॅलों का वर्णन कीजिए।

4. पारिवारिक चिकित्सा का क्या अर्थ है? पारिवारिक चिकित्सा के लक्ष्यों का विश्लेषण कीजिए।

5. परिवारिक चिकित्सा के प्रकारो का वर्णन कीजिए | पारिवारिक चिकित्सा की समस्याओं पर प्रकाश डालिए।

इकाई 13. नैदानिक हस्तक्षेप:- अर्थ, लक्ष्य एवं प्रकार; सहायता प्रक्रिया:- एक व्यक्ति और व्यावसायिक के रूप में नैदानिक मनोवैज्ञानिक, एक चिकित्सक के कौशल: सुनना, नेतृत्व एवं सामना
(Clinical Intervention:- Meaning, Goals and Types; Helping process: Clinical Psychologist as a Person and Professional; Skills of a Therapist- Listening, Leading and Confront)

इकाई संरचना

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 नैदानिक हस्तक्षेप या मनश्चिकित्सा का अर्थ

13.4 मनश्चिकित्सा के उद्देश्य या लक्ष्य

13.5 मनश्चिकित्सा के प्रकार

13.6 नैदानिक हस्तक्षेप का क्रम

13.7 सारांश

13.8. शब्दावली

13.9. अभ्यास के प्रश्नों के उत्तर

13.10. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

13.11 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

सामान्यतः किसी अस्वस्थ व्यक्ति को औषध (drug),शल्य (Surgery) आदि प्रविधियों से पुनः स्वस्थ बनाने की प्रक्रिया को उपचार (treatment) या चिकित्सा (therapy) की संज्ञा दी जाती है। मानसिक रूप से अवस्थ एवं सांवेगिक रूप से विक्षुब्ध व्यक्तियों की मनोवैज्ञानिक विधियों से उपचार करना मनश्चिकित्सा(psychotherapy)कहा जाता है। इसे नैदानिक हस्तक्षेप (clinical intervention) भी कहा जाता है क्योंकि इसमें नैदानिक मनोवैज्ञानिक अपने व्यवसायी रूप या पेशेवर क्षमता (professional) का उपयोग करते हुए मानसिक रूप से या सांवेगिक रूप से विक्षुब्ध व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करने की प्रयत्न करता है।

प्रस्तुत इकाई में मनश्चिकित्सा की प्रकृति एवं विकास के बारे में आप जान सकेगें। साथ ही मनश्चिकित्सा की विभिन्न विधियों तथा उनसे सम्बन्धित अन्य तथ्यों के बारे में विस्तृत रूप से अध्ययन कर सकेगें।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य हैं-

1. मनश्चिकित्सा की प्रकृति एवं विकास को समझ सकें।
2. विभिन्न रोगों में मनश्चिकित्सा की विभिन्न विधियों को जान सकें ।

13.3 नैदानिक हस्तक्षेप या मनश्चिकित्सा का अर्थ

सामान्यतः मनश्चिकित्सा का उपयोग उन मानसिक रोगियों के लिए लाभकारी होता है जो मनःस्नायुविकृति से पीडित होते है। इसका उपयोग दूसरे प्रकार के मानसिक रोगियों जैसे मनोविक्षिप्ति या मनोविकृति (psychosis) के रोगियों के साथ भी किया जाता है परंतु ऐसे रोगियों को मनश्चिकित्सा के अलावा मेडिकल चिकित्सा (medical therapy) भी देना अनिवार्य होता है।

मनश्चिकित्सा की कुछ प्रमुख परिभाषाऐं इस प्रकार दी गयी हैं-

वोलवर्ग (Wolberg, 1967) के अनुसार,'' मनश्चिकित्सा सांवेगिक प्रकृति की समस्याओं के लिए उपचार का एक प्रारूप है जिसमें एक प्रषिक्षित व्यक्ति जान -बूझकर एक रोगी के साथ व्यवसायिक संबंध इस उदेश्य से कायम करता है कि उसमें धनात्मक व्यक्तिव वर्द्धन तथा विकास हो, व्यवहार के विक्षुब्ध पैटर्न के मंदित वर्तमान लक्षणों को दूर किया जा सके या उसमें परिमार्जन किया जा सके।''

रौटर (Rotter,1976) के अनुसार, '' मनश्चिकित्सा मनोवैज्ञानिक की एक सुनियोजित प्रक्रिया होती है जिसका उदेश्य व्यक्ति की जिन्दगी में ऐसा परिवर्तन लाना होता है जो उसके जीवन को भीतर से अधिक खुश तथा अधिक संरचनात्मक या दोनों ही बनाता है। ''

निटजील, वर्नस्टीन एवं मिलिक (Nietzel, Bernstein & Milich 1991) के अनुसार, '' मनश्चिकित्सा में कम से कम दो सहभागी होते हैं जिसमें एक को मनोवैज्ञानिक समस्याओं से निबटने में विशेष प्रशिक्षण तथा सुविज्ञता प्राप्त होती है और उसमें से एक समायोजन में समस्या का अनुभव करता है और वे दोनों समस्या को कम करने के लिए एक विषेष संबंध कायम किये होते है। मनष्चिकित्सकीय संबध एक पोषक परंतु उदेश्यपूर्ण संबध होता है जिसमें मनोवैज्ञानिक स्वरूप की कई विधियों का उपयोग क्लायंट में बाधित परिवर्तन लाने के लिए किया जाता है। ''

इन परिभाषाओं का विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि मनश्चिकित्सा मे रोगी तथा चिकित्सक के बीच वार्तालाप होता है जिसके माध्यम से रोगी अपनी सांवेगिक समस्याओं एवं मानसिक चिन्ताओं की अभिव्यक्ति करता है तथा चिकित्सक विशेष सहानुभूति, सुझाव एवं सलाह देकर रोगी में आत्म-विश्वास एवं आत्म- सम्मान कायम करता है जिससे रोगी की समस्याऐं धीरे-धीरे समाप्त होते चली जाती है और उमसे ठीक ढंग से समायोजन करने की क्षमता पुनः विकसित हो जाती है। मनश्चिकित्सा या नैदानिक हस्तक्षेप के स्परूप् को अधिक स्पष्ट करनें के लिए यह आवश्यक है कि मनश्चिकित्सा में निहित निम्नांकित तीन मौलिक तत्यों पर प्रकाष डाला जाए-

(a)सहभागी

(b)चिकित्सीय संबध

(c)मनश्चिकित्सा की प्रविधि

तीनों तथ्यों का वर्णन निम्नांकित है-

(a) सहभागी (Participant) - मनश्चिकित्सा में दो सहभागी (Participant) होते है- पहला सहभागी क्लायंट या रोगी होता है तथा दूसरा सहभागी चिकित्सक (therapist)होता है। क्लायंट वह व्यक्ति होता है जिसमें सांवेगिक या मानसिक क्षुब्धता (disturbance) इतनी अधिक उत्पन्न हो जाती है कि उसे किसी प्रशिक्षित चिकित्सक की सहायता अपनी समस्याओं के समाधान के लिए लेना पड जाता है। रोगी मे समस्या की क्षुब्धता की मात्रा अधिक भी हो सकती या फिर कम भी हो सकती है। मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गए शोधों से यह स्पष्ट हुआ है कि मनश्चिकित्सा के लिए सबसे उत्तम क्लायंट या रोगी वह होता है जिसमें कुछ विशेष गुण होते है। जैसे - मनश्चिकित्सा से सबसे अधिक लाभ उन रोगियों को होता है जो बुद्धिमान, अभिप्रेरित, शाब्दिक(verbal) अपने व्यवहार में परिर्वन लाने के लिए साधारण मात्रा में चिन्ता दिखातें हों तथा चिकित्सक को अपनी समस्याओं के बारे में ठीक से जानकारी दे सकतें हों।

गुरमैन तथा रेजीन (Gurman & Razin, 1971) ने अपने अध्ययन से इस तथ्य की सपुष्टि किया है-

मनश्चिकित्सा का दूसरा सहभागी (participant) चिकित्सक (therapist) होता है। चिकित्सक वह व्यक्ति होता है जो अपने विशेष प्रशिक्षण तथा अनुभव के कारण क्लायंट या रोगी को अपनी क्षुब्धताओं(disturbance) से निबटने में मदद करता हो। चिकित्सा के लिए यह आवष्यक है कि उसमें विशेष कौशल (skills) हो और वह विशेष रूप से प्रशिक्षित हो ताकि वह क्लायंट की क्षुब्धताओं को समझ सके और तब उसके साथ इस ढंग से अन्तः क्रिया कर सके कि वह (क्लायंट) फिर अपनी समस्याओं या क्षुब्धताओं से ठीक ढंग से निबट सके। एक उत्तम चिकित्सा में पर्याप्त कौषल तथा प्रशिक्षण के अलावा कुछ व्यक्गित गुण भी होना चाहिए। प्रसिद्धमनश्चिकित्सक कार्ल रोजर्स(Carl Rogers) के अनुसार एक उत्तम चिकित्सक में परानुभूति (empathy) , प्रमाणिकता (genuineness) तथा शर्तहीन धनात्मक सम्मान देने की क्षमता अवश्य होनी चाहिए। इसके अलावा इनमें क्लायंट की समस्याओं को ठीक ढंग से सुनने, बिना निर्णायक (judgmental) दृष्टिकोण दिखलाये बोध (understanding) तथा संवेदनषीलता (sensitivity) का भाव दिखाने आदि की क्षमता होनी चाहिए।

(b)चिकित्सीय संबंध (Therapeutic relationship) - मनश्चिकित्सा का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू चिकित्सक तथ क्लायंट के बीच विकसित विशेष संबध (relationship) होता है जिसे चिकित्सीय संबंध कहा जाता है। चिकित्सीय संबध वैसा संबध होता है जिसमें चिकित्सा तथा रोगी दोनों ही यह जानते हैं कि वे लोग वहॉ क्यों एकत्रित हुए है तथा उनकी अन्तः क्रियाओं का नियम तथा लक्ष्य (goals) क्या है।

मनश्चिकित्सा का प्रारंभ चिकित्सीय अनुबन्ध (therapeutic contract) से होता है जिसमें उपचार का लक्ष्य, चिकित्सा की प्रविधि जिसका उपयोग किया जाना है, संभावित जोखिम तथा चिकित्सा एवं रोगी के वैयक्तिक जवाबदेहियों (responsibilities) का उल्लेख होता है। औरलिनस्की एवं होवार्ड (Orlinsky & Howard, 1986) के अनुसार चिकित्सीय अनुबन्ध एक तरह की रूपरेखा (blueprint) के रूप मे कार्य करता है जो चिकित्सीय संबंध को इस तरह का बनने में मदद करता है जिसमें क्लायंट सक्रिय निर्णयकर्त्ता के रूप् में न कि सहायता पान वाले एक निष्क्रिय व्यक्ति के रूप में कार्य करता है।

चिकित्सक की यह कोशिश रहती है कि वह रोगी के साथ एक ऐसा भद्र संबंध बना सके जिससे कि वह अर्थात रोगी अपने व्यवहार में परिवर्तन लाने के लिए काफी उत्सुक रहे। कोरचीन (Korchin, 1976) ने यह स्पष्टतः कहा है कि चिकित्सीय संबंध में आसक्ति (attachment,) महत्वपूर्ण है। हैडले (Stupp & Hadley,1979) के अनुसार कुछ रोगी या क्यायंट ऐसे होते है जिनके साथ चिकित्सीय संबध तेजी से विकसित हेाते है तथा कुछ ऐसे क्लायंट होते है जिनके साथ इस ढंग का संबंध तेजी से विकसित होते हैं तथा कुछ ऐसे क्लायंट होते है जिनके साथ इस ढंग का संबंध नहीं विकसित हो पाता है और चिकित्सा की प्रगति धीमी पड जाती है। स्ट्रप (Strupp, 1989) तथा औरलिनस्कों एवं होवार्ड (Orlinsky & Howard, 1986) द्वारा इस क्षेत्र में किये गए अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि एक उत्तम चिकित्सीय संबंध में अन्य बातों के अलावा निम्नांकित अपेक्षित गुण होता है—

1.क्लायंट एवं चिकित्सक के बीच चिकित्सीय संबंध मे नैतिक बचनबद्धता होती है जिसमें गोपनीयता (confidentiality) प्रमुख है। चिकित्सक रोगी के गोपनीयता की रक्षा करता है तथा चिकित्सा के दौरान बतलाये गए बातों को किसी अन्य व्यक्ति से नहीं बतलाता है।

2. चिकित्सीय संबंध इस ढंग का होना चाहिए कि चिकित्सक रोगी के कल्याण को सर्वाधिक प्राथमिकता दे।

3. उस चिकित्सीय संबंध को उत्तम माना जाता है जिसमें भूमिका-निवेश (role-investment), परानुभूतीय गूंज (empathic resonance) तथा परस्पर प्रतिज्ञापन (mutual affirmation) जैसे तीन तत्व होते है। भूमिका निवेश (role-investment) से तात्पर्य इस बात से होता है कि चिकित्सक तथा रोगी दोनों ही चिकित्सा को सफल बनाने में व्यक्तिगत प्रयास करते है। परानुभूतीय गूंज (empathic resonance) से तात्पर्य इस बात से होता है कि चिकित्सा के दौरान किस हद तक चिकित्सक तथा रोगी दोनों ही समान दृष्टिकोण रखते हैं। परस्पर प्रतिज्ञापन से तात्पर्य इस बात से होता है कि किस सीमा तक चिकित्सक तथा रोगी एक- दूसरे की भलाई के लिए ध्यान देते हैं।

स्ट्रूप (Strupp, 1989) ने इस बात पर बल डाला है कि चिकित्सीय परिणाम उत्तम होने के लिए यह आवष्यक है कि चिकित्सीय संबंध को रोगी एक कृत्रिम या बनावटी संबंध के रूप में न लेकर उसे एक वास्तविक संबंध के रूप में प्रत्यक्षण करे।

स्पष्ट हुआ कि चिकित्सीय संबध मनश्चिकित्सा का एक महत्वपूर्ण तत्व है जिसकी अपनी कुछ विषेषताऐं है

मनश्चिकित्सा की प्रविधि (**Techniques of psychotherapy**)- मनश्चिकित्सा की कई प्रद्धतियॉ है। मनश्चिकित्सा के प्रत्येक प्रद्धति की अपनी-अपनी **प्रविधियां** है। मनष्चिकित्सा की प्रविधियों में अन्तर होने का मुख्य कारण उनके पीछे छिपे व्यक्तितत्व सिद्ध;ान्त तथा वे सारे परिवर्तन है जो चिकित्सक रोगी में उत्पन्न करना चाहता है। यद्यपि मनष्चिकित्सा के कई प्रकार हैं, फिर भी कई प्रविधियॉ ऐसी है जो उन सभी प्रकारों मे सामान्य है । इन प्रतिध्यिों का स्वरूप् मूलतः मनोवैज्ञानिक होता है न कि दैहिक या मेडिकल। नैदानिक हस्तक्षेप या मनश्चिकित्सा के कुछ ऐसी प्रमुख **प्रविधियां** इस प्रकार हैं-

(a). सूझ उत्पन्न करना (Fostering insight)-मनश्चिकित्सा की एक प्रविधि रोगी के मनोवैज्ञानिक समस्याओं में सूझ उत्पन्न करना हैं सूझ उत्पन्न करने के लिए रोगी में आत्म मूल्यांकन तथा आत्म-ज्ञान विकसित करने की कोशिश की जाती है। सूझ उत्पन्न करने के लिए चिकित्सक रोगी के व्यवहार की व्याख्या भी करते हैं फ्रायड ने रोगी मे सूझ उत्पन्न करने पर सबसे अध्किाक बल डाला था जिसमें अचेतन के प्रभावों का मूल रूप से से विष्लेषण किया जाता है। क्लायंट को यह समझाया जाता है कि वे क्यों इस तरह का व्यवहार करते है। यदि वे ऐसा समझ जाते है तो इससे नये व्यवहार की उत्पत्ति उसमें होती है जिसे सूझ कहा जाता है।

(b) सांवेगिक अशांति को कम करना (Reducing emotional discomfort) - मनश्चिकित्सा के रोगी के सांवेगिक अशांति की मात्रा को इतना कम कर दिया जाता है कि वह चिकित्सा में आगे ठीक ढंग से सहयोग कर सके तथा अपने व्यवहार में स्थायी परिवर्तन लाने के लिए अभिप्रेरित रहे। सांवेगिक अंशाति को कम करने का उत्तम तरीका यह है कि रोगी के सांवेगिक शक्ति(emotional strength) को उत्तम चिकित्सीय संबध द्वारा बढाया जाय। जब रोगी यह समझता है कि चिकित्सक उसका एक व्यक्तिगत दोस्त है जिस पर भरोसा दिया जा सकता है , तो उसमे स्वतः सांवेगिक स्थिरता (emotional stability) उत्पन्न होती है।

(c) विरेचन को प्रोत्साहित करना (Encouraging catharsis)- चिकित्सक की उपस्थिति में रोगी को अपने संवेगों, भावों आदि की खुली अभिव्यक्ति करने के लिए कहा जाता है। इस प्रक्रिया को विरेचन (catharsis) कहा जाता है। इस तहर से विरेचन की प्रक्रिया द्वारा कुछ वैसे दबे हुए संवेग की अभिव्यक्ति होती है जिसे स्वयं रोगी बहुत समय पहले से नही जानता था। चिकित्सक ऐसे संवेगों को अभिव्यक्त करने में रोगी को भरपूर प्रोत्साहन देता है।। उन्हें ऐसी उम्मीद रहती है कि इससे रोगी को दुखदायक भावों एवं संवेगों को समझने में मदद मिलेगी और वह फिर कुछ खास-खास संवेगों से बिलकुल ही नहीं डरेगा या चिंतित होगा।

(d) नयी सूचना देना (Providing new information)- **मनश्चिकि**त्सा का स्वरूप् शैक्षिक होता है। चिकित्सक रोगी को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कुछ नयी न्यी सूचनाओं को दता है ताकि रोगी के वर्तमान ज्ञान में उत्पन्न खाई या विकृति को संशोधित किया जा सके । इस सिलसिले में रोगी को चिकित्सक कभी- कभी कोई विषेष तरह के विषय या क्षेत्र (जो उनकी समस्या से सम्बधित होता है।)को पढने का भी सुझाव देते है। इसे संदर्भिका चिकित्सा(bibliotherapy) कहा जाता है। नयी सूचना प्राप्त होने से रोगी मे एक ऐसा संदर्भ उत्पन्न होता है जो उन्हें उन समस्याओं से निबटने में मदद करता है जो उन्हें असाधारण परन्तु समाधेय (solvable) दीखते है।

(d) परिवर्तन के लिए उम्मीद एवं विश्वास विकसित करना (Developing faith and expectancy for change) - मनश्चिकित्सा में रोगी में उत्तम परिवर्तन के लिए विष्वास तथा प्रत्याषा (मगचमबजंदबल) उत्पन्न की जाती है। चिकित्सक हर तरह से परिस्थिति को इस ढंग से मोडते है कि रोगी में यह विष्वास उत्पन्न हो जाए कि उसे मदद की जा रही है तथा निष्चित रूप से उसके व्यवहार मे ध्नात्मक परिवर्तन होंगे तथा उनकी सांवेगिक समस्याऐं कम हो जाएगी इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए चिकित्सक विरेचन, रोगी के भावों की व्याख्या तथा उत्तम चिकित्सीय संबध का निर्माण आदि जैसी प्रविधियों का सहारा लेते है।

स्पष्ट हुआ कि मनश्चिकित्सा एक जटिल प्रक्रिया है जिसमें चिकित्सक रोगी के साथ अन्तः क्रिया करके एक ऐसा उत्तम चिकित्सीय संबंध का निर्माण करते है कि रोगी की सांवेगिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं का उत्तम निदान हो पाता है।

13.4 मनश्चिकित्सा के उद्देश्य या लक्ष्य

मनचिकित्सा का सामान्य उदेष्य रोगी के संवेगात्मक एवं मानसिक तनाव को दूर करके उसमें सामर्थ्य (competency), आत्म- बोध (self-actualization) पर्याप्त परिपक्वता (adequate maturation)आदि विकसित करना होता है। इन सामान्य उदेष्यों के अलावा मनष्चिकित्सा(psychotherapy) के कुछ विषिष्ट उदेष्य या लक्ष्य है जो निम्नांकित है-

(a) रोगी के अपअनुपलित व्यवहारों (maladaptive behaviors) में परिवर्तन लाना

(b) रोगी के अन्तवैंयक्तिक संबंध एवं अन्य दूसरे तरह के सामर्थ्य को विकसित करना

(c)रोगी के आन्तरिक संधर्षो को एवं व्यक्तिगत तनाव को कम करना

(d)रोगी मे अपने ईद-गिर्द के वातावरण एवं स्वयं अपने बारे में बने अयथार्थ पूर्वकल्पनाओं में परिवर्तन लाना

(e) रोगी मे अपअनुकूलित व्यवहार को सम्पोषित करने वाले कारकों या अवस्थओं को दूर करना

(f) रोगी को अपने वातावरण की वास्तविकताओं के साथ अच्छी तहर समायोजन करने में सहयोग प्रदान करना

(g) आत्म बोध एवं आत्मसूझ को सुस्पष्ट करना

सुन्डवर्ग एवं टाइलर (Sundberg & Tyler,1962) ने मनश्यिकित्सा (psychotherapy) के विभिन्न पहलुओ एवं इस क्षेत्र में किये गये ष्षोधों (तमेमंतबीमे) की समीख किया और बतलाया कि मनोश्चिकित्सा(psychotherapy)के प्रमुख उदेश्यों (goals) या लक्ष्यों में निम्नांकित सर्वाधिक उत्कृष्ट है-

(a)उपयुक्त कामों को करने के लिए रोगी की प्रेरणा को मजबूत करना

(b) भावों की अभिव्यक्ति द्वारा सांवेगिक दबावों को कम करने में मदद करना

(c) वर्द्धन के लिए सामर्थ्यता की अभिव्यक्ति करना

(d)अपनी आदतों को बदलनें में मदद करना

(e रोगी के संज्ञानात्मक रचनाओं को परिवर्तित करना

(f) आत्म ज्ञान प्राप्त करना

(g) अन्तर्वैयक्तिक संबंधों एवं संचारों को प्रोत्साहित करना

(h) ज्ञान प्राप्त करने एवं निर्णय करने में प्रोत्साहन करना

(i) शारीरिक अवस्थाओं में परिवर्तन करना

(j) चेतन की वर्तमान अवस्था को परिवर्तित करना

(k) रोगी के सामाजिक वातावरण को परिवर्तित करना

मनश्चिकित्सा के लक्ष्य को अन्यतर रुपसे भी वर्णित किया जा सकता है।

(a) **रोगी द्वारा सही कार्य करने की प्रेरणा को मजबूत करना**-मनश्चिकित्सा का चाहे जो प्रकार क्यों न हो, मनष्चिकित्सक हमेषा यह कोषिष करते हैं कि वे रोगी को सही कार्य करने की प्रेरणा को तीव्र करे। सचमुच में मनष्चिकित्सा का यह एक सामान्य उदेश्य है जो काफी महत्वपूर्ण है। रोगी अधिक वांछनीय ढंग से व्यवहार कर सके इसके लिए सुझाव, अनुनय (persuasion), सम्मोहन(hypnosis) आदि जैसे तरकीबों का सहारा लिया जाता है।

(b) **तीव्र भावों की अभिव्यक्ति करके साँवेगिक दबाव को कम करना** - मनश्चिकित्सा का एक उदेष्य रेागी के भीतर छिपे भावों (feelings) की अभिव्यक्ति कराना होता है। इसके पीछे तर्क यह छिपा होता है कि जब रोगी अपने भीतर छिपे क्षुब्धता (disturbance) उत्पन्न करने वाले भावों की अभिव्यक्ति करता है, तो इससे उसका साँवेगिक दवाब कम हो जाता है तथा रोगी की मानसिक बीमारी की गंभीरता बहुत ही कम हो जाती है। फ्रायड ने इस तरह के साँवेगिक मुक्ति(emotional release) को विरेचन (catharsis) कहा है।

(c) **रोगी के अन्तःशक्ति को वर्धन एवं विकास के लिए मुक्त करना** - इस उदेश्य के पीछे मनश्चिकित्सकों की मान्यता यह होती है कि व्यक्ति की जिन्दगी एक निष्चित विकास रेखा के अनुरूप् हमेषा बढ़ती है और जब उसके इस सामान्य वर्द्धन प्रवृत्ति में किसी प्रकार की अवश्यता आदि है तो उससे मनःस्नायुविकृति (psychoneurosis) तथा अन्य मानसिक रोगों की उत्पत्ति होती है। अतः मनष्चिकित्सा का उदेष्य इस अवरोधों को दूर करना होता है ताकि रोगी के वर्द्धन तथा विकास की अन्तःशक्ति फल-फूल सके। अन्तःशक्तियों के इस तरह के के वर्द्धन तथा विकास पर रोजर्स तथा मैसलो (Maslow) द्वारा जिन्होंने मानवतावादी चिकित्सा प्रतिपादन किया है, सर्वाधिक बल डाला गया है। अतः यह कहा जा सकता है कि मनष्चिकित्सा का लक्ष्य रोगी में वर्द्धन के मौलिक अंतःशक्तियों को प्रस्फूटित करना होता है। इस बिन्दु पर सुडवर्ग तथा टाइलर (Sundbreg & Tyler, 1961) ने बहुत ही सटीक टिप्पणी करते हुए इस प्रकार कहा है,''

''मनश्चिकित्सक को एक मैकेनिक जो औजार या उपकरण में दोष का पता लगाता है उसकी मरम्मत करता है के रुप में नहीं समझा जाना चाहिए बल्कि उसे एक माली के रुप में समझा जाना चाहिए जो एक

पौधें को जिसमें वर्धन की आन्तरिक प्रवृद्धि है की छटाई करता है तथा उचित पोषक पदार्थ तथा नमी देकर उसे उत्तेजित करता है। ''

(d) **अवांछित एवं अनुचित आदतों को परिवर्तित करना -** मनश्चिकित्सा का एक उद्देश्य एक ऐसी परिस्थिति का उत्पन्न रकना होता है जिसमें रोगी के अवांछित, अनुचित एवं संकट उत्पन्न करने वाली आदतों का प्रतिस्थापन नयी वांछित आदतों से किया जा सके। इसके लिए मनश्चिकित्सक अनुबंधन तथा सीखने के सामान्य नियमों का सहारा लेते हैं तथा वे ऐस वांछित आदतों के बाद पुनबर्लन देकर उसको सीखलाने की कोशिश करते हैं। आजकल इसके अलावा अन्य परिष्कृत विधियों का भी उपयोग रोगी के अवांछित आदतों को परिवर्तित करने में किया जाता है।

(e) **रोगी की संज्ञानात्मक संरचना में परिमार्जन करना** - मनश्चिकित्सा का एक उद्देश्य यह भी है कि रोगी अपने बारे में दूसरे व्यक्तियों के बारे में तथा वातावरण के अन्य वस्तुओं एवं घटनाओं आदि के बारे में पूर्णतः अवगत हो तथा इस संज्ञानात्मक संरचना में व्यास असंगतता को पहचाने तथा उसे आवश्यकतानुसार परिवर्तित करे क्योंकि इस तरह की असंगतता से व्यक्ति की सामान्य अवधारणा विकृत हो जाती है और वह रोग का शिकार हो जाता है।

(f) **रोगी के ज्ञान को तथा प्रभावी निर्णयों को लेने की क्षमता में वृद्धि करना - मनश्चि**कित्सा का उद्देश्य रोगी के वर्तमान ज्ञान को इस लायक बना देना होता है कि वहअपनी जिन्दगी में प्रभावी निर्णय ले सके। उसे विभिन्न अवसरों के बारे में पर्याप्त ज्ञान दिया जाता हे तथा प्रत्येक विकल्प के पक्ष-विपक्ष में तथ्य उनके सामने रखा जाता है तथा फिर उन्हें ऐसी परिस्थितियों का सामना कराके ऐसी क्ष्ज्ञमता धीरे-धीरे विकसित की जाती है कि वे अपने जीवन के सभी महत्वपूर्ण निर्णय लो लेने में सक्षम हो सके।

(g) **रोगी के आत्मज्ञान या सूक्ष में वृद्धि करना** - मनश्चिकित्सा का उद्देश्य रोगी में पर्याप्त सूझ विकसित करना होता है ताकि वह यह समझ सकं कि वह किस तरह व्यवहार करता है तथा क्यों वैसा व्यवहार करता है। ऐसा करने के लिए मनश्चिकित्सक अचेतन में छिपे इच्छाओं को चेतन में लाते है। जब रोगी अपने अचेतन की अभिप्रेरणें एवं इच्छाओं को चेतन में लाकर उसे समझने की कोशिश करता हैक् तो उससे उसमें आत्म-ज्ञान या सूझ उत्पन्न होता है और रोगी की कुसमायोजी व्यवहार की गंभीरता में कमी होने लगता है।

(h) **अन्तवैयक्तिक संबंधो पर बल दिया जाना** - मनश्चिकित्सा का एक उद्देश्य यह भी स्पष्ट करना होता है कि किस तरह से रोगी का व्यवहार उसकक चिन्तन से प्रभावित होता है और उसका व्यवहार किस तरह से चिन्तन के विभिन्न पहलुओं पर निर्भर करता हैं। इसमें रोगी तथा अन्य लोगों के बच हुए संचार पर पर्याप्त बल डाला जाता है जिससे अन्तर्वैयक्तिक संबंध को अधिक संतोषजनक बनाया जा सकता है। यदि गौर से देखा जाए तो मनश्चिकत्सा में स्वयं ही एक नया अन्तवैयक्ति संबंध सम्मिलित होता है जो स्पष्टतः उस संबंध से मेल नहीं खाता है जिसे रोगी अपनी जिंदगी में विकसित किये हुए होता है। ऐसी परिस्थिति में मनश्चिकित्सक विशेष रुप से इस बात का ख्याल रखते ह कि अन्तवैयक्तिक संबंध का स्वरुप इस प्रकार का हो जिससे रोगी को अपनी वास्तविक जिन्दगी के अन्य लोगों के साथ सामाजिक अन्तःक्रिया करने में सुविधा हो।

(i) **रोगी के सामाजिक वातावरण में परिवर्तन उत्पन्न करना** - मनश्चिकित्सा का चाहे जो भी प्रारुप क्यों न हो, इसका एक मुख्य उद्देश्य रोगी के सामाजिक वातावरण में परिवर्तन लाना होता है। किसी भी रोगी का वास्तविक लाभ तो तब होता है जब वह अपने दिन प्रतिदिन के जीवन जिंदगी में ठीक ढंग से समायोजन कर सके। यद्यपि रोगी का सामाजिक वातावरण जिसमें वह दूसरों से तथा दूसरे संस्थानों से प्रभावित होता है, मनश्चिकित्सा के नियंत्रण से बाहर होता है, फिर भी कोशिश इस बात का प्रयन्त किया जाती है कि रोगी के सामाजिक वातावरण के एजेन्टों केा इस ढंग से प्रभावित किया जाए जिससे उनमें पर्याप्त परिवर्तन आ जाए और रोगी का सामाजिक जीवन सुखमय हो सके।

(j) **रोगी की शारीरिक प्रक्रियाओं में परिवर्तन लाना** ताकि उसके पीडादायक अनुभूतियों को कम किया जा सके तथा शारीरिक चेतना में वृद्धि की जा सके -मनश्चिकित्सा में यह एक पूर्वकल्पना रहती है कि मन तथा शरीर दोनों ही एकदूसरे से प्रभावित करते है। स्वच्छ मन के लिए स्वच्छ शरीर का होना आवश्यक है। मनश्चिकित्सक का मत है कि रोगी के शारीरिक दुखों या पीडादायक अनुभूतियों को कम करके तथाउनमें शारीरिक चेतना में वृद्धि करकके मनश्चिकित्सा की परिस्थिति के लिए उन्हें अधिक उपयोगी बनाय जा सकता है। यही कारण है कि कुछ मनश्चिकित्सा जैसे व्यवहार चिकित्सा में विश्राम प्रशिक्षण देकर उनके तनाव एवं चिन्ता को दूर किया जाता है और इसे प्रतिअनुबंधन के लिए आवश्यक भी माना जाता है। उसी तरह से रोगी के शारीरिक चेतना में वृद्धि करने के लिए विभिन्न तरह के व्यायामों जो भारतीय योग के नियमों पर आधारित होते हैं का सहारा लिया जा सकता है। इन सबों का परिणाम यह होता है कि रोगी अपने वास्तविक जीवन में ठीक ढग से समायोजन स्थापित करने में सफल हो जाता है।

(k) **रोगी के चेतन अवस्थाओं में इस प्रकारका परिवर्तन करना जिसमें उसमें आत्म बोध, नियंत्रण तथा सर्जनात्मकता की क्षमता में वृद्धि हो सके** - मनश्चिकित्सा का एक उद्देश्य यह भी होता है कि रोगी के चेतन अवस्था में इस ढंग का परिमार्जन या परिवर्तन किया जाए कि उससे उसमें अपने व्यवहारों पर अधिक नियंत्रण की क्षमता बढ़ जाये। सब क्षमताओं के विकास के लिए तरह तरह की प्रविधि जिसमें मनन, अलगाव तथा चेतन विस्तार आदि प्रमुख हे। का सहारा लिया जाता है। इन सब विधियों से रोगियों में आत्म ज्ञान तथा आत्म निर्भरता, आत्म सामर्थ्यता आदि जैसे गुणों का विकास होता है।

स्पष्ट हुआ कि **मनश्चि**कत्सा के कई उद्देश्य है। इन लक्ष्यों में से अधिक से अधिक लक्ष्यों की पूर्ति होने से मनश्चिकित्सा की प्रगभावशीलता काफी बढ़ जाती है|

13.5 मनश्चिकित्सा के प्रकार

जैसा कि हम जानते हैं मनश्चिकित्सा रोगों के उपचार की मनोवैज्ञानिक विधि होती है। इसमें सांवेगिक क्षुब्धताओ का उपचार दैहिक विधि से न करके मनोवैज्ञानिक विधियों से की जाती है। चूंकि सांवेगिक क्षुब्धताओं के उपचार करने की मनोवैज्ञानिक विधियां अनेक हैं, अतः मनश्चिकित्सा के भी कई प्रकार बतलाये गये हैं। मनश्चिकित्सा के पांच प्रमुख सामान्य प्रकार है और फिर प्रत्येक के कई उपप्रकार है। जिनका वर्णन इस प्रकार है—

(1)मनोगतिकी चिकित्सा- मनोगतिकी चिकित्सा से तात्पर्य एक ऐसे मनोवैज्ञानिक उपचारदृष्टिकोण से होता है जिसमें व्यक्ति या रोगी के व्यक्तित्व गतिकी पर मनोविश्लेषणात्मक परिप्रेक्ष्य में बल डाला जता है। इस चिकित्सा के तहत पांच प्रमुख उप्रप्रकार हैं जो इस प्रकार हैं-

(a) फ्रायड की मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा।

(B) एडलर का वैयक्तिक चिकित्सा

(c) युग काविश्लेषणात्मक चिकित्स

(d) अहं विश्लेषण

(e) संक्षिप्त मनश्चिकित्सा

(f) वस्तु संबंधी चिकित्सा

(g) अन्तवैयक्तिक मनोगत्यात्मक चिकित्सा

(2) व्यवहार चिकित्सा (Behavior therapy) - व्यवहार चिकित्सा में कुसमायोजी या अपअनुकूलित व्यवहार के जगह पर समायोजी या अनुकूलित व्यवहार पैवलव, स्कीनर तथा वैण्डुरा द्वारा बतलाये गए सिद्धान्तों पर आधारित प्रविधियों द्वारा सिखाया जाता हे।

इन सब का वर्णन आज अध्याय में किया जाएगा।

(3) संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा (Cognitive behavior therapy)- इस तरह की चिकित्सा में चिकित्सक रोगी के संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं जैसे-चिन्तन, प्रत्यक्षण, मूल्यांकन तथा आत्म कथनों को ध्यान में रखते हुए चिकित्सा प्रदानकरता है इसके चार प्रकार है।

(a)- रेशनल इमोटिव चिकित्सा (Rational emotive therapy)-

(b)- संज्ञानात्मक चिकित्सा (Cognitive therapy)-

(c) तनाव टीका चिकित्सा (Tension incubation therapy)-

(d) बहुआयामी चिकित्सा (Multi dimensional therapy)-

(4) मानवतावादी अनुभवजन्य चिकित्सा (Humanistic-empirical therapy)- इस चिकित्सा में रोगी की समस्याओं का समाधान उनके भीतर छिपे अन्तशक्तियों एवं अस्तित्वात्मक पहलुओं के आलोक में की जाती है। इसके अन्तर्गत निम्नांकित तरह के चिकित्सा प्रकारों को रखा गया है-

(a) क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा (Client centered therapy)-

(b)- अस्तित्वात्मक चिकित्सा (Existential therapy)

(c)- गेस्टाल्ट चिकित्सा (Gestalt therapy)-

(d)- लोगों चिकित्सा (Logo therapy)-

(e)- नियम भूमिका चिकित्सा (Ethical role therapy)-

(5)- सामूहिक चिकित्सा (Group therapy)- सामूहिक चिकित्सा में रोगी का उपचार एक समूह मेंन कि वैयक्तिक रुप से की जाती है। इसके अंतर्गत निम्नांकित पांच प्रकार के चिकित्सा पद्धति को रखा गया है-

(a)- मनोनाटक (Psycho drama)

(b)- पारिवारिक चिकित्सा (**Family therapy)-**

(c)- वैवाहिक या युग्म चिकित्सा

(d)- सव्यवहार विश्लेषण

(e)- सामूहिक मुठभेड चिकित्सा।

स्पष्ट हुआ कि मनश्चिकित्सा के मुख्य पांच प्रकार है और इन पांचो प्रकार के कई उपप्रकार है। स्पष्ट हुआ कि मनश्चिकित्सा के कई प्रारुप हैं। जिनमें से कुछ व्यक्ति विशेष पर बल डालते हैं कुछ व्यक्तियों के समुह पर बल डालते हैं तथ कुछ एक ही परिवार के सदस्यों पर बल डालते हैं। नोरक्रास, प्रोचास्का गालाघर के एक सर्वे किया जिसमें उन्होंने मनश्चिकित्सा के विभिन्न प्रारुपों के प्रति करीब 579 नैदानिक मनोवैज्ञानिक की अपनी उन्मुखता का विश्लेषण किया।

स्पष्ट हुआ कि मनश्चिकित्सा के कई प्रकार है। इन प्रकारों का एक सरल वर्गीकरण या सामान्य वर्गीकरण प्रस्तुत करने के ख्याल से कारसन तथा बुचर ने अति चर्चित वर्गीकरण पद्धति का वर्णन किया है जिसका वर्णन यहॉ अपेक्षित है। इस पद्धति का आधार चिकित्सीय ध्यान के लिए प्रमुख क्लायंट उपतंत्र है। इनके अनुसार सामान्यतः किसी भी मनश्चिकित्सा में नियंत्रित चार पहलूओं पर ध्यान दिया जाता है- **भाव, व्यवहार, संज्ञान तथा पर्यावरण।** इस अंग्रेजी शब्द के प्रथम अक्षरों को मिलाकर ।ठब्म् ढांचा या पैमाना कहा जाता है। इसी के अनुसार **करसन एवं वुचर** ने मनश्चिकित्सा के निम्नांकित चार प्रबल प्रकार बतलायें हैं जो इस प्रकार हैं-

(1)टाईप 'ए' चिकित्सा-- इसे टाईप 'ए' मनश्चिकित्सा इसलिए कहा जाता है। क्योंकि इस तरह की पद्धति में क्लायट के भाव या संवेग तथा चिंता में परिवर्तन लाकर उसका उपचार करने की कोशिश किया जाता है। इसके अंतर्गत फ्रायडिन मनश्चिकित्सा, फा्रयडिन मनश्चिकित्सा के विभिन्न विकल्प क्लासिकी अनुबंधन पर आधारित व्यवहार चिकित्सा एवं फलडिंग, अतः स्फोटात्मक चिकित्सा आदि प्रमुख है। सभी तरह के जैविक चिकित्साओं को भी इसी कें अंतर्गत रखा जाता है।

(2) टाईप बी चिकित्साः इसके अंतर्गत उन सभी चिकित्सकों को रखा जाता है जिसका स्पष्ट उद्देश्य रोगी के अपअनुकूली व्यवहार में परिवर्तन लाना होता है। क्रियाप्रसूत अनुबंधन पर आधारित सभी तरह के व्यवहार चिकित्सा को इस श्रेणी में रेखा जाता है क्योंकि इनका उद्देश्य पुनर्बलन संभाव्यता में तोड-जोड करके रोगी के अपअनुकूली व्यवहार में स्पष्ट ढंग से परिवर्तन लाना होता है।

(3)- टाईप सी चिकित्सा - इस तरह की चिकित्सा में रोगी के संज्ञान अर्थात उस सूझ-बूझ, प्रत्यक्षण, विश्वास आदि में परिवर्तन लाकर उनका उपचार की कोशिश की जाती है। रेशनल-इमोटिव चिकित्सा, बेक का संज्ञानात्मक चिकित्सा तथा तनाव टीका चिकित्सा को इसी श्रेणी में रखा गया है।

(4)- टाईप ई चिकित्सा: इस तरह की चिकित्सा में रोगी के माता-पिता, शिक्षक, दोस्त, , पडोसियों आदि के पर्यावरणी प्रतिक्रियाओं में परिवर्तन करके उसका उपचार करने की कोशिश की जाती है। अन्तर्वैयक्तिक चिकित्सा तथा सामुदायिक चिकित्सा को इस श्रेणी की चिकित्सा में रखा गया है।

यद्यपि चिकित के उपयुक्त चार प्रकार काफी लोकप्रिय हैं, फिर भी इनका दोष यह है कि इनचार श्रेणियों में चिकित्सा के केवल प्रबल श्रेणियों को ही रखा जा सकता है, सभी तरह के चिकित्साओं को नहीं। इस परिसीमा को स्वयं करसन एवं बुचर ने भी स्वीकार किया है

13.6. नैदानिक हस्तक्षेप का क्रम (Sequence of clinical Intervention)

नैदानिक हस्तक्षेप या मनश्चिकित्सा के विभिन्न प्रकार हैं। यदि हम उन प्रकारों पर ध्यान दें तो यह स्पष्ट होगा कि मनश्चिकित्सक एक खास क्रम में प्राविधियों का अनुसरण करते हुए चिकित्सा की प्रक्रिया जारी रखते हैं। नैदानिक हस्तक्षेप के इस क्रम को होकानसन में निम्नाकित पांच चरणों में क्रमबद्ध किया है-

(1) आरंभिक सम्पर्क (Preliminary contact)-

(2) मूल्यांकन (Evaluation)-

(c) उपचार का लक्ष्य (Goal of therapy)-

(d)- उपचार को क्रियान्वयन करना (Implementation of **t**herapy)-

(e)- समायन, मूल्यांकन तथा अनुवर्तन

इन पांचों चरणों का वर्णन निम्नांकित है--

(1)आरंभिक सम्पर्क - नैदानिक हस्तक्षेप या मनश्चिक्तिसा की यह पहली अवस्था होती है जिसमें क्लयांट उपचार गृह में प्रवेश करता है तथा चिकित्सक से पहला सम्पर्क करता है। इसमें रोगी या क्लायंट के मन में तरह-तरह की आशंकाए, शक चिन्ता आदि होती है। कुछ क्लायंट तो मेडिकल उपचार तथा मनश्चिकित्सा में अंतर को समझ भी नहीं पाते है इस अवस्था में क्लायंट को यह बतलाया जाता है कि उपचार गृह में क्या होता है।

(2) मूल्यांकन - जब यह निश्चित कर लिया जाता है कि क्लायंट से आगे सम्पर्क रखा जा सकता है तो उसकी समस्याओं के मूल्यांकन के लिए उसे फिर कुछ दिनों तक उपचार गृह में बुलाया जाता है। क्लायंट की समस्या के वास्तविक स्वरुप को ध्यान में रखते हुए कई तरह के मूल्यांकन प्रविधियों का उपयोग किया जाता है। विभिन्न तरह के मनोवैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा रोगी के बारे में कई तरह की सूचनाएं एकत्रित की जाती है। इतना ही नही, रोगी या क्लायंट का एक केस इतिहास भी तैयार किया जाता है। कुछ क्लायंट की समस्याओं से निबटने के लिए अन्य श्रेणी

के पेशेवरों जैसे मेडिकल डाक्टर से भी सम्पर्क करना आवश्यक हो जाता है अन्त में विभिन्न स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं को विश्लेषित करने के बाद उनका प्रारंभिक समन्वय किया जाता है जिससे रोगी की समस्याओं का आरंभिक परिकल्पना की जाती है।

(c)- उपचार का लक्ष्य - मूल्यांकन आंकडों के समन्वित करने के बाद चिकित्सक तथा क्लायंट एक साथ समस्या के बारे में क्रमबद्ध रुप से विचार विमर्श करना तथा उसका निदान के लिए क्या किया जा सकता है पर भी विचार करना प्रारम्भ कर देते हैं। इसमें क्लायंट तथा चिकित्सक के बीच एक तरह का अनुबंध तैयार किया जाता है। जिसमें चिकित्सक क्लायंट की समस्याओं को दूर करने का वादा करते हैं और रोगी अपनी इच्छाओं एवं उद्देश्यों का उल्लेख करता है। इस अनुबंध में चिकित्सा का लक्ष्य चिकित्सा की अवधि, चिकित्सा का सामान्य प्रारुप, चिकित्सकीय सत्र की आवृति, खर्च क्लायंट की जबावदेहियों आदि का उल्लेख होता है। चिकित्सा के दौरान क्लायंट के बारे में अतिरिक्त सूचनाएं प्राप्त होती है जिनके संदर्भ में अनुबंध के प्रावधानों में परिवर्तन करना पडता है।

(d)- उपचार का क्रियान्वयन करना- मनश्चिकित्सा के इस चरण में उपचार का विशिष्ट प्रारुप तैयार किया जाता है। जब आरंभिक लक्ष्य निर्धारित कर लिय जाते हैं तो यह निश्चित किया जाता है। कि मनश्चिकित्सा का कौन प्रारुप रोगी या क्लायंट के लिए अधिक उपयुक्त होगा। क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा, व्यवहार चिकित्सा, मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा आदि में से कोई भी चिकित्सा द्वारा रोगी का उपचार किया जाता है। क्लायंट की समस्याओं के संदर्भ में चिकित्सा के प्रारुप के बारे में रोगी से विचार विमर्श किया जाता है। इतना ही नहीं, रोगी से घर पर क्या करने की उम्मीद की जाती है इसके बारे में भी उसे बतला दिया जाता है।

e)- समापन, मूल्यांकन तथा अनुवर्तन - जब चिकित्सक को यह विश्वास हो जाता है कि क्लायंट अपनी समस्याओं का स्वयं ही निबटा लेता है, समापन की प्रक्रिया प्रारंभ की जाती है। समापन अचानक नहीं करके क्रमिक ढंग से होता है। चिकित्सा सत्र. की बारंबारता को धीरे-धीरे घटाया जाता है। समापन की अवस्था में चिकित्सक रोगी कके मन मेमं उत्पन्न होने वाले भावनाओं का भी ख्याल करता है।

चिकित्सा के दौरान रोगी में हुई प्रगति का भी मूल्यांकन किया जाता है। संबंधित आंकड़ो को एकत्रित करके इसीलिए रखा जाता है कि रोगी अपने द्वारादि किये गये प्रयासों का तथाद उपचारगृह द्वारा किये गए प्रयासों का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन स्वयं कर सके। इससे उपचार गृह तथा संबंधित चिकित्सिक की प्रतिभा एवं कौशल का उचित जानकारी भी लोगों को होती है। इसके लिए कुछ शोध की भी शुरुआत की जाती है।

स्पष्ट हुआ कि नैदानिक हस्तक्षेप या **मनश्चि**कित्सा के क्रम में कई चरण होते है। जिनसे होकर इसकी प्रक्रिया संपन्न होती है।

अभ्यास प्रश्नः-

1. क्लायंट वह व्यक्ति होता है जिसमें ……. या ……..क्षुब्धता (disturbance) उत्पन्न हो जाती है

2. …… अर्थात चिकित्सा के दौरान किस हद तक चिकित्सक तथा रोगी दोनों ही समान दृष्टिकोण रखते हैं।

3. मनचिकित्सा का सामान्य उदेष्य रोगी में ..... , ...तथा .....आदि विकसित करना होता है।

4. **.....**में व्यक्ति या रोगी के व्यक्तित्व गतिकी पर मनोविश्लेषणात्मक परिप्रेक्ष्य में बल डाला जता है।

5. रेशनल-इमोटिव चिकित्सा, बेक का संज्ञानात्मक चिकित्सा तथा तनाव टीका चिकित्सा को ..... श्रेणी में रखा गया है।

6. लोगो चिकित्सा को .....तरह के चिकित्सा प्रकारों के अन्तर्गत को रखा गया है|

13.7 सारांश

-मानसिक रूप से अवस्थ एवं सांवेगिक रूप से विक्षुब्ध व्यक्तियों की मनोवैज्ञानिक विधियों से उपचार करना मनश्चिकित्सा(psychotherapy)कहा जाता है। इसे नैदानिक हस्तक्षेप (clinical intervention) भी कहा जाता है -मनश्चिकित्सा में निहित तीन मौलिक तथ्य हैं -(a)सहभागी(b)चिकित्सीय संबध(c)मनश्चिकित्सा की प्रविधि - मनचिकित्सा का सामान्य उदेष्य रोगी के संवेगात्मक एवं मानसिक तनाव को दूर करके उसमें सामर्थ्य(competency), आत्म- बोध (self-actualization) पर्याप्त परिपक्वता (adequate maturation)आदि विकसित करना होता है|

मनश्चिकित्सा के चार प्रबल प्रकार (1)मनोगतिकी चिकित्सा- (2) व्यवहार चिकित्सा (3) संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा (4) मानवतावादी अनुभवजन्य चिकित्सा (5)- सामूहिक चिकित्सा

करसन एवं वुचर ने मनश्चिकित्सा के चार प्रबल प्रकार बतलायें हैं(1)टाईप 'ए' (2) टाईप बी
-नैदानिक हस्तक्षेप के इस क्रम को होकानसन में पांच चरणों में क्रमबद्ध किया है-(1) आरंभिक सम्पर्क (2)मूल्यांकन (c)उपचार का लक्ष्य (d)उपचार को क्रियान्वयन करना (e)-समायन, मूल्यांकन तथा अनुवर्तन।

13.8. शब्दावली

मनःस्नायुविकृति (psychoneurosis)- कम गंभीर मनोरोगों का एक प्रकार।

13.9. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सांवेगिक ,मानसिक 2. परानुभूतीय **गूंज** 3. सामर्थ्य ,आत्म- बोध ,पर्याप्त परिपक्वता 4. मनोगतिकी चिकित्सा 5. संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा 6. मानवतावादी अनुभवजन्य चिकित्सा

13.10. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान- अरूण कुमार सिंह-मोतीलाल बनारसीदास

2. आधुनिक नैदानिक मनोविज्ञान- डा0एच0के0 कपिल-हर प्रसाद भार्गव

3. असामान्य मनोविज्ञान- विषय और व्याख्या- डा0मुहम्मद सुलेमान, डा0 मुहम्मद तौवाव -मोतीलाल बनारसीदास

13.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नैदानिक हस्तक्षेप को परिभाषित कीजिए तथा उसके प्रकारों का वर्णन कीजिए।

   Define clinical intervention and describe its type .

2. नैदानिक हस्तक्षेप क्या है? इसके वर्गो का वर्णन करें।

   What is clinical intervention? Describe its sequence.

3. मनश्चिकित्सा के उद्देश्य पर एक निबन्ध लिखिए

   Write an essay on the goals of psychotherapy

इकाई 14. चिकित्सक द्वारा मुद्दों का सामना करना, सीखने की सीमाएं : स्थानांतरण एवं प्रति-स्थानांतरण, यथार्थवादी लक्ष्यों की स्थापना करना, भिड़त समूह चिकित्सा : प्रकार एवं प्रभावशीलता (Issues faced by Therapist, Learning the limits of Transference and Counter Transference, Establishing Realistic Goals, Encounter Group therapy: Types and Effectiveness)

इकाई संरचना

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 नैदानिक मनोविज्ञानिक की समस्याएं

14.4 अन्तरण या प्रतिअन्तरण

14.5 मुठभेड़ समूह चिकित्सा विधि

14.6 सारांश

14.7 शब्दावली

14.8 अभ्यास के प्रश्नों के उत्तर

14.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

14.10 निबन्धात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

जैसा कि हम जानते है कि नैदानिक मनोविज्ञान की एक ऐसी प्रयुक्त शाखा है जिसमें मनोवैज्ञानिकों की कुल संख्या का उच्चतम प्रतिशत कार्यरत है। यद्यपि मनोविज्ञान की यह शाखा का कार्यक्षेत्र काफी विस्तृत है तथा इस क्षेत्र में काफी शोध किए जा रहे हैं फिर भी मनोविज्ञान की इस शाखा की कुछ समस्याएं हैं जिनसे अवगत होना आवश्यक है क्योंकि इनसे उनके स्वरुप पर तो प्रकाश पड़ता ही है साथ ही साथ कुछ वैसे तथ्यों की भी जानकारी होत है जिसे नैदानिक मनोवैज्ञानिक अपने विभिन्न तरह की भूमिकाओं में अनुभव करते हैं। ऐसी कुछ प्रमुख समस्याओं का वर्णन निम्नांकित है-

प्रस्तुत इकाई में ऐसी कुछ प्रमुख समस्याओं के बारे में आप जान सकेगें।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप -

1. नैदानिक मनोविज्ञानिक की समस्याएं,अन्तरण व प्रतिअन्तरण को समझ सकें।
2. मुठभेड़ समूह चिकित्सा विधि व इसकी प्रभावशीलता को जान सकें ।

14.3 नैदानिक मनोविज्ञानिक की समस्याए)

(a)निदान एवं मूल्यांकन से संबद्ध समस्याएं

(b) नैदानिक परीक्षणों से संबद्ध समस्याएं

(c)- उपचार से संबंद्ध समस्याएं

(d)- शोध एवं शिक्षण से संबंध समस्याएं

(e)- परामर्श एवं प्रशासनिक कार्यो से संबंध समस्याएं

इन समस्याओं का वर्णन इस प्रकार है-

(1)निदान एवं मूल्यांकन से संबद्ध समस्याएं- नैदानिक मनोवैज्ञानिकों का एक प्रमुख कार्य मानसिक रोगियों का मूल्यांकन कर उनके रोग के स्वरुप को निश्चित करना होता है। इस सिलसिले में उन्हें कुछ समस्याओं का सामना कराना पड़ता है। जैसे - मूल्यांकन करते समय उनके सामने एक महत्वपूर्ण समस्या जो अक्सर उठती है वह यह है कि इसका प्रारुप क्या होना चाहिए ? क्या मूल्यांकन प्रेक्षण के रुप में किया जाय या परीक्षण प्रक्रिया के रुप में किया जाय या साक्षात्कार के रुप में किया जाय? इसके अलावा मूल्याँकन करते सयम नैदानिक मनोवैज्ञानिक को कभी-कभी यह भी निश्चय करने की समस्या उठ खड़ी होती है कि क्या अमुक मानसिक रोगी को अस्पताल में भर्ती करके उपचार किया जाना अच्छा रहेगा या उसे एक बाहा्र रोगी के समान ही उपचार करना अच्छा होगा ? इन सभी समस्याओं के उचित समाधान नहीं होने पर नैदानिक मनोवैज्ञानिकों के सामने दूसरी समस्या जो रोग के उचित निदान से होती है, उठ खडी होती है। ऐसी परिस्थिति में नैदानिक मनोवैज्ञानिक रोगी के रोग के स्वरुप को ठीक ढंग से नहीं समझ पाते है और उसका गलत निदान करके अनुचित चिकित्सीय प्रविधि अपना लेते हैं जिने रोगी की समस्या सुलझने के बजाय और भी अधिक उलझ जाती है।

(2) नैदानिक परीक्षणों से संबंध समस्याएं - नैदानिक मनोवैज्ञानिक मानसिक रोगों के स्वरुप को सही-सही पहचान करने के लिए कुछ विशेष मनौवैज्ञानिक परीक्षण का प्रयोग करते है जिन्हें नैदानिक मनोविज्ञान में नैदानिक परीक्षण कहा जाता है। इन परीक्षणों में व्यक्तित्व परीक्षण तथा बुद्धि परीक्षण काफी अधिक लोकप्रिय है। नैदानिक मनोवैज्ञानिकों को इन परीक्षणोंसे संबध समस्याओं का भी सामना करना पडता है। ऐसी समस्याएं मूलतः तीन प्रकार की होती है-

14. किस तरह से एक विश्वसनीय एवं वैध परीक्षण का निर्माण किया जा सकता है ?

2. उपलब्ध ऐसी परीक्षणों की सक्रियता कैसी बढ़ी जा सकती है ?

3. इस बात की पहचान कैसे की जाए कि कौन सा परीक्षण किस तरह की रोगी के लिए सर्वाधिक उपयुक्त होगा ?

4. इन परीक्षणों के परिणाम पर रोग के उपचार करने में कहॉ तक भरोसा किया जाए?

उपर्युक्त समस्याएं कुछ ऐसी है जिनका समाधान अभी तक नहीं हो पाया है। फलस्वरुप एक सफल नैदानिक मनोवैज्ञानिक को इन परीक्षणों के आधार पर रोग का निदान करने तथा उनका उचार करने में काफी सतर्कता बरतनी पड़ती है।

(3) उपचार से संबद्धसमस्याएं - सामान्य अर्थ में यह कहा जा सकता है कि नैदानिक मनोविज्ञान मानसिक रोगों के उपचार का विज्ञान है। कहने का तात्पर्य यह है कि उपचार नैदानिक मनोवैज्ञानिकों के विभिन्न कार्यो में सर्वोपरि एवं सर्वश्रेष्ठ है। उपचार में सफलता को नैदानिक मनोवैज्ञानिक अपना व्यक्तिगत सफलता मानते है। लेवानडेस्की के अनुसार उपचार कार्य में भी नैदानिक मनोवैज्ञानिकों को कुछ समस्याओं से जूझना पड़ता है। जैसे- क्या रोगी को वैयक्तिक चिकित्सा दिया जाए या सामूहिक चिकित्सा दिया जाए ? क्या रोगी के लिए शाब्दिक मनोचिकित्सा असंवेदीकरण से अधिक श्रेष्ठ साबित होगा ? चिकित्सकीय सत्र में रोगी के साथ किस तरह का संबंध और ऐसा संबंध किस सीमा तक रखना चाहिए ? चिकित्सीय सत्र का अन्त किस प्रकार किया जाना चाहिए? आदि-आदि। इन समस्याओं का स्वरुप कुछ इतना अधिक तकनीकी है कि आज भी एक सफल नैदानिक मनोवैज्ञानिक को इनका सही उततर ढूंढने में नाकों चने चबाना पड़ता है।

(4)- शोध एवं शिक्षण से संबंध समस्याएं- नैदानिक मनोविज्ञान की कुछ समस्याएं शैक्षणिक हैं तथा उनका संबंध शोध कार्यो से है। किसी भी विज्ञान की प्रगति का आधार उनका शोध कार्य होता है। यह उक्ति नैदानिक मनोविज्ञान के लिए अपवाद नहीं है। नैदानिक मनोवैज्ञानिकों को तरह-तरह के शोध करने पड़ते है। इन शोध कार्यों में उन्हें कभी-कभी काफी कठिनाई का सामना करना पड़ जाता हे। ऐसा देखा गया है कि कभी-कभी उन्हें मस्तिष्कीय विकृतियों से संबधित क्षेत्रों में शोध कार्य करना पड़ता है जहां उन्हें मनोरोगविज्ञानियों का सहारा लेना अनिवार्य हो जाता हे। खासकर जब मस्तिष्कीय विकृति का आधार कुछ आंगिक होता है तो वहां अनिवार्यतः उन्हें मनोरोगविज्ञानियों का अन्य मेडिकल विशेषज्ञों का सहारा लेना पड़ता है। प्रायः यह देखा गया है कि इस तरह की अनिवार्यता निर्भरता में उन्हें इन लोगों का उतना सहयोग नहीं मिल पाता है जितना कि मिलना चाहिए था। परिणामतः उनके शोध कार्य में विघ्न पड़ने लगता है। शिक्षण से संबंधित समस्या नैदानिक मनोवैज्ञानिकों के लिए चुनौतीपूर्ण साबित हुआ है। नैदानिक मनोविज्ञानकों को मनोविकृति परीक्षण कार्य साक्षात्कार कार्य, चिकित्साव्यक्तिव सिद्धान्त आदि विषयों का शिक्षण करना पड़ता है। उनके सामने समस्या यह उठती है कि इनमें सभी विषयों का शिक्षण क्या एक विधि से जैसे भाषणविधि से करना उपयुक्त होगा या भाषण विधि के साथ-साथ प्रदर्शन विधि का भी उपयोग किया जाना उत्तम होगा ? इस मूल समस्या के सभी उततर के बारे में आज भी नैदानिक मनोवैज्ञानिकों के बीच मतभेद है।

(5)- परामर्श एवं प्रशासनिक कार्यो से संबंध समस्याएं - नैदानिक मनोविज्ञान की कुछ समस्याएं परामश्र एव प्रशासन सं संबधित है क्योंकि नैदानिक मनोवैज्ञानिकों को ऐसे कार्यो में भी हाथ बंटाना होता है। नैदानिक मनोवैज्ञानिकों के सामने समस्या यह उठती है। कि परामर्श का प्रारुप क्या होना चाहिए ? क्या परामर्श प्रत्येक केस के लिए अलग-अलग दिया जाना चाहिए या विभिन्न केसो की समस्याओं को देखते हुए कोई सामान्य परामर्श किया जाना चाहिए ? किस तरह का परामर्श किस परिस्थिति में अधिक प्रभावकारी होगा? आदि आदि। इसकें अलावा नैदानिक मनोवैज्ञानिक को कुछ प्रशासनिक समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है। जैसे- उन्हें समय-समय पर यह निश्चित करना हेाता है कि रोगी का रिकार्ड ठीक ढंग से संपोषित किया जा रहा है या नहीं? इस तरह के रिकार्ड को किस प्रारुप में सुसज्जित किया जाए ताकि उससे अधिक से अधिक अर्थ निकल सके ? मानसिक अस्पताल के अन्य कर्मचारी रोगी के साथ सहयोग करते है या नहीं ? यदि नहीं तो उन्हें सहयोग दिखलाने के लिए किस तरह से प्रेरित किया जा सकता है ? आदि आदि।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि नैदानिक मनोविज्ञान की अपनी कुछ विशेष समस्याएं हैं जिनके कारण इस शाखा की प्रगति थोड़ी अवरुद्ध हुई है। आधुनिक नैदानिक मनोवैज्ञानिक इस चुनौती को काफी गंभीरता से लिए है ।

14.4 अन्तरण या प्रतिअन्तरण

चिकित्सा के संदर्भ में अंतरण का अर्थ रोगी की एक महत्वपूर्ण व्यक्ति से सम्बन्धित अनुभवों का चिकित्सक की ओर मुड जाना होता है। प्रायः अन्तरण चिकित्सक के प्रति एक लैंगिक आकर्षण के रुप में प्रकट होता है ।परन्तु कभी-कभी वह चिकित्सक केक प्रति क्रोध, घृणा, अविश्वास अति आशयता पितृत्व प्रवृत्ति के रुप मे प्रकट होती है। इसके अतिरिक्त वह कभी-कभी चिकित्सक को अपन गुरु या भगवान भी मानने लगता है। जब फ्रायड ने वास्तव में अपनी चिकित्सा पद्धति में अन्तरण का प्रयोग किया तो उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि अंतरण की प्रवृत्ति चिकित्सा की सफलता मं बाधा बन सकती हैं परन्तु जो उसने सीखा था वह यह था कि अन्तरण का विश्लेषण ही वास्तव में वह कार्य जिसे करने की आवश्यकता थी। मनोगत्यात्मक मनोचिकित्सा के केन्द्र बिन्दु में चिकित्सक व रोगी अन्तरण सम्बन्धों को पहचानते है और सम्बन्धों के अर्थ को खोजते है। चूंकि रोगी व चिकित्सक के मध्य का अन्तरण अचेतन अवस्था में होता है इसलिए मनोगत्यात्मक चिकित्सक जो रोगी की अचेतन सामग्री का प्रयोग करते है। अन्तरण का प्रयोग करते है इससे वे रोगी के बाल्यकाल में उत्पन्न एवं अनुचरित द्वन्दों को निकाल लेने में सफल हो जाते हैं।

प्रतिअन्तरण को हम अन्तरण के ठीक विपरीत रुप में प्रयुक्त कर सकते है। प्रतिअन्तरण में चिकित्सक का रोगी के साथ एक सांवेगिक जुडाव हो जाता है। इस दशा में चिकित्सक की स्थिति रोगी की भावनाओं से मुडकर उतनी ही आलोचनात्मक हो जाती है जितनी की अन्तरण में चिकित्सक के साथ जुड़कर रोगी की हो जाती है न केवल इससे चिकित्सक चिकित्सकीय सम्बन्धों में अपने संवेगों का संचालन करता है बल्कि यह प्रति अन्तरण रोगी की भावनाओं को बाहर निकालने में चिकित्सक को बहुमूल्य दृष्टि प्रदान करता है। उदाहरण के लिए यदि एक पुरुष चिकित्सक अपनी महिला रोगी के साथ लैंगिक आकर्षण महसूस करता है तो इस प्रति अन्तरण की प्रक्रिया में वह यह अनुभव कर लेगा कि महिला उसकी इन भावनाओं को समझकर कोई प्रतिक्रिया न कर दे।

जब चिन्हित हो आ जाता है तो चिकित्सक रोगी से यह पूछती है कि उसकी (रोगी की) उसके प्रति (चिकित्सक) क्या भावनाऐं है। इस प्रकार वह और इसके उपरान्त वह उन भावनाओं को रोगी के अचेतन अभिप्रेरण, इच्छाओं व भय के साथ जोड़ सकता है।

जिस प्रकार चिकित्सा का उद्देश् एक सम्बन्ध की स्थापना करना होता है और हस्तक्षेप पद्धति में चिकित्सक सफल चिकित्सा हेतु रोगी के साथ काल्पनिक सम्बन्ध भी स्थापित करता हे। इसी प्रकार अन्तरण व प्रति अन्तरण यद्यपि सम्बन्ध स्थापना के पर्याय है। फिर भी एक स्तर का निर्धारित होना अनिवार्य होता है। यह सत्य है **कि**हमारा उन सभी व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। जो हमारे साथ रहते है या जिसके साथ हम रहते है, इनमें रोगी व चिकित्सक को सम्बन्ध बहुत गहरा होता है। फिर भी इस सम्बन्ध की सीमा का निर्धारण करना अत्यन्त अनिवार्य है। ये अनुभूतियां नकारात्मक एवं सकारात्मक दोनो ही हो सकती हैं। हमें यह सर्वदा अपने मस्तिष्क में रखना चाहिए कि कहां पर अन्तरण या प्रतिअन्तरण उत्पन्न हुआ है।

अन्तरण के उदाहरण -

नैदानिक मनोवैज्ञानिक एक ऐसा व्यक्ति होता है जिसके सम्पर्क में बहुत से व्यक्ति आते है। नैदानिक मनोवैज्ञानिक का कार्य उनका निर्णय सुनाना या उनको उनकी सीमाएं बताना नहीं होता अपितु उन्हें समझना व उस सीमा तक सामान्यीकृत करना होता है जितना वह कर सकता है। सामान्य करने की यह प्रक्रिया एक महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है। लेकिन कुछ विशेष पारिस्थितियां भी होती है।

1. यदि रोगी चिन्तित व सामाजिक रुप से पृथक होता है तो चिकित्सक की भूमिका उसके जीवन का केन्द्र बिन्दु होती है। और वही उसके सामजिक सम्बन्धों का एक आधार होता है ।
2. रोमांटिक रुचि के अवसर कम प्राप्त होते है।
3. वे व्यक्ति जो कि ''वार्डर लाइन व्यक्तित्व विकृत'' होते है या जिनके अर्न्तवैदन्तिक सम्बन्धों की शैली अत्यन्त कठिन होती हे उनको प्रेम और घृणा को मिश्रित परिस्थितियों में रखा जाय और यह वर्णित किया जाय कि वे स्वयं और उनके सभी निकटवर्ती लोग बहुत अच्छे हैं इसे नाटक रुप में खेला जा सकता है ।
4. रोगी अपने स्व को अत्यन्त मूल्यहीन समझता है और यह अनुभव करता है कि चिकित्सक एक अच्छा अभिनय है वह उसे चिहिन्हत भी कर लेता है।
5. हम रोगियों से उन कठिन चीजों के बारे में बात कर सकते है जो नकारात्मक संवेगों को जगाती है । उन संवेगों के पुनअनुभव में यदि हम उसका व्यक्तित्वीरण कर लेते है तो केन्द्रीय भूमिका का निष्पादन कर लेते हैं।
6. कुछ सक्षम एवं कठिन प्रतिफल।
7. हम रोगी को तिरस्कृत व भयग्रस्त कर सकते हैं।
8. हम उनके असमजनकारी सम्बन्धों को बढावा दे सकते हैं।
9. हम उन सूचनाओं को छिपा सकते है। जिन्हे छुपाने से रोगी को हानि हो।
10. सीमारेखा के निर्धारण में कठिनाई।
11. चिकित्सक की अपराध भावना।

12. चिकित्सकीय कौशल के उपयोग में कमी।
13. चिकित्सा मनोवैज्ञानिक एक संदर्भ में अत्यन्त भाग्यशाली होता है वह यह है कि उसने रोगी उसका सम्मान करते हैं। वे उसे प्रेरणा स्त्रोत मानते हैं। और उसे बहुत पसन्द करते है। चिकित्सक रोगी के सम्बन्ध का उदाहरण प्रतिअन्तरण में भी देखा जा सकता है।

प्रतिअन्तरण के कुछ उदाहरण-

1. रोगी हमें किसी ऐसे व्यक्ति की याद दिलाता है जिसके लिए मन में सकारात्मक या नकारात्मक भावनाएं होती है।
2. हम उनको उसी संदर्भ के साथ जोड़ लेते है जो हमने भूतकाल में अनुभव किया होता है। जैसे कठिनाइंया समान व्यक्तित्व सामाजिक स्तर आयु व लिंग।
3. रोगी के प्रति माता-पिता की अनुमति रखना।
4. लैंगिक आकर्षण
5. पोप एवं तावाचनिक 1993 ने पाया कि 87 प्रतिशत से अधिक चिकित्सकों का कम से कम एक रोगी के साथ लैंगिक चुनाव था।
6. कुछ सक्षम एवं कठिन प्रतिफल
7. धुंधली सीमाएं
8. प्रकटीकरण के स्तर का जो अन्तरण को कठिनबना देता है।
9. प्रतिअन्तरण ना करना
10. प्रतिअन्तरण को स्वीकार न करना
11. चिकित्सीय क्षमता का ह्रास
12. केस का वर्णन करने में असमर्थता
13. रोगी व अपने सम्बन्धों को बढ़ावा देना।
14. चिकित्सा केा समाप्त करने में कठिनाई का अनुभव करना।

उपाय- स्वयं से पूछे (Ask write your self)

a. क्या में अपने अनुरुप व्यवहार कर रहा हूँ।
b. क्या में इस रोगी को किसी और के साथ जोड़ सकता हूँ।
c. मेरी अपने अन्य रोगियों के साथ कैसी अनुभूतियां है।
d. क्या ऐसी अनुभूति में अपने अन्य रोगियों के साथ या फिर केवल इसी रोगी के साथ अनुभव करता हूँ।
e. मैं ऐसा क्यों सोच रहा हूँ
f. क्या मेरा ऐसा सोचना रोगी के साथ काम करने में बाधा उत्पन्न कर रहा हूँ।
g. यदि रोगी और मेरे सम्बन्धों की जानकारी मेरी पत्नी या मेरे बचचां या मेरे परिवार को हो गई तो मेरा क्या होगा ?

निर्देशन की मात्रा में वृद्धि (Increase is the amount of guidance)

1. स्पष्ट एवं लचीना अभ्यास
2. यह स्वीकार करें कि रोगी के प्रति अनुभव सामान्य है और उसी सामान्य अनुभव के साथ कार्य करें।
3. चिकित्सा में सम्बन्धें की बात करे।
4. सीमाओं का ध्यान रखें।

14.5 मुठभेड़ समूह चिकित्सा विधि(Encounter group theory)

मुठभेड़ समूह चिकित्सा विधि एक समूह चिकित्सा है। जिसकी जड़ नेशनल ट्रेनिंग लेब्रोरेटरी (एन0टी0एल0) में किये गये शोध व कार्यशालाओं से उत्पन्न अभिभूतियां हैं- इसमें कर्टले लाइबरमैन तथा रोजर्स ने मुख्य भूमिका निभाया है। एन0टी0एल की स्थापना अमेरिका में वेथेल में 1950 में हुई थीं इसका उद्देश्य सामूहिक प्रक्रियाओं, जिसें समूह के सदस्यों को प्रेक्षक तथा सहभागी दोनों के रुप मे कार्य करना होता है, द्वारा पुनशिक्षित किया जाता हे। मुठभेड़ समूह चिकित्सा में एक मुठमेड़ समूह से तात्पर्य व्यक्तियों के ऐसे समूह से होता है जो अपने भाव व्यवहार एवं अन्तक्रिया के बारे में पहले से अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए एक विशेष स्थान पर मिलते है। मुठभेड समूह का उददेश्य व्यक्तियों को आत्मसिद्धतथा उत्तम अन्तवेयक्तिक संबंध विकसित करने के लिए होता है। नैदानिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा मुठभेड़ समूह के क्षेत्र में किए शोधो के आधार पर भिडंत समूह चिकित्सा की निम्नांकित विशेषताओं को महत्वपूर्ण बतलाया गया है-

14. मुठभेड़ समूह मे सदस्यों की संख्या सामान्यतः 6 से 20 तक की होती है जो आमने सामने की परिस्थिति में एक दूसरे से शारीरिक सम्पर्क करते हुए अन्तक्रिया करते है।

2. ऐसे समूह में वर्तमान अनुभूतियों पर अधिक व गत एवं बाहरी अनुभूतियों पर कम से कम बल डाला जाता है।

3. मुठभेड समूह चिकित्सा में सदस्यों में अशाब्दिक क्रियाएं तथा शारीरिक सम्पर्क करने पर बल डाला जाता है।

4. मुठभेड़ समूह चिकित्सा में चिकित्सक तथा अन्य सदस्यों का स्तर लगभग एक समान होता है। ऐसे चिकित्सा समूह में चिकित्सक एक प्रेक्षक तथा सहभागी दानों की भूमिका निभाते है।

6. ऐसे चिकित्सा समूह में भाग लेने से सदस्यों में आत्म प्रकटीकरण ईमानदारी अन्तवैयक्तिक पुनर्निवेशन , खुलेपन , दूसरों का सामना करने की क्षमता, भावात्मक अभिव्यक्ति आदि के गुण का विकास मुख्य रुप से होता है।

7. मुठभेड़ समूह चिकित्सा का सत्र की अवधि छोटी एवं कम संरचित होती है।

स्पष्ट हुआ मुठभेड़ समूह चिकित्सा में व्यवहत समूह की कुछ अपनी विशेषताएं होती हैं जिसके कारण मुठभेड़ समूह चिकित्सा सामूहिक चिकित्सा के अन्य प्रकारों से भिन्न है।

मुठभेड़ समूह चिकित्सा में इस तरह से चिकित्सक सदस्यों को आपस में अन्तक्रिया करवाकर तथा स्वयं सत्र के दौरान उनके साथ अन्तक्रिया करके सदस्यों में धनात्मक गुणों को मजबूत करते है। इस तरह की चिकित्सा में मानसिक रूप से क्षुब्ध व्यक्ति नहीं बल्कि सामान्य व्यक्ति ही भाग लेते हैं और अपनी अंतशक्ति को विकसित

करते है। इस तरह के समूह में समूह के नेता अर्थात चिकित्सक सदस्यों को आपस मे ईमानदारी पूर्वक एक दूसरे के साथ अर्न्तक्रिया करवाने के लिए कई प्रविधियों का उपयोग करते हैं जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण प्रविधि निम्नांकित है।

14. **आत्म विवरण**- इस प्रविधि में मुठभेड़ समूह के सभी सदस्य दिए गए कागज के टुकड़ा पर तीन ऐसे विशेषणों को लिखता है जिनसे स्वयं को ततम वर्णन होता है। इसके बाद सभी टुकड़ों को लेकर उन्हें यादृच्छिक रुप से मिला दिया जाता हे और बाद में सदस्यों द्वारा इस विशेषणों द्वारा वर्णित व्यक्तियों के बारे में चर्चा की जाती है।

2. नैत्रगोलक से नैत्रगोलक की विधि- इस प्रविधि में दो सदस्यों को एक दूसरे के आंखों में ध्यानपूर्वक एक दो मिनट तक देखने के लिए कहा जाता हे। और उससे उत्पन्न भाव पर फिर चर्चा की जाती है।

3. अंध भ्रमण- इस प्रविध में समूह के सभी सदस्य एक-एक युग्म का निर्माण करते हैं। इसे एक सदस्या की आंख पर पट्टी बंधा होता है तथा दूसरा आगे-आगे राह दिखाता है। यहां पर पट्टी बांधा हुआ व्यक्ति पूरे कमरे में भ्रमण लगाकर अपनी नयी संवेदनशीलता को ग्रहण करता है।

4. विश्वासप्रद अभ्यास- इसमें समूह के सभी सदस्य मिलकर एक वृत्त का निर्माण करते है। तथा सदस्यों को एक ऐसी वस्तु को पकड़ना होता है जो सदस्यगण वृत्त में एक दूसरे को बढ़ाते जाते है।

5. हॉटसीट का आसन- इस प्रविधि में एक सदस्य एक विशेष कुर्सी पर बैठता है तथा अन्य लोग उसे अपनी इस भावना से ईमानदारी ढंग से यह अवगत कराते हैं कि उनसे वे किस तरह से प्रभावित होते है।

6. धनात्मक एवं ऋणात्मक दृष्टि- इस प्रविधि में समूह के सदस्यों को एक ऐसा पुनर्निवशन दिया जाता है जो सिर्फ धनात्मक दृष्टि या सिर्फ ऋणात्मक वृष्टि पर आधारित होता हे।

मुठभेड समूह के प्रकार--

मुठभेड़ समूह के कई प्रकार है-

14. मौलिक मुठभेड़ समूह

2. अतिलंबित मुठभेड़ समूह

3. नग्न अतिलंबित मुठभेड़ समूह

4. गेस्टाल्ट मुठमेंड समूह

5. सव्यवहार विश्लेषण मुठभेड़ समूह

6. साईनेनोन गेम्स

इन सबों का वर्णन निम्नांकित है।

14. मौलिक मुठमेड समूह- मौलिक मुठमेंड समूह की चिकित्सा प्रविध के प्रतिपादन काश्रेय रोजर्स को जाता है। इस तरह के समूह का मुख्य उद्देश्य लोगों में व्यक्तिगत वर्द्धन को बढ़ाना है। इसे रोजेरियन मुठभेड समूह भी कहा

जाता है। इस समूह मे क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा के नियमों का अधिक से अधिक पालन किया जाता है। समूह का नेता एक ऐसा परानुभूतिक वातावरण तैयार करता है जिसमें सदस्यों को वह सम्मानित करता है तथा साथ ही साथ उन्हें अपने किसी भी तरह के निर्णय से मुक्त रखता है। इसकी परिस्थिति काफी असंरचित होती है तथा सदस्यों में स्वायतता अधिक होती है। ऐसी मान लिया जाता है कि इससे सदस्यों में व्यक्तिगत वर्द्धन अधिक होगा। इस तरह की परिस्थिति में अन्तक्रिया होने से सदस्यों में धीरे-धीरे सुरक्षात्मक प्रवृत्ति समाप्त होने लगती है तथा पारस्परिक विश्वास विकसित होने लगती है पारस्परिक विश्वास उत्पन्न होने से व्यक्ति अपनी वास्तविक भाव की अभिव्यक्ति करता है।

2. अतिलम्बित मुठभेड समूह- जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है अति लम्बित मुठभेंड समूह तक ऐसा मुठभेड समूह होता है जिसके सदस्यों में सतत तथा तीव्र अन्तःक्रियाएं 24 घंटा से 36 घंटा तक लगातार होती रहती हैं। इस अवधि में सदस्यागण जिनकी संख्या सामान्यतः 10 से 15 तक की होती है को खाने, सोने आदि क्रियाओं को करना वर्जित होता हे। इसका परिणाम यह होता है कि सदस्यों में एक तरह का दबाव उत्पन्न होता है जिसे सदस्यों को कुछ चिकित्सीय लाभ होता है। स्टालर दबाव उत्पन्न होता है जिससे सदस्यों को कुछ चिकित्सीय लाभ होता है। स्टालर ने ऐसे समूह की सतत अन्तक्रिया को एक वर्धित अन्तक्रिया कहा है तथा बैंकने तो इसके लिये एक नया पद ''अतिलम्बित समूह चिकित्सा'' का ही उपयोग करना प्रारंभ कर दिया है। यद्यपि यह सत्य है कि अतिलम्बित मुठभेड समूह की शुरुआत नैदानिक सेवाओं में ही हुई थी परंतु इसका उपयोग इधर के वर्षो में सामान्य समूहों में भी सफलतापूर्वक किया गया है। ऐसा देखा गया है कि प्रारंभिक अवस्था में सदस्यगण एक दूसरे के साथ मात्र औपचारिक ढंग से बातचीत करते है। परंतु धीरे-धीरे औपचारिक बातचीत में कमी आते जाती हैं और लोग अनौपचारिक ढंग से आपस में अन्तक्रिया करना प्रारंभ कर देते हैं। सदस्यों द्वारा तीव्र संवेग की अभिव्यक्ति होती है तनाव में वृद्धि होती है तथा लोग एक दूसरे पर शाब्दिक ढंग से आक्रमण भी करना प्रारंभ कर देते है। चूंकि सदस्य परिस्थिति से अपने आप को किसी भी तरह अलग नहीं कर सकते है। कहने का तात्पर्य यह है कि जैसे ही सत्र समाप्ति के करीब आता है सदस्यों में एक दूसरे के प्रति धनात्क भाव तथा स्नेह एवं घनिष्ठता की अनुभूति उत्पन्न होती है। यही कारण है कि इस अवस्था को स्नेहोत्सव की अवस्था कहा जाता है।

3. नग्न अतिलम्बित मुठभेड समूह- इस तरह के मुठमेड समूह का प्रतिपादन विनडीम द्वारा किया गया । नग्न अतिलम्बित मुठमेड समूह सचमुच में एक तरह का अतिलम्बित मुठमेड समूह ही है तथा इसकी प्रविधि भी लगभग वही है। इसमें भाग लेने वाले सभी सदस्य अपने शरीर का वस्त्र उतारकर अर्थात नंगा होकरएक दूसरे के साथ शारीरिक संपर्क करते है परन्तु स्पष्ट रुप से लैगिक क्रिया करना वार्जित है। इस तरह के भिडंत समूह चिकित्सा की मुख्य मान्यता यह होती है कि दैहिक अनावरण होने से व्यक्तियों में सांवेगिक प्रकटीकरण होता है।

नंग्न अतिलम्बित भिडंत समूह को पेशेवरों तथा कुछ मनोवैज्ञानिकों द्वारा एक अनुचित एवं मानवीय पद्धति बतलायी गयी है। इसक चिकित्सीय परिणाम की अनुकूलता पर भी लोगों को शक हुआ है। रोजर्स ने तो यहां तक कह दिया है कि सम्पूर्ण भिडंत समूह के एक प्रतिशत का दशवा हिस्सा से भी कम नंग्न अतिलम्बित भिडंत समूह की बारबारता होती है। इससे इस तरह की चिकित्सा पद्धति की सार्थकता का खुलासा अपने आप हो जाता है।

4. गेस्टाल्ट भिडंत समूह- जब भिडंत समूह में फ्रिज पर्ल्स द्वारा प्रतिपादित गेस्टाल्ट चिकित्सा का उपयोग किया जाता है। तो इस तरह की चिकित्सा पद्धति को गेस्टाल्ट भिडंत समूह चिकित्सा का भी यही उद्देश्य रहता है। जैसे सदस्यों से यह कहा जा सकता है कि मान लीजिए कि बगल की कुर्सी पर एक दूसरा आदमी बैठा है जिसके साथ आप विशेष अंतक्रिया कर रहे है। ऐसा देखा गया है कि धीरे धीरे इस तरह के गेस्टाल्ट भिडंत समूह चिकित्सा में समूह के सभी सदस्यों का आवेष्टन तीव्र हो जाता है और इनके धनात्मक अंतशक्ति का विकास होने लगता है।

5. संव्यवहार विश्लेषण भिडंत समूह- वर्नी द्वारा प्रतिपादित चिकित्सीय विधि जिसे संव्यवहार विश्लेषण कहा जाता है का उपयोग भिडंत समूह में किया जाता है तो उसे सव्यवहार विश्लेषण भिडंत समूह कहा जाता है। जैसा कि हम जानते है संव्यवहार विश्लेषण में एक ही व्यक्ति के भीतर तीन तरह की भूमिका अर्थात चाइल्ड एडल्ट तथा पेरेन्ट का विश्लेषण होता है न कि एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के साथ हुए अन्तक्रिया का इस तरह के समूह का नेता सदस्यों को विभिन्न गेम्स खेलते समय उनके व्यवहारों का अर्थ समझाता है तथा उसकी एक विशेष व्याख्या करता है। यहां गेम्स से तात्पर्य एक ऐसे संगठित कर्मकाण्ड से होता है जिसके पीछे उनके विशेष उद्देश्य छिपे रहते है। इस तरह के भिडंत समूह में नेता एक तरह से शिक्षक की भूमिका से होता है ताकि वह सदस्यों को गेम्स का अर्थ समझाकर उन्हें उससे मुक्ति दिला सके। नेता द्वारा इस तरह की भूमिका को बार-बार करने से सदस्यों में घनिष्ठता विकसित हो जाती है। तथा साथ ही साथ वे लोग एक दूसरे के साथ ऐसा संबंध स्थापित कर सकने में समर्थ होते है जो गेम्स के बंधन से मुक्त होता है।

6. साइनेनोन गेम्स- साइनेनोन औषध व्यसनियों का एक आत्म सहायता संगठन है। इसी के नाम पर इस तरह गेम्स को साइनेनोन गेम्स कहा जाता है। यह गेम्स एक ऐसा भिडंत समूह होता है जिसमें सदस्यों को क्रोध तथा ईष्या का खुला, प्रत्यक्ष एवं बिना किसी तरह के अवरोध की अभिव्यक्ति शाब्दिक रुप से करने के लिए कहा जाता हे। हां उन्हें इस बात की का निर्देश अवश्य दे दिया जाता है। कि वे लोग उसकी अभिव्यक्ति सिर्फ शाब्दिक रुप से करेंगें तथा किसी तरह की हिंसा आदि में अपने लिप्त नहीं करेंगें। इस प्रकार की सामूहिक भिडंत में कोई नेता या चिकित्सक नहीं होता। यह गेम करीब तीन घंटें तक चलता है जिसमें उन व्यक्तियों की पहचान ली जाती है जो सबसे अधिक आक्रमकता दिखलता है। गेम के सत्र के बाद यह देखा जाता है कि सदस्यों में एक दूसरे के प्रति भावुक समर्थक एवं प्रोत्साहन का वातावरण कायम हो जाता है। एक गेम के बाद दूसरे गेम के सदस्यों का सामान्यतः बदलकर भिडंत करवाया जाता है। गेम मेमं जितना ही तीव्र आक्रमकता होता है सदस्यों के सांवेगिक आवेष्टन की मात्रा तथा पारस्परिक भलाई या कल्याण की चिंता उतनी ही अधिक हो जाती है। नैदानिक मनोवैज्ञानिकों में अभी इस बात पर सहमति नहीं हुई है कि किस तरह के लोगों कोइ ससे लाभ होगा तथा इसमें भाग लेने से सदस्यों में कितना संभावित परिवर्तन होता है।

भिडंत समूह की प्रभावशीलता--

ऐसा समान्यतः कहा जाता है कि भिडंत समूह व्यक्तिगत वर्द्धन तथा परानुभूति को बढ़ाता है जबकि सामूहिक चिकित्सा का उद्देश्य व्यक्ति में हुए मनोवैज्ञानिक क्षति को सुधारना होता है। अब प्रश्न उठता है कि क्या भिंडत समूह अपने उद्देश्य में प्रभावी या सफल हो पाया है ? इस प्रश्न का उत्तर के लिये नैदानिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये कुछ अध्ययनों एवं समीक्षाओं के परिणाम पर ध्यान देना होगा। जैसे गिरने 100 भिडंत समूह अध्यनों की समीक्षा

किया और अंत में इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ऐसे समूह में धनात्मक चिकित्सीय प्रभाव होता है। लाईबरमैन तथा उनके सहयोगियों ने यह बतलाया है कि भिडंत समूह में भाग लेने वाले सदस्यों में से करीब 75 प्रतिशत ने अपने में धनात्क परिवर्तन महसूस किया तथा इस तरह के परिवर्तन का होना इस बात पर निर्भर करता हे कि समूह के नेता या व्यवसायिक चिकित्सकों द्वारा किस तरह की प्रविधि को अपनाया गया है। ओगन तथा उनके सहयोगियों ने भी अपने अध्ययन के आधार पर यह बतलाया है कि समूह के नेता व्यवहार द्वारा समूह के बातचीत का विषय तो निर्धारित होता ही है साथ ही साथ सदस्यों में यह अनुभूति भी उत्पन्न होती है कि वे कहां तक समूह से प्रभावित हुए है। लाईवरमैन ने करीब छोटे भिडंत समूहों के 50 अध्ययनों से अधिक की समीक्षा किया और बतलाया कि कई ऐसे समूहों में भाग लेने वाले व्यक्तियों ने अपनी भीतर धनात्मक परिवर्तन होने की बात बतायीहै

उक्त तथ्यों के आलोक में हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि भिडंत समूह की प्रभावशीलता है और इसमें भाग लेने वाले सदस्यों के भाव एवंचिंतन में पर्याप्त परिवर्तन होते है।

भिडंत समूह चिकित्सा का मूल्यांकन--

भिडंत समूह एक तरह की नयी प्रविधि है जिसके माध्यम से से मानव समस्याओं का समाधान का प्रयास किया गया है। इस क्षेत्र में तुलनात्मक रुप से शोध भी कम किये गये है।इस समूह से कुछ लोग तो काफी आशान्वित हैं तो वहीं कुछ लोगों का दावा है कि इससे समस्या का समाधान न होकर उसकी उग्रता कुछ बढ़ ही जताती है। भिडंत समूह में निम्नांकित दोषों की आशंका प्रायः बतायी गयी है-

14. भिडंत समूह के सदस्यों में जो तात्कालीक घनिष्ठता पैदा हाती है वह स्थायी नहीं होती है और न ही उसका स्थानान्तरण दिन प्रतिदिन की जिंदगी में हो पाता है। अतः इसस सदस्यों को वास्तविक लाभ नहीं हो पाता है।

2. प्रायः देखा गया है कि भिडंत समूह का नेतृत्व अप्रशिक्षित तथा अव्यवसायिक लोग करते हैं जिसके कारण इस तरह के समूह का चिकित्सीय प्रभाव धीरे-धीरे कम होता जाता है।

3. भिडंत समूह के सदस्यों को उसमें शामिल करने के पहले कोई परख नहीं की जाती है संभव हे कि कुछ सदस्य काफी संवेदनशील प्रकृति के हों। अध्ययनों से यह पता चलता है कि ऐसे संवेदनशील व्यक्ति को भ्ज्ञिउंत समूह की अन्तक्रियाओं से काफी हानि पहुंचती है। यालोम तथा लाईबरमैन ने एक अध्ययन किया जिसमें 170 छात्रों ने विभिन्न तरह के भिडंत समूहों में भाग लिया। इसमें 16 छात्र ऐसे थे जिन्होंने भिडंत समूह में भाग लेने के बाद अपने में सार्थक मनोवैज्ञानिक क्षति का अनुभव करते है।

4. भिडंत समूह चिकित्सा को कुछ मनोवैज्ञानिकों द्वारा एक बौद्धिक विरोधी तथा सुखवादी कहा है। ऐसे समूह के सदस्यों में विवेक की कमी पायी जाती है तथा क्षणिक शारीरिक सुख की ओर उन्मुक्ता अधिक होती है इससे इसका चिकित्सीय मूल्यों में कमी आती है।

6. भिडंत समूह को नैदानिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा कम महत्व वाली चिकित्सा पद्धति कहा गया है। निसंदेह यह विधि अत्यन्त आसान है परंतु उनका शायद ही कभी मूल्यांकन अब तक किया गया है। अतः उनकी वैधता संदेह के घेरे में है।

इन आलोचनाओं के बाद भी यह आशा की जाती है कि एक उत्तरदायी नेता के नेतृत्व में एवं व्यक्तियों में बढ़ती जागरूकता के कारण इस तरह की चिकित्सा पद्धति के गुणकारी प्रभाव की संभावना अधिक है।

अभ्यास प्रश्नः

1. ..... के केन्द्र बिन्दु में चिकित्सक व रोगी अन्तरण सम्बन्धों को पहचानते है और सम्बन्धों के अर्थ को खोजते है।
2. ..... रोगी की भावनाओं को बाहर निकालने में चिकित्सक को बहुमूल्य दृष्टि प्रदान करता है।
3. जब भिडंत समूह में ..... द्वारा प्रतिपादित गेस्टाल्ट चिकित्सा का उपयोग किया जाता है। तो इस तरह की चिकित्सा पद्धति को गेस्टाल्ट भिडंत समूह चिकित्सा कहते हैं|

14.6 सारांश

नैदानिक मनोविज्ञानिक की समस्याएं हैं -(a)निदान एवं मूल्यांकन से संबद्ध समस्याएं(b) नैदानिक परीक्षणों से संबद्ध समस्याएं (c)उपचार से संबं)- समस्याएं(d)शोध एवं शिक्षण से संबंध समस्याएं(e)परामर्श एवं प्रशासनिक कार्यो से संबंध समस्याएं

- कई बार रोगी के एक महत्वपूर्ण व्यक्ति से सम्बन्धित अनुभव चिकित्सक की ओर मुड जाते है।

- प्रतिअन्तरण में में चिकित्सक की स्थिति रोगी की भावनाओं से मुडकर उतनी ही आलोचनात्मक हो जाती है जितनी की अन्तरण में चिकित्सक के साथ जुड़कर रोगी की हो जाती है|

- मुठभेड़ समूह चिकित्सा विधि एक समूह चिकित्सा है। जिसकी जड़ नेशनल ट्रेनिंग लेब्रोरेटरी (एन0टी0एल0) में किये गये शोध व कार्यशालाओं से उत्पन्न अभिभूतियां हैं ।

- मुठभेड़ समूह के कई प्रकार है-

मौलिक मुठभेड़ समूह,अतिलंबित मुठभेड़ समूह,नग्न अतिलंबित मुठभेड़ समूह,गेस्टाल्ट मुठमेंड समूह,सव्यवहार विश्लेषण मुठभेड़ समूह,साईनेनोन गेम्स।

14.7 शब्दावली

अन्तरण -रोगी की एक महत्वपूर्ण व्यक्ति से सम्बन्धित अनुभवों का चिकित्सक की ओर मुड जाना |
प्रतिअन्तरण- चिकित्सक का रोगी के साथ एक सांवेगिक जुडाव ।

14.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.मनोगत्यात्मक मनोचिकित्सा
2.प्रति अन्तरण
.फ्रिज पर्ल्स

14.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

. उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान- अरूण कुमार सिंह-मोतीलाल बनारसीदास

2. आधुनिक नैदानिक मनोविज्ञान- डा0एच0के0 कपिल-हर प्रसाद भार्गव

3. असामान्य मनोविज्ञान- विषय और व्याख्या- डा0मुहम्मद सुलेमान, डा0 मुहम्मद तौवाव -मोतीलाल बनारसीदास।

14.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नैदानिक मनोविज्ञान की परिभाषित कीजिए तथा नैदानिक मनोवैज्ञानिक की समस्याओं की विवचेना कीजिए।

2. अन्तरण व प्रति अन्तरण पर एक निबन्ध लिखिए।

3. मुठभेड़ समूह चिकित्सा पर एक निबन्ध लिखिए|

इकाई 15. हस्तक्षेपः- मनो-अभिनय, योग एवं ध्यान, कूटभेषज,जैविक प्रतिपुष्टि, स्वीकारात्मक प्रशिक्षण, दृढ ग्राही चिकित्सा (Intervention: Psychodrama, Yoga & Meditation, Placebo Effect. Biofeedback, Assertion Training, Self Instructional Training)

इकाई संरचना

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 मनोविकृति
15.3.1 मनोविकृति का वर्गीकरण
15.4 मनोविदलता
15.4.1 अर्थ एवं स्वरूप
15.4.2 नैदानिक लक्षण
विधेयात्मक लक्षण
निषेधात्मक लक्षण
मनोपेशीय लक्षण
15.4.3 कारण
15.4.4 उपचार
15.5 व्यामोहिक विकार
15.5.1 अर्थ एवं स्वरूप
15.5.2 निदान
15.5.3 प्रकार
15.5.4 कारण
15.5.5 उपचार
15.6 भावात्मक विकृति
15.6.1 अर्थ तथा स्वरूप
15.6.2 प्रकार
एकध्रुवीय विकृति
अर्थ एवं स्वरूप
लक्षण

कारण
द्वध्रुवीय विकृति
अर्थ एवं लक्षण
कारण
साइक्लोथिमिक विकृति
अर्थ एवं स्वरूप
लक्षण
कारण
15.6.3 भावात्मक विकृति का उपचार
15.7 सारांश
15.8 शब्दावली
15.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
15.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
15.11 निबन्धात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

मनोविकृति एक प्रकार की असामान्यता है कि जिसका स्वरूप तीव्र एवं गम्भीर होता है। इस रोग से पीड़ित व्यक्ति के व्यक्तित्व का विघटन हो जाता है, यथार्थ से उसका सम्बन्ध टूट जाता है, उसका व्यवहार अशोभनीय एवं विचित्र प्रतीत होता है, उसमें आत्मसंयम एवं सामाजिक सन्तुलन का अभाव पाया जाता है, उसे अपने कार्य की अच्छाई-बुराई का ज्ञान नहीं रहता है, इनके व्यवहार में विभ्रम (hallucination) और व्यामोह (delusion) की अधिकता पाई जाती है तथा ऐसे रोगी चिकित्सक की बात को मानने के लिए तैयार नहीं होते हैं और आत्महत्या के लिए तत्पर रहते हैं। यह समाज के अन्य सदस्यों से उपयुक्त सम्बन्ध नहीं स्थापित कर पाते हैं। इसलिए इस विकृति का स्वरूप मनस्ताप (neurosis) की तुलना में अधिक गम्भीर होता है।

15.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप-

1. मनोविकृति को भली-भांति समझ सकें।
2. मनोविकृति के सामान्य लक्षणों से अवगत हो सकें।
3. मनोविकृति के प्रमुख कारणों को रेखांकित कर सकें।

4. मनोविकृति के प्रमुख प्रकारों, कारणों पर प्रकाश डाल सकें।

5. मनोविदलता, व्यामोहिक विकार व भावात्मक विकृति के प्रकारों कारणों व उपचार पर प्रकाश डाल सकें ।

15.3 मनोविकृति (Psychosis)

मनोविकृति (psychosis) एक गम्भीर मानसिक विकृति है, जिसके अन्तर्गत कई मानसिक विकृतियों की गणना की जाती है, जैसे -व्यामोह विकृति (delusional disorder), मनोदशा विकृति (mood disorder), मनोविदलता (schizophrenia) आदि। इसी कारण मनोविकृति (psychosis) को मनोविकृति विकृतियाँ (psychotic disorders) कहते हैं। सरासन तथा सरासन (Sarason and Sarason2003) के अनुसार-''मनोविकृति वह विकृति है जिसमें व्यामोह, विभ्रम, असंगति, पुनरावृत्ति , विचार-विचलन, विचार संगति की स्पष्ट कमी, स्पष्ट अतार्किकता तथा गम्भीर रूप से विसंगठित अथवा केटाटोनिक व्यवहार देखे जाते हैं।''

15.3.1 मनोविकृति के सामान्य लक्षण (General Symptoms of Psychosis).

1. व्यवहार सम्बन्धी लक्षण (**Behavioural symptoms**)- मनोविकृति से ग्रस्त रोगियों के व्यवहार के अध्ययन करने से पता चलता है कि उनके व्यवहार बेढ़ंगा (bizarre), विचित्र (peculiar), झुंझलाहटपूर्ण (annoying) तथा अपने एवं दूसरों के लिए भी हानि-कारक होते हैं।

2. संवेगात्मक तथा सामाजिक विकृति (**Emotional and social disturbance**)- मनोविकृति के रोगियों में संवेगात्मक विकृति तथा विकृत सामाजिक सम्बन्ध के लक्षण पाए जाते हैं। संवेगात्मक विकृति के अन्तर्गत आशंका, उदासीनता या विषाद की स्थिति (depression), असंगति (incongruity), सन्देह, चिड़चिड़ापन, आत्महत्या की प्रवृत्ति , भाव-शून्यता (apathy) तथा उल्लास (elation) के लक्षण मुख्य रूप से पाए जाते हैं। इन्हीं संवेगात्मक विकृतियों के कारण रोगी में विध्वंसकारी क्रियाएँ उत्पन्न होती हैं तथा रोगी का चरित्र आचारहीन हो जाता है। अतः इनके कारण रोगी का सामाजिक सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाता है जो उसके सामान्य सामाजिक जीवन को असंतुलित कर देता है और उसका समायोजन विकृत हो जाता है।

3.व्यामोह (Delusion) - रोगी में निम्नलिखित व्यामोह पाए जाते हैं -

1. सन्दर्भ का व्यामोह (Delusion of reference)- इस रोग से ग्रस्त रोगी को यह गलत विश्वास हो जाता है कि दूसरे लोग सदा उसी के बारे में बातें करते रहते हैं या उसके सम्बन्ध में तरह-तरह के झूठे प्रचार कर उसे बदनाम कर रहे हैं। वह सदा व्यक्तिगत महत्व के कारण बेचैन रहता है। फलतः दो या दो से अधिक व्यक्तियों को बातें करते देखकर वह समझ लेता है कि वे उसी के बारे में बातें कर रहे हैं।

2. पीड़ा का व्यामोह (Delusion of persecution)- इस व्यामोह से ग्रस्त रोगी सदा यह अनुभव करता है कि दूसरे लोग उसे तरह-तरह से कष्ट पहुँचाने का षड्यंत्र रच रहे हैं। रोगी अपने निकट सम्बन्धियों को भी षड्यन्त्र की योजना में सम्मिलित समझता है। वह अपने किसी निकट सम्बन्धी द्वारा भी अपमान करने या पीछा करने, तथा

कष्ट पहुँचाने की कल्पना करता है और यही कल्पना उसके दृढ़ विश्वास के रूप में परिणित हो जाती है। इस प्रकार वह अपने विरूद्ध दुर्व्यवहार या सुनियोजित ढंग से साजिश करने का दोष आरोपित करता है। इस दृढ़ विश्वास के कारण वह अपने निकट सम्बन्धियों पर मुकदमा भी कर देता है।

3. प्रभाव का व्यामोह (Delusion of influence)- इस लक्षण से पीड़ित रोगी को यह विश्वास हो जाता है कि उसका दुश्मन उसे विभिन्न प्रकार से प्रलोभन देकर फुसलाना चाहता है या उस पर अपना आधिपत्य जमाना चाहता है। इसी तरह रोगी कभी-कभी अपने को किसी अलौकिक शक्ति से प्रभावित भी समझने लगता है। वह कहता-फिरता है कि उसमें दैवी शक्ति आ गयी है और वह जो कुछ बोलता या गलत लिखता है वह दैवी शक्ति के इशारे पर करता है। वह अपने को ईश्वर का दूत समझता है।

4. महानता का व्यामोह (Delusion of grandeur)- महानता के व्यामोह से जो रोगी ग्रस्त रहते हैं, वे समझने लगते हैं कि संसार का आर्थिक, सामाजिक एवं नैतिक दृष्टिकोण से पतन हो रहा है और वे ही श्रेष्ठ या महान व्यक्ति हैं, जो संसार को पतन होने से बचा सकते हैं। इस महानता के विचार को निम्नलिखित में से किसी प्रकार से व्यक्त किया जाता है:-

अ- इसके रोगियों में कुछ रोगी को यह विश्वास हो जाता है कि वह महान् वैज्ञानिक या आविष्कारक है और उसके बड़े आविष्कार की योजना को किसी ने चोरी कर ली है।

ब- कुछ तो अपने को महान् धर्म प्रचारक, राजनीतिक नेता, धर्मप्रचारक, राष्ट्र निर्माता या ईश्वर का अवतार समझते हैं।

स- कुछ रोगियों को यह विश्वास हो जाता है कि कोई अपूर्व सुन्दरी या विद्वान तथा इज्जतदार पुरुष उनसे प्रेम करते हैं लेकिन दूसरे लोगों के हस्तक्षेप के कारण वे सफल नहीं हो रहे हैं।

द- कुछ रोगी अपने को बड़ा दौलतमन्द या बड़ा ऑफिसर के रूप में समझते हैं।

5. रोगात्मक व्यामोह (Hypochondriac delusions)- इस प्रकार के व्यामोह से पीड़ित रोगी को यह विश्वास हो जाता है कि उसका स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरता जा रहा है। वह भयंकर रोग से पीड़ित है। जो लोग उसके इस रोग को झूठा बतलाते हैं उनसे वह दुश्मनी कर लेता है। रोगी को दृढ़ और स्थायी विश्वास हो जाता है कि वह टी0बी0, कैंसर आदि असाध्य रोग से ग्रसित हैं। अब वह शीघ्र मर जाएगा। कुछ रोगी यह शिकायत करते हैं कि उनका खून पानी हो गया है और पेट में वायु विकार हो गया है।

6. आत्मनिन्दा का व्यामोह (Delusions of self-condemnation)- इस व्यामोह का रोगी अपनी निन्दा खुद करता है। वह अपने को पापी, कुकर्मी, निर्धन, अयोग्य तथा बुद्धिहीन समझता है और अपने सम्बन्धियों से अपने को मार डालने के लिए प्रार्थना करता है। अपने जीवन को निरर्थक तथा महत्वहीन समझता है। इस प्रकार वह पाप की भावना से पीड़ित रहता है।

7. शून्यवादी व्यामोह (Nihilistic delusions)- इस प्रकार के व्यामोह से ग्रस्त रोगी अस्तित्ववाद में विश्वास नहीं रखता है। उसे यह विश्वास हो जाता है कि संसार में किसी चीज का अस्तित्व हैं ही नहीं। वह शून्य में डूबा रहता है। यहाँ तक कि उसे अपने अस्तित्व का ज्ञान भी नहीं रहता है। उसे यह विश्वास घर कर जाता है कि उसकी मृत्यु वर्षों पहले हो चुकी है और उसकी आत्मा शून्य आकाश में गैस के रूप में घूमती रहती है।

4. स्मृति दोष (Memory defects)- मनोविकृति से पीड़ित रोगियों की स्मृति दोषपूर्ण हो जाती है। रोगी को कुछ भी याद नहीं रहता है या जो कुछ वह याद करता है उसमें सम्बद्धता नहीं होती है। रोगी की पूर्व की घटनाओं या बातों को याद करने में काफी कठिनाई होती है। रोगी कल्पित घटनाओं को याद रखता है और उसका वर्णन विस्तृत रूप से करता है। वास्तव में वर्णित घटनाएँ कभी घटित भी नहीं होती हैं। इसे मिथ्या रचना कहा जाता है। इसे मिथ्या स्मृति भी कह सकते हैं। इसके कुछ रोगियों में असाधारण प्रत्यावाह्नन या अतिस्मृति के लक्षण भी देखे जाते हैं।

5. वास्तविकता से सम्बन्ध का विच्छेद (Loosing contact with reality) -मनोविकृति से पीड़ित रोगी को वास्तविकता से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रहता है, जिसके कारण उसे रात-दिन, उपस्थिति-अनुपस्थिति आदि बातों का सही ज्ञान नहीं रहता है। उसकी अपनी अकेली दुनियाँ होती है और उसी में वह विचरण करता रहता है। यदि यह कहें कि वह हवाई किला बनाता नहीं है, बल्कि उसमें वह रहता है तो कोई गलत नहीं होगा। इस प्रकार बाह्य जगत से उसका सम्बन्ध टूट जाता है।

6. आत्मनिन्दा का व्यामोह (Delusions of self-condemnation)- इस व्यामोह का रोगी अपनी निन्दा खुद करता है। वह अपने को पापी, कुकर्मी, निर्धन, अयोग्य तथा बुद्धिहीन समझता है और अपने सम्बन्धियों से अपने को मार डालने के लिए प्रार्थना करता है। अपने जीवन को निरर्थक तथा महत्वहीन समझता है। इस प्रकार वह पाप की भावना से पीड़ित रहता है।

7. शून्यवादी व्यामोह (Nihilistic delusions)- इस प्रकार के व्यामोह से ग्रस्त रोगी अस्तित्ववाद में विश्वास नहीं रखता है। उसे यह विश्वास हो जाता है कि संसार में किसी चीज का अस्तित्व हैं ही नहीं। वह शून्य में डूबा रहता है। यहाँ तक कि उसे अपने अस्तित्व का ज्ञान भी नहीं रहता है। उसे यह विश्वास घर कर जाता है कि उसकी मृत्यु वर्षों पहले हो चुकी है और उसकी आत्मा शून्य आकाश में गैस के रूप में घूमती रहती है।

15.3.2 मनोविकृति का वर्गीकरण (Classification of Psychoses):

चित्रः 1 - मनोविकृति का वर्गीकरण

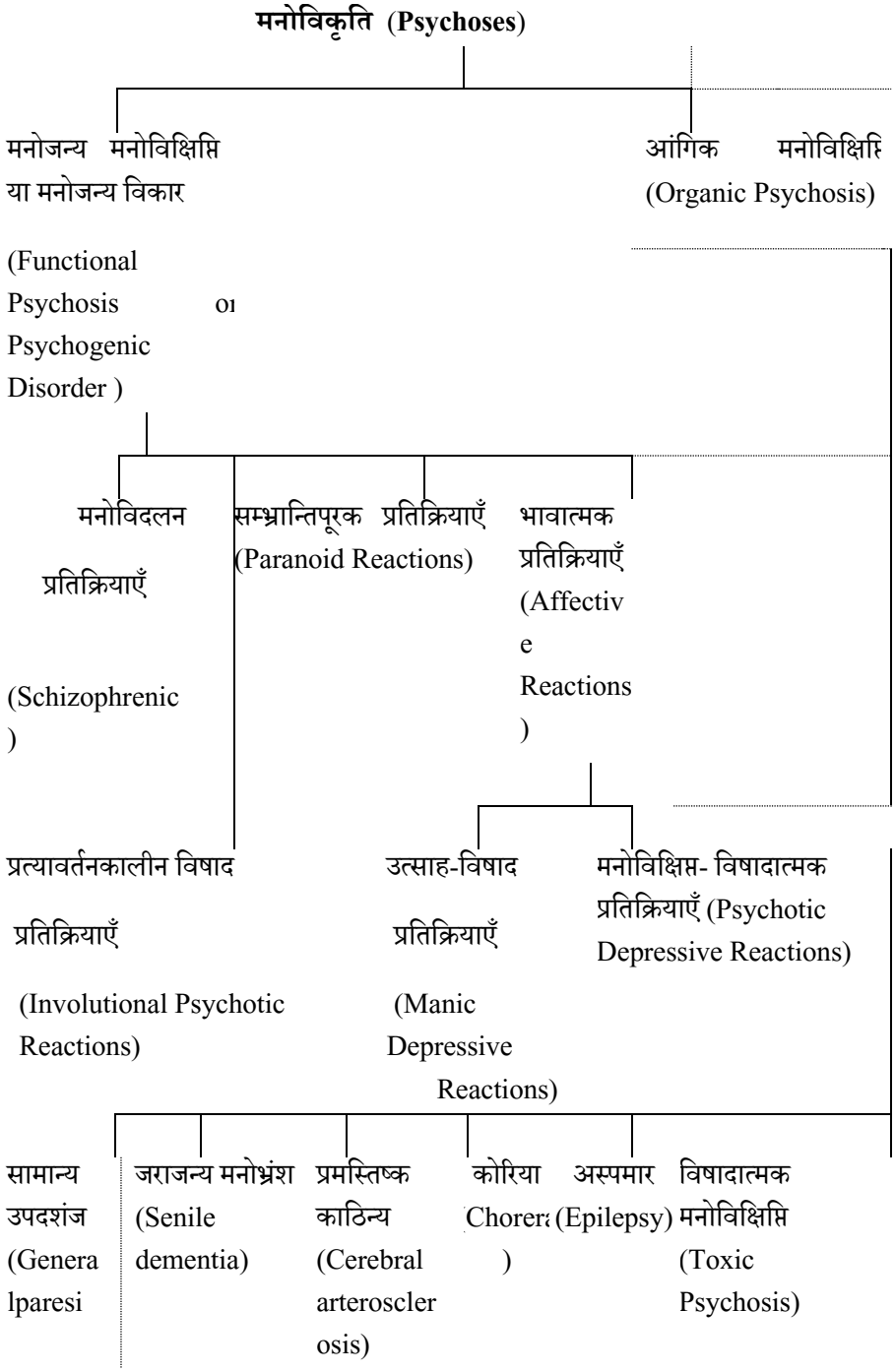

15.4 मनोविदलता (Schizophrenia)

15.4.1 अर्थ एवं स्वरूप - मनोविदलता वास्तव में मनोविकृति का एक रूप है। इसका शाब्दिक अर्थ है व्यक्तित्व विभाजन। इस व्यक्तित्व विभाजन के कारण रोगी में गंभीर संज्ञानात्मक, सांवेगिक तथा क्रियात्मक विकृतियॉ विकसित हो जाती है जिससे रोगी का सम्बन्ध वास्तविकता से टूट जाता है। रेबर तथा रेबर (2001) के अनुसार ''मनोविदलता अनेक मनोविकृतियों के लिये एक सामान्य लेबल है जिनकी अभिव्यक्ति संज्ञानात्मक, सांवेगिक तथा व्यवहार विकृतियों के रूप में होती है''। डेविडसन तथा नील (1996) की परिभाषा मनोविदलता के स्वरूप को अधिक स्पष्ट करती है, ''मनोविदलता मनोविक्षिप्ति का एक समूह है जिसमें चिंतन, संवेग, तथा व्यवहार में अत्यधिक क्षुब्धता की विशेषता होती हैं, विकृत चिंतन जिसमें विचार तार्किक रूप से संबद्ध नहीं होते है, दोषपूर्ण प्रत्यक्षीकरण एवं ध्यान होती है। पेशीय क्रियाओं में अनोखी क्षुब्धता होती है तथा चपटा या अनुपयुक्त भाव होती है। यह रोगी को अन्य लोगों एवं वास्तविकता से दूर करके उसे व्याहमोह तथा विभ्रम के काल्पनिक दुनिया में ले जाती है''।

15.4.2 नैदानिक लक्षण (Diagnostic Features): DSM-IVTR में मनोविदलता के वर्णित नैदानिक लक्षणों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है-

विधेयात्मक लक्षण (Positive Symptoms): विधेयात्मक लक्षणों का तात्पर्य सामान्य कार्यों में रोगी द्वारा मनोवैज्ञानिक अतिरेक (psychological excess) की अभिव्यक्ति होती है। इस वर्ग के अन्तर्गत प्रमुख रूप से व्यामोह (delusion), विघटित चिन्तन एवं सम्भाषण (disorganized thinking and speech), विभ्रम (hallucination) के लक्षणों केा सम्मिलित किया जा सकता है:-

(1) व्यामोह (Delusion)- व्यामोह व्यक्ति का ऐसा झूठा विश्वास है जिसे वह प्रत्येक स्थिति में सत्य मानता है। रोगी के मस्तिष्क में यह झूठा विश्वास इस गहराई तक जम जाते हैं कि अनेकों पूर्ण तर्क दिये जाने पर भी वह इन अविश्वासों को असत्य नहीं समझता है। मनोविदलता के रोगी में दण्डात्मक (prosecutory), महानता (grandeur), तथा अतिस्वास्थ्य चिन्ता (hypochondrial) के व्यामोह अधिक पाये जाते हैं। मनोविदलता के रोगी के व्यामोह अतार्किक एवं विचित्र होते हैं।

(2) विभ्रम (Hallicuniation)- मनोविदलता के रोगियों में किसी-न-किसी प्रकार का विभ्रम अवश्यक पाया जाता है। विभ्रम एक दोषपूर्ण प्रत्यक्षीकरण है जिसमें वातावरण में उद्दीपक के न होने पर भी संवेदनात्मक अनुभव होता है। ऐसे रोगियों में श्रवणपरक (auditory) विभ्रम अधिक पाये जाते हैं। ऐसे रोगियों को अक्सर अपने मित्रों, सम्बन्धियों एवं ईश्वर की ध्वनियाँ सुनाई पड़ती है। दृष्टि सम्बन्धी विभ्रमों में विचित्र दृश्य देखना, ईश्वर का दर्शन करना आदि को उदाहरणस्वरूप लिया जा सकता है। इसी प्रकार रोगी में स्वाद, गन्ध एवं स्पर्श सम्बन्धी विभ्रम भी पाये जाते हैं। स्पर्श विभ्रम में रोगी जलन, विद्युत आघात का संवदेन, झुनझुनी तथा कीड़ा रेंगने की संवेदना की अनुभूति, दैहिक विभ्रम में शरीर के अन्दर परिवर्तन, स्वाद विभ्रम में रोगी किसी ऐसे गन्ध की अनुभूति करता है जो अन्य व्यक्तियों को नहीं होती है।

(3) विघटित चिन्तन एवं सम्भाषण (Disorganized Thinking and Speech)- विघटित सम्भाषण से तात्पर्य रोगी के विचारों के साहचर्य में अस्त-व्यस्तता तथा विचारों में तीव्रता से परिवर्तन पाया जाता है, जिससे रोगी की बातों का कोई अर्थ निकालने में कठिनाई होती हैं। ऐसे रोगी अनुपयुक्त प्रश्न पूछते हैं तथा अनुपयुक्त उत्तर देते हैं। इनका सम्भाषण अस्पष्ट, आवर्ती, आवश्यकता से अधिक मूर्त अथवा अमूर्त होता है। ऐसे रोगी नये-नये शब्दों का निर्माण करते हैं जिसका अर्थ वही समझता है तथा उसका कोई तार्किक आधार नहीं होता है।

(4) अनुपयुक्त भाव (Inappropriate Affect)- मनोविदलता के रोगियों में अपने भावों पर नियन्त्रण नहीं होता है। वे परिस्थिति के अनुरूप अपने संवेगों को नहीं प्रकट करते हैं। उसमें संवेगात्मक परिस्थितियों के प्रति उदासीनता पाई जाती है। वह अकारण ही किसी संवेग की अभिव्यक्ति कर सकता है।

निषेधात्मक लक्षण (Negative Symptoms)- इन लक्षणों को 'अभाव मनोविदलता' (deficit schizophrenia) भी कहते हैं। इनमें निम्नलिखित लक्षणों को सम्मिलित किया जा सकता है:-

(1) वाणी अभाव (Poverty of Speech)- ऐसे रोगियों में वाणी से सम्बन्धित अनेक प्रकार की कमियाँ पाई जाती हैं। उदाहरणार्थ-एसे रोगी किसी प्रश्न का उत्तर देने के पहले थोड़ी देर शान्त रहता है, कम-से-कम शब्दों में उत्तर देता है, किसी प्रश्न का उत्तर नहीं भी देता है, धीरे-धीरे बोलता है, बोलते-बोलते रूक जाता है तथा उसके कथनों से कोई अर्थ नहीं निकल पाता है।

(2) कुण्ठित एवं नीरस भाव (Blunted and Flat ffect)- ऐसे रोगियों में कुण्ठित एवं नीरस भाव संवेग पाये जाते हैं। सामान्य व्यक्तियों के भाँति इनमें क्रोध, प्रसन्नता, दुःख के भाव अपेक्षाकृत कम पाये जाते हैं, वाणी नीरस होती है तथा चेहरे पर सुस्त भाव बना रहता है।

(3) संकल्प शक्ति की क्षुब्धता (Distrbance in Volition)- चूँकि ऐसे रोगियों में भाव शून्यता पाई जाती है, सामान्य कार्यों में अभिरूचि का अभाव पाया जाता है, ऊर्जा-ह्रास अनुभव करते हैं तथा लोगों से कम सम्पर्क रखते हैं, इसलिए किसी कार्य को पूरा करने में अक्षम समझते हैं और संकल्पशक्ति (इच्छाशक्ति) का अभाव पाया जाता है।

(4) वातावारण के प्रति क्षुब्धता (Disturbed Relationship with External World)- ऐसे रोगी अपने आप को वातावरण से अलग समझते हैं, वे उससे अपना कोई सामाजिक सम्बन्ध नहीं चाहते हैं, अन्य लोगों से दूर रहते हैं, दूसरों से बात नहीं करना चाहते हैं, उनके विचार विकृत एवं अतार्किक होते हैं तथा इन्हें प्रतिदिन की सामाजिक समस्याओं और तथ्यों का ज्ञान बहुत कम होता है (Faloon et.al; Bellack et. al. 1989; Cutting & Murphy 1988; 1990)।

मनोपेशीय लक्षण (Psychomotor Symptoms): मनोविदलता के रोगियों में मनोपेशीय लक्षण भी पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ-ऐसे रोगी के व्यवहार, हाव-भाव, गति एवं दिशा में असमान्यता एवं अपूर्वता पाई जाती है। ये लक्षण

आवर्ती (repetetive) और आवेगशील (impulsive) प्रतीत होते हैं। ऐसे रोगी घण्टों एक पैर पर खड़े रहते हैं और घण्टों एक हाथ ऊपर उठाये रहते हैं।

15.4.3 मनोविदलता के सामान्य कारण (General etiology of schizophrenia)-

मनोविदलता के कारणों के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिक एक मत नहीं हैं, परन्तु फिर भी हम मनोविदलता के विभिन्न सामान्य कारणों का नीचे वर्णन प्रस्तुत करेंगे-

(अ) जैविक कारक (Biological Factors): जैविक कारकों के अन्तर्गत मुख्यतः निम्न आते हैं-

(1) वंशानुक्रम (Heredity)- कुछ मनोवैज्ञानिक दोषित वंशानुक्रम को मनोविदलता का कारण मानते हैं। क्रेपलिन ने 1054 मनोविदलता रोगियों के परिवारों में 53: असामान्यता की घटनाएँ पायीं। कॉलमैन (Kallmann) ने 1,000 से अधिक मनोविदलता रोगियों के परिवारों का अध्ययन किया। उसका मत है कि सामान्य जनसंख्या में मनोविदलता के घटनाक्रम का प्रतिशत केवल 0.85 है। अगर माँ-बाप में से एक इस रोग से ग्रस्त है तो उनके बच्चों में मनोविदलता की घटनाएँ 68.4 प्रतिशत घटित होती है और अगर माँ-बाप दोनों ही मनोविदलता से ग्रस्त हैं तो 68.1 प्रतिशत उनके बच्चे भी इस विकृति से ग्रस्त हो सकते हैं। कोलमैन ने कुछ ऐसे जुड़वाँ बच्चों को अध्ययन के लिए चुना, जिसमें से एक बच्चा मनोविदलता से ग्रस्त था। उसने अपने इस अध्ययन के द्वारा ज्ञात किया कि 86 प्रतिशत जुड़वाँ भाइयों को भी मनोविदलता का रोग था। रोसनॉफ ने 142 जुड़वाँ बच्चों का अध्ययन करने के बाद बताया कि इस रोग का कारण वंशानुक्रम है। ह्वाइट ने मनोविदलता के रोगियों का अध्ययन किया तथा बताया कि 90 प्रतिशत इस रोग का कारण वंशानुक्रम है। स्टोडार्टए पेस्टारेए ग्रेगरी आदि मनोवैज्ञानिकों ने भी मनोविदलता रोग का कारण वंशानुक्रम बताया।

(2) शारीरिक बनावट (Physical Constitution)- वैसे शारीरिक बनावट पर सर्वाधिक प्रभाव वंशानुक्रम का पड़ता है। अगर शारीरिक बनावट विकृत है तो इसका प्रमुख कारण व्यक्ति का दोषपूर्ण वंशानुक्रम है परन्तु बाल्यावस्था के समय पर्यावरण के अभाव के कारण भी शारीरिक बनावट पर प्रभाव पड़ता है। क्रेशमर, शे ल्डन आदि विद्वानों ने मनोविदलता को एक विशे ष प्रकार की शारीरिक बनावट वाले व्यक्तियों के साथ जोड़ने का प्रयास किया है। क्रेशमर का मत है कि जो व्यक्ति एस्थ्ोनिक प्रकार के होते हैं, उनमें ही मनोविदलता उत्पन्न होती है। परन्तु इस सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों में तीव्र मतभेद हैं।

(3) केन्द्रीय स्नायु-मण्डल (Central Nervous System)- अनेक विद्वानों ने मनोविदलता रोग का कारण केन्द्रीय स्नायु-मण्डल को माना है। अनेक विद्वानों में सामान्य व मनोविदलता के रोगियों के मस्तिष्क का तुलनात्मक अध्ययन किया तथा देखा कि दोनों के मस्तिष्क कोषों में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है। परन्तु इस परिणाम के सम्बन्ध में आज तक कोई निश्चित मत प्राप्त नहीं हुए हैं। कुछ मनोवैज्ञानिक इस रोग का अन्य कारण दिल का छोटा होना, नलिका-विहीन ग्रन्थियाँ आदि मानते हैं परन्तु इस सम्बन्ध में अभी तक कोई स्पष्ट स्वरूप ज्ञात नहीं हो सका है।

(ब) मनोवैज्ञानिक कारक (Psychological Factors)-

अनेक मनोवैज्ञानिकों का मत है कि कुछ ऐसे मनोवैज्ञानिक कारक होते हैं जो मनोविदलता की उत्पत्ति में सहायक होते हैं। क्रेपलिन व ब्लूलर, जो कि वंशानुक्रम के महत्व के प्रतिपादक माने जाते हैं, ने भी मनोवैज्ञानिक कारक को मनोविदलता का कारण माना है। ब्लूलर ने नैराश्य व अन्तर्द्वन्द्व को, फ्रायड ने अचेतन को, एडॉल्फ मेयर ने सम्पूर्ण व्यक्तित्व को मनोविदलता का प्रमुख कारण बताया है। अध्ययनों से यह तथ्य पूर्ण रूप से सिद्ध हो जाता है कि मनोविदलता रोग की उत्पत्ति में मनोवैज्ञानिक कारण महत्वपूर्ण होते हैं। प्रमुख मनोवैज्ञानिक कारण अग्रलिखित है-

(1) व्याधिजन्य पारिवारिक प्रतिरूप (Pathogenic Family Patterns)-मनोविदलता की उत्पत्ति में उसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि का महत्वपूर्ण हाथ होता है। रोगी अपने परिवार से ही अनेक दोषपूर्ण अभिवृत्तियों, प्रतिक्रियाओं, दोषपूर्ण समाजीकरण आदि को सीखता है।रोगी पर परिवार के अन्तर्गत सबसे अधिक प्रभाव उसके माँ-बाप का पड़ता है। इस सम्बन्ध में अनेक अध्ययन-परिणाम इस तथ्य के साक्षी हैं कि मनोविदलता के रोगियों पर सर्वाधिक प्रभाव माँ-बाप का पड़ता है। 1960 में कॉफमैन व अन्य ने अपने एक अध्ययन में देखा कि 80 मनोविदलता के रोगियों की माँ भी अपनी समस्याओं का समाधान मनोविक्षिताओं के समान ही करती हैं। मनोविदलता के रोगियों की माँ के साथ परस्पर सम्बन्ध विकृत होते हैं जिसके फलस्वरूप यह एक चिन्तित व अपरिपक्व युवा बन जाता है। वह अपनी समस्याओं का समाधान नहीं कर पाता क्योंकि वह अपने को एक स्वतंत्र व्यक्ति नहीं समझता। इन रोगियों पर माँ के प्रभाव के साथ ही साथ पिता का प्रभाव पड़ता है। वाह्ल (1956) ने 568 पुरुष मनोविदलता रोगियों के परिवारों के इतिहास के अध्ययन के आधार पर ज्ञात किया कि 50-3ङ रोगियों को माँ या बाप अथवा दोनों ने गम्भीर रूप से तिरस्कार या अति-संरक्षण प्रदान किया था। कॉफमैन व अन्य (1960), लिड्ज (1957), फ्लक (1960, 1963) आदि ने अपने अध्ययनों में पाया कि मनोविदलता के रोगियों के पिता में भी असामान्य व्यवहार के लक्षण विद्यमान थे । इस प्रकार मनोविदलता का एक कारण यह भी है कि माँ-बाप एक अच्छे पर्यावरण का निर्माण नहीं कर पाते जिससे कि इनमें ऐसी स्थितियों का जन्म हो जाता है जो अपरिपक्व, अनुपयुक्त व बाह्य जगत् का दोषपूर्ण ज्ञान आदि कराने में सहायक होती हैं। माता-पिता के प्रभाव के अतिरिक्त मनोविदलता के रोगियों के परिवार के अन्य सदस्यों के साथ भी अनुपयुक्त सम्बन्ध होता है। परिवार के सदस्यों के साथ उचित सम्बन्ध न होने के कारण रोगी में अनेक प्रकार के अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न हो जाते हैं जिनका समाधान करना इनके वश के बाहर होता है। इससे उनके अन्दर तीव्र चिन्ता आदि उत्पन्न हो जाती है जो व्यक्ति को इस रोग तक पहुँचाने में सहायता प्रदान करती है।

(2) पूर्व मनोघात व वंचितता (Early Psychic Trauma and Deprivation)-अनेक मनोवैज्ञानिकों ने मनोविदलता का कारण रोगी को शैशवकालीन आघात बताया है। वाह्ल ने 1956 में 568 पुरुष मनोविदलता रोगियों का अध्ययन किया जिसके आधार पर उसने बताया कि 41 रोगियों के माँ-बाप की या तो मृत्यु उनके बाल्यावस्था में हो गई थी या वे तलाक आदि कारणों से उनसे अलग हो गये थ्ो। रोगी इस प्रकार के पारिवारिक आघातों को सहन नहीं कर पाते तथा उनके मन में ऐसे घाव उत्पन्न हो जाते हैं कि जीवन की दबावपूर्ण परिस्थितियों

का सामना नहीं कर पाते। बड़े होकर जीवन की यथार्थ परिस्थितियों से बचने के लिए शैशवकालीन जैसी सुरक्षित अवस्था का सहारा ले ते हैं।

(3) नैराश्य का अन्तर्द्वन्द्व (Frustation and Conflict)- वैसे तो प्रत्येक असामान्यता के पीछे नैराश्यताएँ मुख्य भूमिका निभाती हैं, परन्तु मनोविदलता के रोगियों में तो विशे ष रूप से जीवन की असफलता व वर्तमान परिस्थिति में समायोजन की असामर्थ्यता विद्यमान होती है। इस प्रकार का रोगी विभिन्न नैराश्यों व अन्तर्द्वन्द्वों के प्रति उचित प्रतिक्रिया नहीं कर पाता। आरम्भ से ही उसके व्यक्तित्व का दोषपूर्ण विकास होना शुरू हो जाता है जिसके फलस्वरूप अब उसके सम्मुख किशोरावस्था या पूर्व-प्रौढ़ावस्था की अनेक समस्याएँ आती हैं तो वह उनसे दूर भगाने का प्रयास करता है। इस प्रकार रोगी का इस रोग से ग्रस्त होना एक सुरक्षात्मक उपाय होता है तथा नैराश्यताएँ व अन्तर्द्वन्द्व इन रोगियों के लिए तात्कालिक कारण होते हैं।

(4) प्रतिगमनात्मक स्वरूप (Regressive Pattern)- कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि मनोविदलता प्रतिगमन की चरम सीमा है। अन्य शब्दों में, मनोविदलता का मुख्य कारण मनोग्रन्थियों का दमन व लैंगिक इच्छा का प्रतिगमन है (युंग)। कुछ मनोवैज्ञानिक मनोविदलता को शैशवावस्था तक का प्रतिगमन मानते हैं, क्योंकि मनोविदलता के रोगियों में भी शैशवावस्था के समान ही इदम् से सम्बन्धित आवेगों की प्रधानता रहती है तथा रोगी का व्यवहार वास्तविकता से पूर्णतः परे हो जाता है। रोगी के संवेगात्मक व बौद्धिक स्वरुप भी शिशु की भाँति अतार्किक व अस्पष्ट होते हैं। फ्रायड के अनुसार मनोविदलता अचेतन में छिपी समलैंगिकता का परिणाम है। रोगी प्रतिगमन के माध्यम से इन अचेतन की अमान्य इच्छाओं से अहम् की रक्षा करता है। युंग ने मनोविदलता का कारण बाल्यावस्था की ओर पलायन (flight into childhood) माना है।

(5) अन्य मनोवैज्ञानिक कारक (Other Psychological factors)- कुछ मनोवैज्ञानिक मनोविदलता के अन्य कारणों पर जोर देते हैं। एडलर के मतानुसार, मनोविदलता का कारण हीनता का भाव (पदमितपवतपजल मिमसपदह) है। एडलर के अनुसार, हीनता के भाव के कारण व्यक्ति समायोजन करने में असफल होता है जिसके फलस्वरूप उनमें विभिन्न प्रकार के व्यामोह विभ्रम, भय आदि के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। कुछ मनोवैज्ञानिक इसका कारण अन्तर्मुखी व्यक्तित्व को मानते हैं। इसी प्रकार फ्रायड का मत है कि मनोलैंगिक विकास का प्रभाव मनोविदलता की उत्पत्ति पर पड़ता है।

(स) सामाजिक कारण (Sociological Factors)- अभी तक हमने मनोविदलता के वंशानुक्रम व मनोवैज्ञानिक कारकों पर प्रकाश डाला, परन्तु कुछ मनोवैज्ञानिकों ने मनोविदलता का कारण सामाजिक व सांस्कृतिक प्रभावों को माना है। कुछ अध्ययनों के आधार पर ज्ञात हुआ है कि कुछ सामाजिक समूहों में अपेक्षाकृत मनोविदलता के रोगी अधिक पाये जाते हैं। हॉलिंगशेड व रेडलिक (1954) ने एक अध्ययन के आधार पर बताया कि मनोविदलता का रोग अपेक्षाकृत निम्न सामाजिक व आर्थिक स्तर के व्यक्तियों में अधिक घटित होता है। नव्य-फ्रायडियनों ने भी इस रोग का कारण सामाजिक व सांस्कृतिक माना है। कैरेन हार्नी ने मनोविदलता का कारण सामाजिक असमायोजन माना हैं।

15.4.4 मनोविदलता का उपचार (Treatment of Schizophrenia) .

सामान्य रूप से मनोविदलता के रोगियों के उपचार के सम्बन्ध में यह बात उलल्ेखनीय है कि इसके सभी प्रकार के रोगियों का उपचार किसी एक ही चिकित्सा विधि से संभव नहीं है। रोगी के स्वरूप के अनुकूल निम्नलिखित चिकित्सा विधियों में से किसी एक अथवा एक से अधिक विधियों का उपयोग किया जा सकता हैः-

(1) जैविक उपचार (Biological Treatment)- इस उपचार के अन्तर्गत आघात चिकित्सा (shock therapy), मनोशल्यचिकित्सा (psychosurgery) तथा औषध चिकित्सा (drug therapy) का उपयोग किया जाता है। आरंभ में मनोविदलता के रोगी के उपचार के लिए आघात चिकित्सा का उपयोग बड़े पैमाने पर किया जाता था। रोगी को विद्युत आघात देकर उसके लक्षणों को दूर करने का प्रयास किया जाता था, आगे चलकर इसके साथ-साथ इन्सुलिन चिकित्सा के उपयोग पर सकेल (Sakel) नामक नैदानिक मनोवैज्ञानिक ने बल दिया। लेकिन यह चिकित्सा विधि अधिक सफल प्रमाणित नहीं हुई। मनोविकृति विरोधी औषधों (anti-psychotic drugs) के उपयोग से मनोविदलता के रोग को लाभ होता है विशेष रूप से क्लोरप्रोमाइजिन (chlorpromizine) का उपयोग अधिक प्रभावी प्रमाणित हुआ। वर्तमान समय में अन्य औषधों जैसे-बूटाइरोफेनोनेस (butyro-phenones) तथा थीरौकसानथ्ोन्स (thiroxarithenes) का उपयोग भी मनोविदलता के रोगियों के उपचार में सफलतापूर्वक किया जाता है।

ब) मनश्चिकित्सा (Psychotherapy)- मनोविदालिता को रोगियों का उपचार मनश्चिकित्सा की प्रविधियों से भी किया जाता है। सामान्यताः मनोविदालिता के रोगियों का उपचार मनोविक्षिप्ति विरोधी औषधों के सेवन के बाद प्रारम्भ किया जाता है। इस रोग के उपचार में मनश्चिकित्सा के निम्नांकित प्रकारों का उपयोग किया जाता है-

(1) सूझ चिकित्सा (I**nsight** therapy)- मनोविदालिता के उपचार में विभिन्न तरह के सूझ चिकित्साओं का उपयोग किया जाता है। वासिले नकी (1992) सूझ चिकित्सा में चिकित्सक रोगी के विश्वास को जीत कर तथा उससे एक घनिष्ठ संबंध विकसित करके उनके लक्षणों की गंभीरता को बहुत हद तक कम करने में सफल होते देखे गए हैं। इस सिलसिले में फ्रोम-रिकमान (1950) द्वारा किया गया चिकित्सीय योगदान विशे ष रूप से प्रशंसनीय है।

(2) सामाजिक चिकित्सा (Social therapy)- मनोविदालिता के रोगियों में खासकर चिरकालिक (chronic) रोगियों में सामाजिक कौशलों की काफी कमी पायी जाती है। मनोविक्षिप्त विरोधी दवाओं के सेवन से जब रोगी के धनात्मक लक्षण कम हो जाते हैं तो भी सामाजिक कौशलों की कमी दिखता है जिनसे उसके व्यवहार में विभिन्नता बनी रहती हैं। सामाजिक कौशल प्रशिक्षण कार्यक्रम एक काफी संरचित कार्यक्रम होता है जिसमें नये एवं अधिक समायोजी अन्तर्वैयक्तिक व्यवहार को सिखलाया जाता है। अन्य बातों के अलावा सामाजिक कौशल के तत्वीय पहलू जैसे आवाज प्रबलता, स्वर ,नेत्र सम्पर्क एवं बातचीत के दौरान सिर मोड़ना या घूमाना आदि से सम्बद्ध प्रशिक्षण दिये जाते हैं। आत्म देख-रेख कौशलों को व्यवहारात्मक-प्रशिक्षण विधियों से उन्नत बनाया जाता है। ऐसी विधियाँ मूलतः व्यवहार चिकित्सा के ही अंग माने गए हैं। इनके द्वारा अन्य बातों के अलावा अपने-आप को निरंतर

साफ-सुथरा रखने, अपने रुपये-पैसों के खर्चों का उपयुक्त हिसाब, भोजन पकाना, सामान्य तौर-तरीके आदि को सखिलाया जाता है। इतना ही नहीं मनोविदालिता के रोगियों में संज्ञानात्मक कौशलों की भी कमी होती है। इन कमियों को दूर करने के लिए संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा (cognitive behaviour therapy) का उपयोग किया जाता है। इस चिकित्सा द्वारा रोगियों के चिरकालिक श्रव्य विभ्रम (chronic auditory hellucinations) को कम किया जाता है। इस चिकित्सा में रोगियों को यह समझाया जाता है कि ऐसे श्रव्य विभ्रम जो इन्हें शरीर के भीतर से उत्पन्न होने देता है, का कारण किसी बाह्य उद्दीपक या वस्तु के प्रति गलत ढंग से उनके द्वारा आरोपण के कारण होता है। मनोविदालिता के रोगियों में व्यवहार चिकित्सा का उपयोग कुछ वैसे विकृत संज्ञानों (disordered conginitions) को परिवर्तित करने के लिए भी किया गया है, जिससे सामाजिक समस्या समाधान क्षमता प्रभावित होता है ब्रेन्नर तथा उनके सहयोगी (1989)।

(3) पारिवारिक चिकित्सा (Family therapy)- ऐसा देखा गया है कि मनोविदालिता के रोगियों को सफल उपचार के बाद मानसिक अस्पताल से निकलकर पुनः अपने परिवार में ही जाना पड़ता है। अगर इन लोगों का व्यवहार सकरात्मक तथा प्रशंसनीय होता है, तो इससे इन रोगियों पर अधिक अनुकूल प्रभाव पड़ता है तथा उनके रोग के लक्षणों की पुर्नवापसी की समस्या उत्पन्न नहीं होती है, परन्तु कभी-कभी परिवार के सदस्यों का व्यवहार रोगी क प्रति निन्दक होता है, जिसके परिणामस्वरूप रोग के लक्षणों में तेजी से पुनर्वापसी होने लगता है और रोगी को पुनः मानसिक अस्पताल में भर्ती करवाना आवश्यक हो जाता है। अतः मनोवैज्ञानिकों द्वारा ऐसे रोगियों के पारिवारिक चिकित्सा की आवश्यकता पर बल डाला गया है। पारिवारिक चिकित्सा का केन्द्र बिन्दु परिवार तथा स्वयं रोगी दोनों ही होता है। इस तरह की चिकित्सा में सामान्यः परिवार के सदस्यों को मनोविदालिता के बारे में पर्याप्त निर्देशन, प्रशिक्षण, व्यवहारिक राय, विशेष शिक्षा, सांवेगिक समर्थन तथा परानुभूति (empathy) आदि के बारे में बतलाया जाता है। इससे परिवार के सदस्यगण अपने-अपने प्रत्याशाओं में वास्तविकता, विचलित व्यवहार को सहन करने की क्षमता, दोष-भाव की कभी तथा संचार अंतःक्रिया के नये पैटर्नों को लागू करने की कोशिश आदि बढ़ता है। इस प्रक्रिया को मनोशिक्षा (psychoeducation) कहा जाता है।

पारिवारिक चिकित्सा के कुछ प्रविधियों में अभिव्यक्त संवेग (expressed emotion) पर भी बल डाला गया है। लेफ्फ एवं भाघन (1985) के अनुसार अभिव्यक्त संवेग से तात्पर्य एक ऐसी प्रक्रिया से होती है, जिसके सहारे परिवार के क्षुब्ध व्यक्ति के बारे में परिवार के सदस्यों द्वारा अभिव्यक्त मनोवृत्ति में परिर्वतन किया जाता है।

(4) सामाजिक पुनर्वास (Social rehabilitation)- इसमें परिवार के सदस्य, रोगी की तथा अपनी समस्याओं के बारे में मनोसामाजिक चिकित्सक से बातचीत करते हैं। उन्हें रोगी की साथ व्यवहार करने के तरीकों की शिक्षा दी जाती है और उपचार के बारे में विस्तृत जानकारी दी जाती है। उन्हें दवाओं की आवश्यकता एवं नियमितता के बारे में समझाया जाता है। रोगी की क्षमताओं का उपयोग करने के तौर-तरीकों को बताया जाता है। सामाजिक पुनर्वास के लिए रोगी की योग्यताओं को ध्यान में रखते हुए उसे छोटे-छोटे कार्यों के लिए प्रशिक्षण, रोजगार चिकित्सा (occupational therapy) के रूप में दिया जाता है। इससे रोगी को ठीक होने के बाद अपनी जीविका चलाने में सहायता मिलती है। सामाजिक पुनर्वास का एक पहलू समूह चिकित्सा (group therapy) भी

है। इनमें रोगियों को एक समूह में एक साथ बैठाकर उनकी समस्याओं के बारे में रोगियों से ही चर्चा कराई जाती है और उनके सम्भावित हल ढूँढ़ने का प्रयत्न किया जाता है। इसमें चिकित्सक समूह को चर्चा में एक निश्चित दिशा प्रदान करता है।

5. औषधीय उपचार (Drug Therapy)- औषधीय उपचार के लिए Rowualfia Serpentina, Chlorpromazine (Megatil, Nausilax), Fluphenazine (Anatensol Prolinate), Thiorridazine (Ridazine, Mellaril, Saliril), Trifluoperazine (Trinicalmplus, Trimicalm forte, Neocalm, Neocalm plus), Pimozide, Haloperidol (Combidol, Hexidol, Senorum, Trinorm), Haloperidol decanote, Trifulperidol, Prochlorperazine, Triflupromazine, Flupenthixol, Flupenithixol decanote, Lxapine, Clozapine, Risperidone, Olanzapine, आदि का प्रयोग चिकित्सक के निर्देशानुसार किया जा सकता है।

15.5 स्थिर व्यामोह या व्यामोही विकृति (PARANOIA OR DELUSIONAL DISORDER)

15.5.1 अर्थ एवं स्वरूप - स्थिर व्यामोह मनोविकृति का एक मुख्य प्रकार है, जिसकों स्थिर व्यामोही विकृति (paranoid disorder) तथा व्यामोही विकृति (delusional disorder) भी कहते हैं। यह एक ऐसी मानसिक रोग है जिसमें नाना प्रकार के व्यामोह (कमसनेपवदे) पाए जाते हैं, जो अपेक्षाकृत स्थायी स्वरूप के होते हैं। चैपलिन (chaplin 1975) के अनुसार- **''स्थिर -व्यामोह एक मनोविकृति है, जिसकी विशेषता है उत्पीड़न अथवा श्रेष्ठता के अत्यन्त क्रमबद्ध व्यामोह, जिनमें कोई बिगाड़ नहीं होता है।''**

रेबर तथा रेबर (Reber and Reber ,2001) ने इस मानसिक रोग के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा है कि- **''व्यामोही विकृति एक व्यापक शब्द है, जिससे ऐसी मानसिक विकृति का बोध होता है जिसमें किसी तरह के व्यामोह का अर्थपूर्ण लक्षण होता है।''**

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि स्थिर व्यामोही अथवा व्यामोही विकृति एक मनोविकृति है, जिसका मुख्य लक्षण व्यामोह है। व्यामोहिक विकार केआधुनिक प्रत्यय का तथ्य यह है कि स्थायी एवं अटल व्यामोहिक लक्षण का विकास व्यक्ति के जीवन के मध्य आयु में होता है। इसकी उपस्थिति से अन्य मानसिक क्रियाओं में कोई ह्रास नहीं होता। रोगी अक्सर अपने कार्य पर जाता है और अपना जीवन भी ठीक प्रकार से व्यतीत कर लेता है।

15.5.2 निदान (Diagnosis)- DSM-III-R में इस विकार को दो अलग-अलग विकारों में वर्गीकृत किया गया- स्थिर व्यामोह तथा स्थिर व्यामोही अवस्था। स्थिर व्यामोह में उत्पीड़न तथा महानता का व्यामोह होता है। DSM-IVमें इन दोनों मनोविकृतियों को समाप्त कर एक ही शीर्षक व्यामोही विकार (Delusional disorder) रखा गया है। DSM-IVके अनुसार व्यामोहिक विकार का निदान तब किया जाता है जब एक व्यक्ति कम से कम एक माह की अवधि का गौरवचित्र (Non-bizarre) व्यामोह प्रस्तुत करता है तथा जो अन्य किसी मानसिक रोग का विशेष

लक्षण नहीं होता है। गौरवचित्र व्यामोह का अर्थ ऐसी स्थिति के व्यामोह के लिए होता है जो वास्तविक जीवन में उत्पन्न हो सके जैसे कि पीछा किया जाना, संक्रमित होना, दूर से प्यार करना आदि। DSM-IVमें पाँच प्रकार के व्यामोह बताये गये हैं- उत्पीड़नातम्क, ईष्यालु, कामोन्मादी, दैहिक तथा महानता। ICD-10 में दुराग्रही व्यामोहिक विकार (Persistent delusional disorder) को ही मुख्य व्यामोहिक विकार के रूप में परिभाषित किया गया है। इसमें व्यामोह के लक्षणों की उपस्थिति एक माह के स्थान पर कम से कम तीन माह होनी चाहिये। इसमें व्यामोह के प्रकारों का उल्लेख नहीं किया गया है।

15.5.3 व्यामोहिक विकार के प्रकार (Types of delusional disorder)

1. उत्पीड़नात्मक प्रकार (Persecoutory type)- उत्पीड़न का व्यामोह व्यामोहिक विकार का उत्कृष्ट लक्षण है। मनोचिकित्सकों को उत्पीड़न का एवं ईर्ष्या का व्यामोह सबसे अधिक देखने को मिलता है। मनोविदलता विकार के उत्पीड़न के व्यामोह के विपरीत व्यामोहिक विकार के उत्पीड़नात्मक व्यामोह कथानक का विस्तारण व्यवस्थित, स्पष्ट एवं तार्किक होता है। इसमें मनोविदलता के विपरीत अन्य कोई विकृति या व्यक्तित्व में विघटन नही मिलता है।

2. ईर्ष्यात्मक प्रकार (Jealous type)-अविश्वास (Infidelity) के व्यामोह के साथ व्यामोहिक विकार को दाम्पत्तिक स्थिर व्यामोह (conjugal paranoia) कहा जाता है। सामान्यतः यह व्यामोह पुरूषों को दुःख देता है। अगर व्यामोह जीवन साथी के विश्वासघाती होने तक सीमित है तो यह अचानक ही प्रारम्भ हो सकता है और इसका अन्त काफी कठिन होता है और संबंध विच्छेद, मृत्यु आदि के बाद ही इसके समाप्त होने की सम्भावना होती है।

3. कामोन्मादी प्रकार (Erotomanic type)- कामोन्माद के रोगी गोपनीय प्रेम का व्यामोह रखते हैं। अधिकतर यह विकार महिलाओं में होती है परन्तु पुरूष में भी इस प्रकार का व्यामोह हो सकता है। रोगी को ऐसा विश्वास होता है कि उससे अधिक सामाजिक प्रतिष्ठा वाला व्यक्ति उसे प्यार करता है। व्यामोह रोगी के अस्तित्व का केन्द्र होता है तथा इसका प्रारम्भ अचानक होता है। कामोन्माद के रोगी की कुछ विशेषता होती है। वे सुन्दर महिला नही होती है, वे सामान्यतः छोटी नौकरी में, अकेले रहती है और किसी के साथ शारीरिक संबंध भी होता है। इसकी गति चिरकालिक, बारम्बार या अल्पकालीन होती है। प्रेम के लक्ष्य से रोगी को अलग किया जाना ही एकमात्र सन्तोषजनक हस्तक्षेप है। यद्यपि पुरूष महिलाओं की अपेक्षा कम व्यथित होते है, ये अपने प्रेम के अनुसरण में अधिक आक्रोशित और उदण्ड होते है। यहाँ आक्रोश का लक्ष्य प्रेम किया जाने वाला व्यक्ति ही नही होता है बल्कि उसे शरण देने वाला व्यक्ति भी होता है, क्योंकि उसे प्रेम के बीच आने वाला समझने लगता है। कुछ घटनाओं में प्रेमी की ओर से कोई अनुक्रिया न होने पर प्रेमलक्ष्य खतरे में पड़ जाता है।

4. दैहिक प्रकार (Somatic type)- इस प्रकार के व्यामोहिक विकार में व्यामोह निश्चित, अतार्किक और भावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किये जाते है क्योंकि रोगी पूरी तरह आश्वस्त होता है कि उसकी समस्या दैहिक है। इसके विपरीत रोगभ्रम (hypochondriasis) का रोगी यह स्वीकार करता है कि उसके रोग का डर आधारहीन है। इस

प्रकार के विकार के मुख्य तीन प्रकार है- **(1) शत्रुबाधा (infestation) का व्यामोह (2) डिसमार्फोफोबिया का व्यामोह जैसे अनिष्ट, शरीर के अंगो का बड़ा होने से बदसूरती और (3) दुर्गन्ध (halitoisis) का व्यामोह**। इस प्रकार की स्थितियाँ कम होती है परन्तु इनके निदान की समस्या बनी रहती है क्योंकि ये रोगी मनोचिकित्सक के स्थान पर अक्सर काया चिकित्सक, त्वचाविशेषज्ञ, शलयचिकित्सा आदि के पास भटकते रहते है। इस प्रकार के रोगियों का रोगफलानुमान बिना चिकित्सा के काफी खराब होता है। यह महिला तथा पुरूष दोनों में बराबर से होता है। इनमें क्रोध, आक्रोश, शर्म, अवसाद आदि विशेष रूप से देखा जाता है।

5. महानता का प्रकार (Grandiose type)- महानता के व्यामोह के बारे में वर्षों से चर्चा की जाती रही है। इसका विवरण क्रेपलिन के स्थिर व्यामोह में मिलता है जो कि व्यामोहिक विकार के समान ही है। इसमें व्यक्ति अपने से काफी बड़े व्यक्ति को अधिक शक्तिशाली, ज्ञानी समझने लगता है। कभी-कभी तो वह बड़े लोगों की तरह व्यवहार भी करने लगता है। इसमें रोगी को यह भी गलत विश्वास हो जाता है कि उसमें कोई दिव्य शक्ति उत्पन्न हो गई है उसने कोई महत्वपूर्ण खोज कर ली है या उसका किसी राजनेता या बड़े व्यक्ति से व्यक्तिगत सम्पर्क है या उसको इस धरती पर ईश्वर ने अपना दूत बना कर भेजा है।

6. मिश्रित प्रकार (Mixed type)- इस वर्ग में उन रोगियों को शामिल किया जाता है जिनमें एक से अधिक व्यामोह के कथानक मिलते है।

7. अविशिष्ट (Unspecified)- इसमें हम उन रोगियों को वर्गीकृत करते है जिनमें स्पष्ट व्यामोह के कथानक ऊपर वर्णित किसी भी प्रकार के व्यामोह में नहीं मिलता है, जैसे-सन्दर्भ का व्यामोह।

15.5.4 हेतुकी (Etiology)- मनोचिकित्सकों एवं मनोवैज्ञानिकों के अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि व्यामोहिक विकार के मुख्य कारण मनोसामाजिक है यदि ये किसी चिकित्सकीय स्थिति या द्रव्य सेवन से जुड़ा न हो।

(1) विश्वास की कमी- व्यामोहिक विकार के रोगी की मातायें कठोर अनुशासन वाली, अवहेलना करने वाली होती हैं तथा पिता असम्बद्ध, परपीड़क एवं रूखे स्वभाव के होते है अथवा वे कमजोर एवं प्रभावहीन होते है। ऐसे वातारण में बच्चों को यदि अपनी कुण्ठाओं और निराशाओं को दूर करने में माता-पिता का सहायता नहीं मिलती तो वे बाहरी वातारण को शत्रुतापूर्ण मानने लगते हैं और काल्पनिक समस्याओं के प्रति अतिसंवेदनशील हो जाते है। इस प्रकार विश्वास में कमी उसके व्यवहार में समाहित हो जाती है। यह व्यक्ति अहम् रक्षा तन्त्र के प्रतिक्रिया तंत्र का उपयोग, आक्रामकता एवं निर्भरता अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये करने लगता है। अस्वीकरण का उपयोग कटु यथार्थ को झुठलाने के लिए किया जाता है। नाराजगी और शत्रुभाव से उत्पन्न क्रोध की भावना को दूर करने के लिए प्रक्षेपण (projection) का उपयोग किया जाता है।

(2) अनिर्धारित लक्ष्य- कुछ बच्चों के माता-पिता उनसे उनकी क्षमता से अधिक की आशा करते हैं और जब बच्चें उनकी आशा के अनुरूप परिणाम नहीं लाते है तो उन्हें अनपेक्षित दण्ड देते है। इस प्रकार असुरक्षा की भावना से ग्रसित बच्चे स्वकल्पना (fantacies) ग्रस्त हो जाते हैं।**(3) दोषपूर्ण सीखना एवं विकार-**व्यामोह उन व्यक्तियों में भी विकसित होता है जो बचपन में अधिक एकान्त प्रिय, जिद्दी, शक्की या प्रतिरोधी रहे हैं। ये बच्चे अपने हम

उम्र बच्चों के साथ सौहार्द्र का संबंध बनाकर रखने में असमर्थ होते है। जिससे इनमें दूसरों के प्रति आस्था और विश्वास उत्पन्न नहीं हो पाता है।

कुछ मनोचिक्त्सिकों एवं मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि व्यामोह के विकार में पारिवारिक पृष्ठभूमि की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। ऐसे रोगियों का परिवार सत्तावादी या दमनकारी होता है।

(4) नकली समुदाय- केमरान ने सात प्रकार की स्थितियाँ बताई है जो कि व्यामोहिक विकार के विकास में सहयोग करती हैं। परपीड़ा व्यवहार का शिकार होने का भय, सामाजिक एकाकीपन, ईर्ष्या एवं द्वेष को बढ़ाने वाली परिस्थितियाँ, आत्मविश्वास कम करने वाली परिस्थितियाँ, ऐसी स्थितियॉ जो व्यक्ति को अपनी कमियों को दूसरे में देखने को विवश करती है, ऐसी स्थितियॉ जो चिन्ता बढ़ाती है। जब ऐसी किसी भी स्थिति में कुंठा सहनशक्ति से अधिक हो जाती है तब व्यक्ति प्रत्याहारी (withdrawn) तथा चिन्तित हो जाते हैं तब वे समझते है कि कुछ गलत है। केमरान का कहना था कि धीरे-धीरे रोगी के व्यामोह इतने दृढ़ हो जाते हैं कि वह एक नकली समुदाय विकसित कर हमेशा अपने को कुछ ऐसे व्यक्तियों (वास्तविक या काल्पनिक) से घिरा पाता है जिनका उद्देश्य उसके प्रतिकूल कोई क्रिया करती होती है। इस कारण रोगी छोटी-छोटी बातों को भी काफी बड़ी बना देता है।

(5) व्यक्तित्व का प्रकार- मनोचिकित्सकों एवं मनोवैज्ञानिकों के विभिन्न अध्ययनों के परिणाम में यह उभर कर आया है कि कुछ विशेष प्रकार के व्यकितत्व के लोग व्यामोहिक विकार के लिए संवेदनशील होते है, जैसे-संदेही, ईष्यालु, महत्वाकांक्षी आदि।

(6) पराहम् प्रक्षेपण-व्यामोही महिलायें अक्सर इस भ्रम से पीड़ित होती हैं, जिसमें उन्हें लगता है कि उन पर वेश्या होने का आरोप लगाया जा रहा है। बचपन में ये माता के प्यार की चाह में पिता की ओर उन्मुख हो जाती है और कौटुम्बिक व्यभिचार की भावना (incestual feeling) उत्पन्न हो जाती है जो कि बाद में व्यस्क होने पर सामान्य रति क्रिया को उसी भावना के अनुरूप सोचने पर विवश करती है। यही भावना बचपन की इच्छाओं की रक्षा के लिए पराहम् प्रक्षेपण रक्षातन्त्र का प्रयोग कर व्यामोह को जन्म देती है।

15.5.5 व्यामोहिक विकार के उपचार (Treatment of Paranoia)

स्थिर व्यामोह की प्रारंभिक अवस्था में रोगियों की चिकित्सा करना आसान होता है। ऐसी अवस्था में इन्हें वैयक्तिक मनोचिकित्सा (individual psychotherapy) तथा समूह मनोचिकित्सा देकर आसानी से चंगा किया जा सकता है। इस प्रारंभिक अवस्था में व्यवहार चिकित्सा देकर रोगियों को उनके लक्षणों से आसानी से मुक्त कराया जा सकता है। जैसे, विरुचि अनुबंधन (aversive conditioning) द्वारा कुसमायोजी व्यवहार को पुनर्बलित करने वाले कारकों को दूर करके तथा उत्तम समायोजी पैटर्न को अपनाकर स्थिर व्यामोही विश्वास को दूर किया जा सकता है।

परन्तु यदि स्थिर-व्यामोह की अवस्था बहुत आगे बढ़ चुकी होती है यानी रोग पुराना हो चुका होता है, तो वैसी अवस्था में इसके उपचार में थोड़ी कठिनाई आती है रोग पुराना हो जाने पर रोगी के साथ अर्थपूर्ण ढंग से कुछ कहना या सुझाव देना चिकित्सक के लिए संभव नही हो पाता है। फलतः उन्हें मनोचिकित्सा देकर चंगा करना

संभव नहीं हो पाता है। इस विकराल अवस्था में ऐसे रोगियों को मानसिक आरोग्यशाला (mental hospital) में भर्ती कराकर चिकित्सा कराना अनिवार्य हो जाता है जहॉ उन्हें मेडिकल चिकित्सा देकर उन्हें चंगा करने का प्रयास किया जाता है।

15.6 भावात्मक विकृति (Affective disorder)

मनोदशा विकृति का संबंध भावात्मक मानसिक प्रक्रिया (affective mental process)से है। इसी आधार पर मनोदशा विकृति को भावात्मक विकृति भी कहा जाता है। इस विकृति की स्थिति में कभी अत्यधिक विषाद और कभी अत्यधिक उत्साह (elation) घटित होता है।

रेबर तथा रेबर (Reber and reber 2001) ने मनोदशा विकृति को परिभाषित करते हुए कहा है कि- ''मनोदशा विकृतियों का तात्पर्य विकृतियों के उस वर्ग से है, जिसमें मनोदशा उपद्रव अथवा संवेगात्मक भाव की विशेषता, इस सीमा तक पायी जाती है जहॉ अत्यधिक एवं अनुपयुक्त विषाद या उत्साह घटित होता है।'' इस परिभाषा के विश्लेषण से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं:-

(1) मनोदशा विकृति अथवा भावात्मक विकृति को मनोविकृतियों का एक वर्ग माना जाता है। कारण, इसमें कई तरह की विकृतियॉ पायी जाती है। जैसे-अत्यधिक उत्साह, अत्यधिक विषाद इत्यादि।

(2) इस मानसिक विकृति का संबंध भावात्मक मानसिक प्रक्रिया से है। इसलिए, इसे भावात्मक विकृति कहा जाता है।

(3) इस मानसिक विकृति में कभी अत्यधिक विषाद ;कमचतमेंपवदद्ध का लक्षण देखा जाता है और कभी अत्यधिक उत्साह का लक्षण। इसी आधार पर पहले इस विकृति को उत्साह-विषाद विकृति कहा जाता था।

(4) इस विकृति में घटित विषाद या उत्साह अधिक तीव्र होने के साथ-साथ अनुपयुक्त होता है।

15.6.2 भावात्मक विकृति के प्रकार -

मनोदशा विकृति अथवा भावात्मक विकृति के निम्नलिखित प्रकार हैः-

(1) एकध्रुवीय विकृति या विषादी घटना (Unipolar Disorder or Depressive Episode)

(2) द्विध्रुवीय विकृति (bipolar disorder) /उत्साह विषाद विकृति (Manic Depressive Disorder

(3) डाइस्थाइमिक विकृति (Dysthymic Disorder)

(4) साइक्लोथाइमिक विकृति (Cyclothmic Disorder)

1. एकध्रुवीय विकृति या विषादी घटना

अर्थ एवं स्वरूप - जिस मनोविकृति को पहले विषाद (depression) अथवा विषादी विकृति ; (Depressive Disorder) कहा जाता था, उसे अब एकध्रुवीय विकृति कहा जाता है। कभी-कभी एक ध्रुवीय विकृति केा मुख्य विषादी घटना (major depressive episode) भी कहते हैं। अतः विषाद, विषाद विकृति, मुख्य विषादी घटना तथा एकध्रुवीय विकृति समान अर्थ वाले शब्द है।

रेबर तथा रेबर ने एकध्रुवीय विकृति की व्याख्या करते हुए कहा है कि इस विकृति में केवल विषादी घटनाएँ घटित होती है। इसमें उत्साह या उन्माद (mania)नहीं पाया जाता है। यह लक्षण द्विध्रुवीय विकृति में पाया जाता है।

लक्षण -विषाद विकृति अथवा एकध्रुवीय विकृति के लक्षणों केा निम्नलिखित प्रकारों में विभाजित किया जा सकता हैः-

1.मनोदशा लक्षण (Mood symptoms). इस मानसिक रोग का मुख्य लक्षण मनोदशा से संबंधित है। रोगी हमेशा खिन्न, उदास तथा निराश रहा करता है। वह अपने आप को उपेक्षित महसूस करता है। वह अपने जीवन में आशा तथा उल्लास नही देखता है। निराशा के कारण आत्महत्या की प्रवृत्ति से वह पीड़ित रहता है।

2.संज्ञानात्मक लक्षण (**Cognitive symptoms**). इस मानसिक रोग से पीड़ित व्यक्ति में कई तरह के संज्ञानात्मक लक्षण पाए जाते है। रोगी प्रायः निराशावादी होता है, नकरात्मक प्रवृत्ति (negative tendency)अधिक पायी जाती है, वह अपनी समस्याओं का आकलन बढ़ा-चढ़ा करता है, रोगी की स्वधारणा (self-concept) कमजोर होती है।

(3) दैहिक लक्षण (Somatic symptoms). एकध्रुवीय विकृति अथवा विषाद विकृति के रोगी में कई तरह के दैहिक लक्षण देखे जाते है। ऐसे लक्षणों में बाधित निद्राए बाधित भोजन प्रतिरूप (disturbed eating patterns), यौन प्रणोदन (sex drive) की कमी तथा शारीरिक रोग अधिक देखे जाते है।

(**4)नैदानिक मापदण्ड** (**Clinical criteria**)- DSM-IV;1994 में एक ध्रुवीय विकृति (unipolar disorder) के कई नैदानिक मापदण्डों का उल्लेख किया गया है, जैसे-दो या अधिक प्रधान विषादी घटनाएँए उत्साह या उन्माद का अभाव तथा बाधित लक्षण प्रतिरूप। उपर्युक्त लक्षणों के आलोक में विषादी विकृति अथवा एकध्रुवीय विकृति की पहचान की जा सकती है।

कारण (Causes)- एकध्रुवीय विकृति अथवा विषादी विकृति के निम्नलिखित कारण है-

1.मनोगतिक कारक (**Psychodynamic factors**-)- इस संबंध में फ्रायड (Freud)ने प्रारम्भिक क्षति को विषाद का कारण माना। उनके अनुसार मुखावस्था स्थायीकरण (Oral fixation) से उत्पन्न अचेतन द्वन्द्वों (unconscious conflicts) के प्रति प्रतिगमन मनोरचना (regression mechanism) के रूप में व्यक्ति विषाद

से पीड़ित हो जाता है। इसी तरह मौखिक अवस्था में अपने प्रियजन की क्षति के प्रति आत्मसात (introjections) भी नकारात्मक मनोवृत्ति, आत्म-दोष तथा प्रत्याहार के रूप में विषाद को जन्म देता है।

2.संज्ञानात्क कारक (**Cognitive factors**)- संज्ञानात्मक दृष्टिकोण के अनुसार विषाद के विकास पर संज्ञानात्मक कारकों का प्रभाव दो तरह से पड़ता है- (अ) नकारात्मक संज्ञानात्मक प्रवृति तथा सूचना संसाधन तथा (ब) अर्जित निस्सहायता। बेक (Beck 1976) के अनुसार नकारात्मक संज्ञानात्मक प्रवृति की स्थिति में व्यक्ति विषाद विकृति का शिकार बन जाता है। विषादी तन्त्र के विकसित हो जाने पर विषादी सूचना का प्रत्यावाहन व्यक्ति अधिक करता है। स्लिगमैन (Seligman) के अनुसार अर्जित निस्सहायता (learned helplessness) भी एक संज्ञानात्मक कारक के रूप में विषादी विकृति को प्रोत्साहित करती है।

3.जैविक कारक (**Biological Factors**)- जैविक कारकों में जननिक कारक (genetic factor)का हाथ अधिक होता है परिवार के अध्ययनों तथा जुड़वाँ बच्चों के अध्ययनों से पता चलता है कि यह रोग बहुत हद तक वंशागत होता है।

4.सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारक (**Social and Cultural Factors**)- विषादी विकृति या एकध्रुवीय विकृति के विकास पर कई तरह के अवक्षेपी कारकों (precipitatory factors) का प्रभाव पड़ता है, जिनमें दोषपूर्ण प्राथमिक समाजीकरण (faulty primary socialization), दोषपूर्ण अधिगम प्रतिरूप (faulty learning patterns),दोषपूर्ण सांस्कृतिक मानक (faulty cultural norms) आदि मुख्य है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि विषादी विकृति अथवा एकध्रुवीय विकृति के विकास में कई तरह के पूर्वप्रवृत्तिक कारकों तथा अवक्षेपी कारकों का हाथ होता है।

द्विध्रुवीय विकुति (Bipolar disorder)

अर्थ तथा लक्षण - उत्साह-विषाद (manic depression) अर्थात द्विध्रुवीय विकुति (bipolar disorder) वास्तव में मनोदशा विकृति का एक महत्वपूर्ण प्रकार है। यह द्विविमात्मक विकृति (two dimensional disorder) है। इस विकृति की एक विमा उत्साह (mania)है और दूसरी विमा विषाद (depression) है। रोगी में कभी उत्साह विमा और कभी विषाद विमा सक्रिय दीख पड़ती है। उत्साह प्रधान होता है तो विषाद गौण हो जाता है ओर जब विषाद प्रधान होता है तो उत्साह गौण हो जाता है।

कारण विज्ञान (Etiology)-

द्विध्रुवीय विकृति के लिए कई कारकों को उत्तरदायी ठहराया गया है जिनमें तंत्रिका प्रेषक (neurotransmitter), सोडियम आयन क्रिया (sodium ion activity), जननिक कारक एवं बलाघात (stress) को लिया जा सकता है।

1. Post et.al. (1980), Telner et.al(1986) के अनुसार उन्माद-विषाद प्रसंगों की अनुभूति तांत्रिका प्रेषकों द्वारा प्रभावित होती है। जैसे-जैसे (Norepinephrine) की मात्रा में वृद्धि होती है, उन्मादी अनुभूतियों में वैसे-वैसे वृद्धि पाई जाती है लेकिन छम् की मात्रा में जैसे-जैसे ह्रास पाया जाता है, वैसे-वैसे अवसाद की मात्रा बढ़ती जाती है। Bunney & Garlan(1984) का मत है कि Lithium नामक औषधि भी Norepinephrine की मात्रा को कम करके उन्मादपरक लक्षणों को कम करते है।

Price (1990), Bunney & Garland (1984) ने यह परिणाम प्राप्त किया है कि Serotonin की आपूर्ति कम होने से ही उन्माद की अवस्था पाई जाती है जबकि कुछ अध्ययन यह प्रदर्शित करते है कि Serotonin की मात्रा अधिक होने से उन्माद की मात्रा अधिक हो जाती है जैसे कि Norepinephrine के संदर्भ में प्राप्त किया गया है।

इस विरोधी परिणामों के परिणामस्वरूप ही Prange et.al. (1974) ने मनोदशा विकृति के संबंध में एक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसे अनुमतिबोधक सिद्धान्त (permissive theory) की संज्ञा दी जाती है। यह सिद्धान्त यह प्रस्तावित करता है कि मनोदशा विकृति का प्रारंभ Serotonin स्तर के निम्न होने के साथ ही यदि Norepinephrine का स्तर भी निम्न हो तो रोगी में अवसाद के लक्षण पाये जाते है। यह परिणाम एक ध्रुवीय अवसाद (unipolar depression) के तांत्रिका प्रेषक सिद्धान्त (Neurotransmitter theory) की पुष्टि करता है। ठीक इसके विपरीत, यदि Serotonin का स्तर निम्न है और बाद में Norepinephrine का स्तर उच्च हो जाता है, तो रोगी में उन्माद के लक्षण पाये जायेगें। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि Serotonin और Norepinephrine की अन्तक्रिया द्विध्रुवीय विकृति (bipolar disorder) को जन्म देती है परन्तु इस संदर्भ में अनुसंधानकर्ताओं में मतैक्य नही है। परन्तु यह चित्र अवश्य ही स्पष्ट है कि इन दोनों तांत्रिका प्रेषकों की असामान्यता रोगी की अवसादपरक असामान्यता का परिचायक है।

(2) द्वितीय कारक सोडियम आयन क्रिया के संदर्भ में Meltzer 1991, ने यह परिणाम प्राप्त किया है कि सम्पूर्ण मस्तिष्क के तांत्रिक झिल्लियों में सोडियम आयन्स के अनुपयुक्त एवं दोषपूर्ण संचार के कारण उन्माद भी पाया जाता है और अवसाद भी। इस संदर्भ में अनुसंधानकर्ताओं के दो मत है। कुछ का मत है कि मस्तिष्क के तांत्रिक झिल्लियों में सोडियम आयन का संचार उपयुक्त ढंग से होना आवश्यक है। जब इन आयनों का संचार बंग से होता है तो किसी तांत्रिका (neuron)में न तो आवश्यकता से अधिक उत्तेजना (stimulation) दिखाएगा और न आवश्यकता से अधिक प्रतिरोध (resistance) जबकि कुछ अनुसंधानकर्ताओं की धारणा उसके विपरीत है। इनका मत है कि सोडियम आयन का संचरण जब ठीक ढंग से नही होता है तो न्यूरोन या तो बहुत आसानी से उत्तेजित होगें या बहुत कठिनता से। जब न्यूरोन बहुत आसानी से उत्तेजित होगें, तो रोगी में उन्माद के लक्षण पाये जाएँगे। इसी प्रकार जब न्यूरोन कठिनता से उत्तेजित होगें, तो रोगी में अवसाद के लक्षण पाये जायेगे। इस प्रकार कहा जा सकता है कि तांत्रिका की झिल्लियों (membrane) में सोडियम आयन के दोषपूर्ण संचरण से व्यक्ति के मनोदशा में परिवर्तन पाया जाता है।

Kato et.al.,1991 तथा Meltze 1991 के अध्ययन यह परिणाम प्रदर्शित करते है कि जब मस्तिष्क के तांत्रिकाओं के झिल्ली के प्रोटीन प्रकार्यो (protein function) में सामान्यता (normality) पाई जाती है, तो झिल्ली के आगे पीछे सोडियम आयन का संचरण अधिक अच्छी तरह होता है। और मनोदशा में विकृति के कोई लक्षण नही पाये जाते है। इसी प्रकार कुछ अध्ययन यह भी प्रदर्शित करते है कि तांत्रिकाओं के झिल्ली के दोषपूर्ण होने पर सोडियम आयन का संचरण ठीक से नही हो पाता है।

(3) द्विध्रुवीय विकृति के कारण के रूप में जननिक कारक को लिया जा सकता है जो इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि द्विध्रुवीयविकृति का कारण आनुवांशिकता है क्योंकि Nurberger & Gershon ,1992, American Psychiatric Association 1994 के अध्ययनों के आधार पर यह निष्कर्ष प्राप्त किया जा सकता है कि नजदीकी सम्बन्धियों में द्विध्रुवीय विकृति के पाये जाने पर 25% तक इस रोग के पाये जाने की संभावना पाई जाती है (Fischer)1980। Bertelsen et.al.;1974 ने अपने अध्ययन में समरूप यमज (identical twins) में द्विध्रुवीय के पाये जाने की संभावना 70% तथा fraternal twins में 25% प्राप्त की|

(4) द्विध्रुवीय विकृति के लिए उत्तरदायी चतुर्थ कारक बलाघात (stress) है। व्यक्ति के जीवन में पाया जाने वाला तनाव और बलाघात उनमें उन्माद के लक्षणों को उत्पन्न कर ता है। अध्ययनों में यह परिणाम भी प्राप्त किया गया है कि जिन द्विध्रुवीय रोगियों के उपचार के लिए लिथियम का प्रयोग किया गया था, उन रोगियों के उन्माद में उस समय वृद्धि प्राप्त की गई जब आंधी तूफान से हुए तबाही के कारण उनमें तनाव पाया गया (Anonson & Shuklas 1987)| Molz;1993 ने यह परिणाम प्राप्त किया है कि अवसादी या उन्मादी व्यक्तियों के साथ रहने पर दूसरे व्यक्ति में 40% इन रोगों के पाये जाने की संभावना पाई जाती है।

साइक्लोथिमिक विकृति (Cyclothymic Disorder)

अर्थ एवं स्वरूप - DSM-IV में साइक्लोथायमिक विकृति की परिभाषा, ''चिरकालिक अस्थिर क्षुब्धता'' (chronic) fluctuating disturbance) के रूप में की गई है। जिसमें अवउन्माद तथा अवसाद की अवस्थाएँ पाई जाती है। लक्षण के दृष्टिकोण से साइक्लोथायमिक विकृति द्धिध्रुवीय विकृति (Bipolar II disorder) का मृदुल रूप (mild form) है जिसमें अवउन्माद (hypomania) तथा मृदुल अवसाद (mild depression) के लक्षण पाये जाते है। यह द्विध्रुवीय विकृति से भिन्न है क्योंकि इसमें प्रमुख अवसाद ;डक्द्ध तथा अवउन्माद प्रसंग के लक्षण पाए जाते है। इस विकृति का यह एक प्रमुख लक्षण है कि यह विकृति कम से कम दो वर्षो के लिए अवश्य पाया जाता है। इस विकृति में अवसाद और अवउन्माद के लक्षण अवश्य पाए जाते है, परन्तु वह उतने गम्भीर नही होते है जितने कि अवसाद और उन्माद के नैदानिक लक्षण DSM-IV में वर्णित किए गये है।

Emil Kraeplin & Kurt Schneider ने अपने निरीक्षणों के आधार पर यह निष्कर्ष प्राप्त किया है कि 1/3 से 2/3 मनोदशा विकृति के रोगियों में व्यक्तित्व विकृति पाई जाती है। Kraepelin ने चार प्रकार के व्यक्तित्व विकृतियों-अवसादपरकए उन्मादी, चिड़चिड़ा एवं सायक्लोथायमिक का वर्णन किया है। मनश्चिकित्सा के रोगियों में 3% से 10% रोगी इस रोग से पीड़ित होते है। परन्तु सामान्य जनसंख्या में इनका प्रतिशत केवल 1% होता है।

डायस्थियमिक विकृति की भाँति यह विकृति भी सीमावर्ती व्यक्तित्व विकृति (borderline personality disorder) के साथ घटित होता है। इस विकृति के महिलाओं और पुरूषों में पाए जाने का अनुपात 3:2 का होता है। यह विकृति 50% से 75% उन लोगों में पाया जाता है जिनके आयु का प्रसार 15 से 25 वर्ष होता है।

नैदानिक लक्षण-. साइक्लोथिमिक विकृति के निम्नलिखित नैदानिक लक्षण हैः-

(1) यह एक चिरकालिक अस्थाई मनोदशा क्षुब्धता है जिसमें भिन्न-भिन्न अवधियों के लिए अवउन्मादी एवं अवसादी लक्षण पाये जाते है।

(2) अवउन्मादी लक्षणों की संख्या अनेक तीव्र एवं व्यापक होती है।

(3) कम से कम दो सालों तक अनेक अवधियों में अवउन्मादी तथा अवसादी लक्षण पाये जाते है।

(4) दो साल की अवधि में दो महीनों से कम के लिए कोई लक्षण नहीं पाया जाता है।

(5) किसी प्रमुख अवसादपरक प्रसंग का अनुभव हुआ है।

(6) क्षुब्धता के प्रथम दो वर्षों में प्रमुख अवसाद प्रसंग, उन्माद प्रसंग अथवा मिश्रित प्रसंग के लक्षण नही पाये जाते है।

(7) यह लक्षण पदार्थो के दैहिक प्रभावों अथवा सामान्य चिकित्सकीय दशाओं के कारण नहीं उत्पन्न होते है।

(8) इस विकृति के लक्षण नैदानिक रूप रोगी में महत्वपूर्ण व्यथा (distress) उत्पन्न करते है और उसके सामाजिक, व्यवसायिक तथा प्रकार्यता के अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्रों को दुर्बल बनाते है|

कारण विज्ञान -

साइक्लोथायमिक विकृति के पाये जाने के दो प्रमुख कारक-जैविक और मनोसामाजिक है। इस विकृति से संबंधित जैविक अध्ययन इस तथ्य पर प्रकाश डालते हैं कि मनोदशा विकृति जननिक होती है क्योंकि इस विकृति से ग्रस्त 30% रोगियों के परिवार में द्विध्रुवीय प्रथम विकृति (bipolar I disorder) के धनात्मक पारिवारिक इतिहास (pedigress of family) यह संकेत करते है कि द्विध्रुवीय प्रथम विकृति के लक्षणों वाले परिवारों में साइक्लोथायमिक विकृति के लक्षण पाये जाते है।

इस विकृति के संदर्भ में जहाँ तक मनोसामाजिक कारकों का प्रश्न है, मनोगत्यात्मक अध्ययन इस कारक पर प्रकाश डालते है कि साक्लोथायमिक विकृति का कारण शैशवावस्था के विकास के समय आघातों का पाया जाना है। फ्रायड ने यह अभिकल्पित किया है कि साइक्लोथायमिक दशा कठोर एवं दण्डात्मक पराअहम् पर विजय प्राप्त करने का अहम् का एक प्रयास है। अवउन्माद की मनोगत्यात्मक व्याख्या आत्म-आलोचना के अभाव एवं

अवरोधों की अनुपस्थिति के रूप में की जा सकती है जब अवसादी व्यक्ति कठोर पराअहम् (harsh superego) के बोझ से अपने को दूर करता है। अवउन्माद में अस्वीकरण मनोरचना का प्रयोग होता है जिसके द्वारा रोगी वाह्य समस्याओं एवं अवसाद के आन्तरिक भावों के परिहार का प्रयास करता है। साक्लोथायमिक विकृति के रोगी को अवउन्माद लक्षणों द्वारा विशेषीकृत किया जाता है।

मनोविश्लेषणात्मक अनुसंधान यह प्रदर्शित करते है कि ऐसे रोगी स्वयं में निहित अवसादरपरक विषय-वस्तुओं (themes) से बचाव करते है। अवउन्माद के उत्तेजना अक्सर महत्वपूर्ण अन्तर्वैयक्तिक हानियों से प्राप्त होता है। अवउन्माद का संबंध अचेतन स्वैर कल्पना (fantasy) से हो जाता है और वह खोए वस्तु को पुनः प्राप्त करने का प्रयास करता है।

15.6.3 भावात्मक विकृति का उपचार- इस तरह की विकृति का उपचार निम्नांकित दो तरह की प्रविधियों द्वारा अधिक उत्तम ढंग से किया जाता है-

1. लिथियम चिकित्सा (Lithium Therapy)- लिथियम चिकित्सा में चिकित्सक द्विध्रुवीय विकृति के रोगी को उचित मात्रा में लिथियम नामक औषध लेने की सलाह देते हैं। लिथियम एक ऐसा औषध है जो उन मस्तिष्कन्यूरोन्स के संधिस्थली में परिवर्तन ला देता है जो नोरइपाइनफ्राइन तथा सीरोटोनोनीन जैसे न्यूरोट्रांसमीटर को स्राव करते हैं। लिथियम द्वारा द्विध्रुवीय विकृति के उन्मादी अवस्था तथा विषादी अवस्था दोनों में ही सुधार होते पाए गए हैं और इन दोनों के पक्ष में पर्याप्त प्रयोगशाला सबूत होते हैं।

2. योजन मनश्चिकित्सा (**Additive Psycho Therapy**)- कुछ चिकित्सकों का मत है कि द्विध्रुवीय विकृति की चिकित्सा में सिर्फ लिथियम चिकित्सा बहुत प्रभावकारी नहीं होता है। प्रिन तथा उनके सहयोगियों का मत है कि द्विध्रुवीय विकृति का करीब 30 से 40 प्रतिशत रोगी लिथियम के प्रति अनुक्रियाशील नहीं होते हैं या उसके सेवन की स्थिति में भी रोग के लक्षणों का पुर्नवापसी हो जाता है। कुछ ऐसे भी सबूत उपलब्ध है जिसमें यह कहा गया है कि लिथियम का उपयोग करने वाले करीब 50 प्रतिशत ऐसे होते हैं जो उचित मात्रा में लिथियम का सेवन नहीं करते, कुछ बीच में ही छोड़ देते है तथा कुछ ऐसे होते हैं जिन्हें चिकित्सकों द्वारा ही गलत मात्रा में खाने की सलाह दी जाती है। इन समस्याओं के आलोक में बहुत सारे चिकित्सक मनश्चिकित्सा को लिथियम उपचार के एक योजक के रूप में उपयोग करने की सलाह दिया है। इस तरह के मनश्चिकित्सा को योजन मनश्चिकित्सा की संज्ञा दी जाती है।

3. मनोचिकित्सा (Psychotherapy)- विषादी विकृति अथवा एकध्रुवीय विकृति के रोगी के उपचार के लिए मनोगतिकी ,चिकित्सा (psychodynamic therapy),

व्यवहार चिकित्सा (behaviour therapy), संज्ञानात्मक चिकित्सा (cognitive therapy) ,तथा शारीरिक चिकित्सा (physical therapy) यथा औषध चिकित्सा (drug therapy), तथा विद्युत आक्षेपीय चिकित्सा (electroconvulsive therapy) का उपयोग आवश्यकता के अनुसार किया जाता है

15.7 सारांश

1. मनोविकृति वह विकृति है जिसमें व्यामोह, विभ्रम, असंगति, पुनरावृत्ति विचार-विचलन, विचार संगति की स्पष्ट कमी, स्पष्ट अतार्किकता तथा गम्भीर रूप से विसंगठित अथवा केटाटोनिक व्यवहार देखे जाते हैं।

2. मनोविदलता विकृत चिंतन है जिसमें विचार तार्किक रूप से संबद्ध नहीं होते है, दोषपूर्ण प्रत्यक्षीकरण एवं ध्यान होती है। पेशीय क्रियाओं में अनोखी क्षुब्धता होती है तथा चपटा या अनुपयुक्त भाव होती है। यह रोगी को अन्य लोगों एवं वास्तविकता से दूर करके उसे व्याहमोह तथा विभ्रम के काल्पनिक दुनिया में ले जाती है।

3. व्यामोही विकृति एक मनोविकृति है, जिसका मुख्य लक्षण व्यामोह है। इसकी उपस्थिति से अन्य मानसिक क्रियाओं में कोई ह्रास नहीं होता। रोगी अक्सर अपने कार्य पर जाता है और अपना जीवन भी ठीक प्रकार से व्यतीत कर लेता है।

4. भावात्मक विकृति की स्थिति में कभी अत्यधिक विषाद और कभी अत्यधिक उत्साह घटित होते है ।

15.8 शब्दावली

11. व्यामोहः व्यक्ति का ऐसा झूठा विश्वास जिसे वह प्रत्येक स्थिति में सत्य मानता है।

2. विभ्रमः व्यक्ति का एक ऐसा दोषपूर्ण प्रत्यक्षीकरण जिसमें वातावरण में उद्दीपक के न होने पर भी वह उसका अनुभव करता है।

3. विषादः प्रसन्नता का अभाव, अवसाद, भूख व भार में गिरावट, उर्जा ह्रास, क्रियाशीलता में परिर्वतन की अवस्था।

4. मनोविकृतिः मनोविकृति से ग्रस्त रोगियों के व्यवहार के अध्ययन करने से पता चलता है कि उनके बेढ़ंगा व्यवहार ,संवेगात्मक विकृति, स्मृति दोषपूर्ण एवं वास्तविकता से सम्बन्ध का विच्छेद की अवस्था।

15.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. मनोविकृति व्यवहार में विभ्रम और ..... की अधिकता पाई जाती है ।

2. मनोविदलता के रोगी में विघटित ..... के लक्षण पाये जाती है ।

3. द्विध्रुवीय विकुति की एक विमा उत्साह है और दूसरी विमा ..... है ।

4. एकध्रुवीय विकृति में केवल ..... घटनाएँ घटित होती है।

5. व्यामोही विकृति एक ऐसा मानसिक रोग है जिसमें नाना प्रकार के .....पाए जाते हैं।

6. सामाजिक पुनर्वास के लिए मनोविदलता के रोगी की योग्यताओं को ध्यान में रखते हुए उसे छोटे-छोटे कार्यों के लिए प्रशिक्षण, ... के रूप में दिया जाता है।

7. मनोदशा विकृति का संबंध .....मानसिक प्रक्रिया से होता है।

उत्तर: 1.व्यामोह 2. चिन्तन एवं सम्भाषण 3.विषाद 4.विषादी

5. व्यामोह 6. रोजगार चिकित्सा 7. भावात्मक

15.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान अरूण कुमार सिंह- मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली

2. आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान आर एन सिंह, अंजुम कुरेशी, शुभ्रा भारद्वाज, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा

3. मनोविकृति विज्ञान-विनती आनन्द एवं श्रीवास्तव- मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली

4. मनोविकृति विज्ञान-अजय कुमार श्रीवास्तव-विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

15.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मनोविकृति के लक्षणों को बताइए। मनोविकृति के कारणों की चर्चा कीजिए।

2. मनोविकृति के कारणों की चर्चा करते हुए प्रमुख चिकित्सा विधि का वर्णन कीजिए।

3. निम्नलिखित के प्रकारों की चर्चा कीजिए।

   (अ) मनोविदलता (ब) भावात्मक विकृति (स) व्यामोहिक विकार

4. भावात्मक विकृति के स्थिर व्यामोह के कारणों व चिकित्सा विधि का वर्णन कीजिए।

5. निम्नलिखित के लक्षणों को समझाकर लिखिए-(अ) द्विध्रुवीय विकुति (ब) व्यामोहिक विकार (स) एकध्रुवीय विकृति

इकाई-16 विभिन्न मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का नैदानिक महत्व (Diagnostic value of different psychological tests)

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 बुद्धि का नैदानिक मापन

16.4 स्टेनफोर्ड बिने परीक्षण

16.**5** वैक्सलर बुद्धि मापनी

16.6 एम एम पी आई

16.7 सारांश

16.8 शब्दावली

16.9 अभ्यास के प्रश्नों के उत्तर

16.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

16.11 निबन्धात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

नैदानिक मनोविज्ञान में कई विधियों का उपयोग करके रोगी के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है और रोगी के बारे में महत्वपूर्ण आंकड़ों को इकट्ठा किया जाता है|परीक्षण व्यक्ति के व्यवहारों को प्रेक्षण करने तथा उसे एक संख्यात्मक मापनी या श्रेणी पद्धति द्वारा वर्णन करने की एक क्रमबद्ध कार्य-विधि है| असामान्य व्यवहार के अध्ययन के लिए विभिन्न मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का उपयोग किया जाता है। मनोवैज्ञानिक परीक्षण शाब्दिक या अशाब्दिक हो सकते है। प्रशासन की दृष्टि से व्यक्तिगत या सामूहिक हो सकते है। व्यक्तित्व के विभिन्न शीलगुणों का मापन इन परीक्षणों द्वारा किया जाता है।

इस इकाई के अन्तर्गत हम कुछ परीक्षणों का विस्तार से अध्ययन कर सकेंगें।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य निम्न प्रकार है -

बुद्धि के नैदानिक मापन के अन्तर्गत आने वाले परीक्षणों तथा एम एम पी आई का अध्ययन करना ।

16.3 बुद्धि का नैदानिक मापन (Clinical Assessment of Intelligence)

नैदानिक मनोवैज्ञानिक कुछ निश्चित उद्देश्य से रोगियों की बुद्धि की माप करते हैं। इन उद्देश्यों के साथ बुद्धि के किये गये मापन को नैदानिक मापन कहा जाता है। बुद्धि के नैदानिक मापन क्यों किये जाते हैं? इसका उत्तर यह है कि ऐसे मापन के कुछ निश्चित उद्देश्य होते हैं जिनकी प्राप्ति के लिए नैदानिक मापन किये जाते हैं। वे उद्देश्य निम्नांकित तीन हैं-

1. व्यक्तियों में मानसिक दुर्बलता के स्तर को पता लगाने के लिए नैदाकिन मनोवैज्ञानिक बुद्धि का मापन करते हैं।

2. रोगी के बौद्धिक स्तर पर व्यक्तित्वच विघटन के पड़ने वाले संभावित प्रभावों का अध्ययन करने के लिए नैदानिक मनोवैज्ञानिक द्वारा बुद्धि की माप की जाती है।

3. बुद्धि स्तर के माध्यम से यानी उसे माप करके रोगी के व्यक्तित्व के शीलगुणों का पता लगाने के लए भी नैदानिक मनोवैज्ञानिक बुद्धि की माप करते हैं।

4. बुद्धि मापन नैदानिक मनोवैज्ञानिको को रोगी के व्यवहारों का प्रेक्षण एक मनोनीकृत अवस्था में करने में मदद मिलती है। इससे नैदानिक मनोवैज्ञानिकों को कई ऐसे संकेत मिल जाते हैं जिनके आधार पर नैदानिक मूल्यांकन करने में उसे काफी आसानी होती है।

नैदानिक मनोवैज्ञानिक रोगियों की बुद्धि की माप करने के लिए प्रायः वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण न कि सामूहिक बुद्धि परीक्षण को अधिक अहमियत देते हैं। प्रमुख बुद्धि परीक्षण जिसका नैदानिक मापन में किया जाता है, वे निम्नांकित हैं-

1. बिने परीक्षण
2. वेक्सलर मापनी
3. रैवेन प्रोग्रेसिव मैट्रीसेज
4. गुडएनफ ड्र-ए-मैन परीक्षण
5. बच्चों के लिए निर्मित कॉफमैन मूल्यांकन परीक्षाफल
6. बुडकौक- जानसन साइको-इडुकेशनल परीक्षणमाला
7. पीवॉडी चित्र शब्दावली परीक्षण

इन परीक्षणो का वर्णन हम अलग-अलग अनुच्छेद में करेगें|

16.4 स्टेनफोर्ड बिने परीक्षण (Binet test Stanford)

बुद्धि परीक्षण के इतिहास में बिने परीक्षण की अहमियत नैदानिक दृष्टिकोण से काफी अधिक बतलायी गयी है। इसके दो कारण हैं- पहला तो यह कि बिने परीक्षण ऐसा माननीकृत बुद्धि परीक्षण है जिसकी ओर मनोवैज्ञानिकों का ध्यान गया तथा इस परीक्षण को समय-समय पर संशोधन कर उसे और भी अधिक उत्तम बनाने का प्रयास जारी रखा गया।

इस परीक्षण का निर्माण फ्रें च मनोवैज्ञानिक अलफ्रेड बिने द्वारा थियोडोर साइमन जो एक मेडिकल डाक्टर थे, की सहायता से की गयी। फ्रेंच सरकार ने मानसिक रुप से दुर्बल। बच्चों की पहचान करने के लिए एक बुद्धि परीक्षण का निर्माण का कार्यभार बिने पर सौंपा था। बिने ने साइमन की मददसे एक बुद्धि परीक्षण का निर्माण 1905 में किया जिसे तब बिने-साइमन-मापनी के नाम से पुकारा गया। इस परीक्षण में कुल 30 एकांश थे जिनके द्वारा मूलतः बच्चों में भाषा का प्रयोग तथा चिन्तन एवं बोध आदि का मापन होता है। ये सभी एकांश बढ़ते हुए क्रम में सुसज्जित थे। यह एक वैयक्तिक रुप से क्रियान्वित परीक्षण था जिसका प्रथम संशोधन 1908 में किया गया। इस संशोधन की मुख्य विशेषता यह थी कि इसमें कुछ नये एकांशों को जोड़े गए तथा कुछ संतोषजनक पुराने एकांशो को हटा दिया गया। 1908 के संशोधन के बाद इस परीक्ष्ज्ञण में एकांशों की संख्या बढ़कर 58 हो गयी।

इस परीक्षण का अंग्रेजी रुपान्तर गोडार्ड द्वारा 1911 में अमेरिका में किया गया और विभिन्न मानसिक अस्पतालों एवं उपाचार गृहों मे इसका प्रयोग मानसिक रुप में कमजोर बच्चों की पहचान में धड़ल्ले से किया जाने लगा। अमेरिका में इसके कई संशोधन फिर बाद में हुए। जैसे, कुंह्मान ने इसका संशोधन 1912, 1922 तथा 1939 में किया। वर्क ने इसका संशोधन 1915 एवं 1923 में किया तथा हेरिंग ने इसका संशोधन 1922 में किया।

नैदानिक दृष्टिकोण से इस परीक्षण का सबसे महत्वपूर्ण संशोधन एल0एम0 टरमैन द्वारा 1916 में स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय में किया। इस संशोधन ने परीक्षण में चार चांद लगा दिया। इसकी लोकप्रियता दिन-दुनी तथा राज चौगुनी ढंग से बढ़ी। इस संशोधन को स्टैनफोर्ड बिने के नाम से पुकारा गया। इस संशोधन की प्रमुख विशेषता यह थी कि इसमें बुद्धि लब्धि के सप्रत्यय का सबसे पहली बार समावेश किया गया। इस परीक्षण के दो तुल्य फार्म थे- एल फार्म तथा एम फार्म। 1937 में इस परीक्षण का पुनः संशोधन किया गया और यह संशोधन टरमैन तथा मेरिल द्वारा किया गया और इसे नया संशोधित स्टैनफोर्ड बिने परीक्षण या संक्षेप में दी 1937 बिने कहा गया। इस संशोधन की खास विशेषता यह थी कि 1916 की तुलना में इसके माननीकरण को अधिक उन्नत बना दिया गया तथा इसकी वैधता को अधिक उत्तम किया गया। इसके अलावा परीक्षण के ऊपरी तथा निचली उम्र सीमाओं का विस्तार किया गया।

स्टैनफोर्ड बिनेमापनी का तीसरा संशोधन 1960 में टरमैन तथा मेरिल द्वारा ही किया गया और इसके द्वारा 2 साल के बच्चों से लेकर 22 वर्ष। महीना तक के वयस्कों की बुद्धि मापने का दावा किया गया। इस संशोधन में परीक्षण के तुल्य फार्म के स्वरुप को बनाये रखा गया। इस संशोधन में 1937 संशोधन के उत्तम एकांशों को रखा गया तथा पुराने एवं अनुपयुक्त एकांशों को हटा दिया गया। अधिकतर चिकित्सकों को मत है कि 4 साल से 12

साल के बच्चों के लिए यह परीक्षण काफी प्रेरणात्मक है। इस परीक्षण का चौथा संशोधन 1986 में किया गया। इस संशोधन में स्टैनफोड बिने मापनी को और भी अधिक सर्वोत्कृष्ट बना दिया।

स्टैनफोर्ड-बिने-मापनी का संशोधन वर्ष

प्रथम संशोधन- 1916

द्वितीय संशोधन- 1937

तृतीय संशोधन- 1960

चतुर्थ संशोधन- 1986

स्टैनफोर्ड-बिने-मापनी की प्रमुख विशेषताएं है जो निम्नांकित हैं -

1. इस परीक्षण में 15 अनुच्छेद हैं जिनमें से 11 अनुच्छेद में शाब्दिक परीक्षणों को रखा गया है। जिसके माध्यम से परिमाणात्मक चिन्तन, लघुकालीन स्मृति आदि का मापन होता है ।शाब्दिक एंकांशो पर उतना अअधिक बल पहले के संशोधनों में नहीं दिया गया था।

2. पहली बार इस संशोधन में परीक्षण के विभिन्न अनुच्छेदों को बुद्धि के महत्वपूर्ण सिद्धान्तों पर आधारित किया गया। इस संशोधित परीक्षण के सैद्धान्तिक मॉडल के तीन स्तर बनाये गए हैं। स्तर 1 पर स्पीयरमैन के जी-कारक को रखा गया है जिसे स्तर 2 पर लाकर बहुत कुछ कैटेल के सिद्धान्तों के अनुसार तीन भागों में बांटा गया है। ठोस क्षमता तरल या विश्लेषणात्मक क्षमता तथा लघुकालीन स्मृति। तथा परिमाणात्क चिन्तन ।

3. इस संशोधित परीक्षण में मानसिक आयु के सप्रत्यय को हटा दिया गया है और बुद्धि लब्धि के सप्रत्यय को एक नयी सप्रत्यय यानी मानक आयु प्राप्तांक द्वारा प्रतिस्थातिप किया गया है। एसएएस का निर्धारण प्रत्येक उप-परीक्षण पर व्यक्ति के निष्पादन की तुलना उसी आयु समूह के व्यक्तियों के निष्पादन से करके की जाती है। जैसे यदि एक आठ साल का बालक अन्य आठ साल के बालकों की तुलना में उपपरीक्षणों पर उत्तम निष्पादन प्राप्त करता है तो उसका एसएएस ऊंचा होगा परंतु यदि अन्य आठ साल के बालकों की तुलना में उसका निष्पादन खराब होता है तो उसका एसएएस कम हो जाएगा। इससे स्पष्ट है कि एसएएस का अर्थ करीब-करीब वही है जो आईक्यू का था।

4. इस संशोधित परीक्षण का प्रत्येक उप-परीक्षण में खुले प्रश्न या कार्य होते हैं जो सिलसिलेवार ढंग से कठिन होते जाते हैं । इस परीक्षण के तीन उप-परीक्षण अर्थात् शब्दावली परीक्षण, बोध परीक्षण तथा नकल परीक्षण से दिये गये उदाहरणों से परीक्षण की इस विशेषता का स्पष्टीकरण होता है।

शब्दावली परीक्षण

निम्नलिखित को परिभाषित करें-

अ. गेंद ब. सिक्का स. वाद-विवाद द. टाल मटोल

बोध परीक्षण

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दें:

अ. घरों में दरवाजे क्यों होते हैं ?

ब. पुलिस क्यों होती हैं ?

स. लोक कर क्यों देते हैं ?

द. राजनैतिक पार्टी से लोग क्यों संबंध रखते हैं ?

नकल परीक्षण

निम्नांकित चित्रों को देखकर बनायें

चित्र में दिये गये तीनों परीक्षणों में हम देखते हैं कि जैसे जैसे हम 'अ' से 'द' की ओर बढ़ते हैं व्यक्ति के लिए कार्य सिलसिलेवार ढंग से आसान से कठिन होता जाता है।

स्टैनफोर्ड बिने मापती द्वारा 2 साल के बच्चों से लेकर 33 साल के वयसकों तक की बुद्धि का मापन होता है। कम उम्र के बच्चों के (2 साल से 6 साल तक) लिए चार-चार महीने का अंतराल देकर मानक तैयार किए गए हैं। 6 साल से 12 साल के बच्चों के लिए 6-6 महीना के अंतराल देकर मानक तैयार किये गए है। 12 से 18 साल के व्यक्तियो के लिए एक एक साल के अंतराल देकर मानक तैयार किये गए हैं। 18 साल से 23 के वयस्कों के लिए 5-5 साल का अंतराल देकर तथा 23 से 33 साल के वयस्कों के लिए 10 साल का अंतराल देकर मानक तैयार किया गया है। छोटे बच्चों के लिए कम ही समय का अंतराल देकर मानक इसलिए तैयार किये गये है क्योंकि इस अवस्था में संज्ञानात्मक विकास तेजी से होता है । स्पष्टतः तब स्टैनफोर्ड बिने मापनी एक आयु मापनी हैं क्योंकि इससे आयु स्तर के अनुकूल एकांशों का समूहन किया गया है।

स्टैनफोर्ड बिने का नेदानिक मूल्यांकन

स्टैनफोर्ड-बिने परीक्षण के कुछ गुण तथा परिसीमाएं हैं जिनपर नैदानिक मनोवैज्ञानिकों ने बल डाला है। इसके प्रमुख गुण निम्नांकित हैं-

1. स्टैनफोर्ड बिने परीक्षण की सबसे आमूल गुण जो अन्य बुद्धि परीक्षणों में प्रायः देखने को नहीं मिलता है। वह यह है कि परीक्षण का वर्तमान प्रारुप द्वारा मौलिक परीक्षण में प्रस्तावित बुद्धि के मूल अर्थ को परिवर्तित नहीं किया गया है। मौलिक परीक्षण के दोनों गुणों अर्थात बुद्धि को चिन्तन बोध तथा निर्णय के रुप में परिभाषित करना तथा बुद्धि के आयु- संदर्भीय मापन को स्टैनफोर्ड- बिने परीक्षण द्वारा कायम रखा गया। अन्य बुद्धि परीक्षणों के संशोधन में देखा गया है कि परीक्षण के मूल अर्थ एवं संरचना को पूर्णतः परिवर्तित कर दिये जाते हैं। ऐसी बात स्टैनफोर्ड बिने मापनी के साथ नहीं है।

2. अनेकों अध्ययनों से यह स्थापित हो चुका है कि स्टैनफोर्ड बिने परीक्षण एक विश्वसनीय तथा वैध परीक्षण है। थॉर्नडाइक, हेगन एवं स्टाटलर, के अनुसार स्टैनफोर्ड-बिने के 15 उपपरीक्षणों की औसत विश्वसनीयता .88 तथा

सभी आयु स्तरों पर संयुक्त एसएएस की विश्वसनीयता .95 से अधिक है। इस परीक्षण की वैधता .40 से .75 की है।

3. इस परीक्षण द्वारा बच्चों एवं वयस्कों दोनों की बुद्धि की माप होती है।

उपयुक्त गुणों के कारण नैदानिक मनोवैज्ञानिक द्वारा इस परीक्षण का उपयोग काफी अधिक किया जा रहा है।

स्टैनफोर्ड बिने की कुछ परिसीमाएं भी हैं जिनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं-

1. 2. 1/2 वर्ष से 5. 1/2 वर्ष के बच्चों की बुद्धि मापन के लिए इस परीक्षण को कुछ लोगों ने अधिक विश्वसनीय नहीं पाया है।

2. उसी तरह से कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि वैसे बच्चें जिनकी बुद्धिलब्धि 140 या इससे भी अधिक है उसके लिए भी यह परीक्षण अधिक विश्वसनीय नहीं है।

इन हल्के-फुल्के परिसीमाओं के बावजूद स्टैनफोर्ड बिने मापनी की लोकप्रियता काफी अधिक है तथा नैदानिक मनोवैज्ञानिक के बीच इस परीक्षण की लोकप्रसिद्धि अधिक है। बिने साइमन मापनी का भारतीय अनुकूल भी एस0के0 कुलश्रेष्ठ द्वारा किया गया।

16.5 वैक्सलर बुद्धि मापनी (Wechsler Intelligence Scale)

डेविड वेक्सलर जो अमेरिका के न्यूयार्क सिटी के वेलेभ्यू अस्पताल में एक मनोरोगविज्ञानी थे, स्टैनफोर्ड विने मापनी से बहुत संतुष्ट नहीं थे। यही बात 1935-38 की है जब स्टैनफोर्ड बिने परीक्षण अपने दूसरे संशोधित रुप में प्रकाशित हो गया था। उस समय के इस स्टैनफोर्ड बिने परीक्षण का एक प्रमुख दोष यह था कि उसके द्वारा वयस्कों की बुद्धि की माप नही होती थी। फलस्वरुप, वैक्सलर ने वयस्कों की बुद्धि की माप करने के लिए 1939में एक अलग से वैयक्तिक परीक्षण वेक्सलर ने वयस्कों की बुद्धि की माप करने के लिए 1939 में एक अलग से वैयक्तिक परीक्षण का निर्माण किया जिसका नाम वेक्सलर बेलेभ्यू बुद्धि मापनी रखा गया। इस मापनी द्वारा वयस्क की बुद्धि की मापन आसानी से की जाती थी। इस मापनी के दो भाग थे- शाब्दिक मापनी तथा क्रियात्मक मापनी । 1955 ई में इस परीक्षण का संशोध संस्कारण। प्रकाशित किया गया जिसका नाम वेक्सलर वयस्क बुद्धि मापनी रखा गया। इस परीक्षण को 1981 मे पुनः संशोधित किया गया है WAIS-R के भी दो भाग थे- शाब्दिक मापनी तथा क्रियात्मक मापनी । शाब्दिक मापनी में 6 उपपरीक्षण थे तथा क्रियात्मक मापनी में 5 उप परीक्षण थे। इस तरह से कुल मिलाकर इसमें 12 उप परीक्षण थे।

शाब्दिक मापनी के 6 उपपरीक्षणों एवं उनका वर्णन निम्नांकित है-

1. सूचना परीक्षण- इसमें 29 एकांश हैं जिनके द्वारा कुछ ऐसी सामान्य सूचनाओं के बारे में ज्ञान का मापन होता है जिसे एक सामान्य वयस्क से उम्मीद की जाती है।

2. बोध परीक्षण- इस परीक्षण में 16 एकांश या प्रश्न है जिनके द्वारा व्यक्ति से यह पूछा जाता है कि क्यों किसी चीज को किया जाना चाहिए या उसे अमुक परस्थिति में क्या करनी चाहिए? इससे व्यक्ति में समझ या सूझ की स्तर का मापन होता है।

3. अंक विस्तार परीक्षण- इसमें तीन अंकों से लेकर नौ अंकों तक के क्रम को परीक्षक पढ़ता है जिसे सुनकर उसी क्रम में या विलोम क्रम में उन अंकों को बोलना रहता है। इस परीक्षण द्वारा लघुकालीन स्मृति का मापन होता है।

4. शब्दावली परीक्षण- इसमें 35 शब्द होते है जिसे पढ़कर तथा लिखकर परीक्षक व्यक्ति को देता है। व्यक्ति को उन शब्दों को परिभाषित करना होता है या उसका अर्थ बतलाना होता है।

5. अंकगणितीय परीक्षण- इसमें 14 साधारण गणितीय समस्याएं होती है जिसे बिना कागज एवं पेंसिल की मददसे व्यक्ति को समाधान करना होता है। इससे व्यक्ति का परिमाणात्मक चिन्तन का मापन होता है।

6. समानता परीक्षण- इसमें 14 प्रशन है और रोगी को प्रत्येक प्रश्न में दिये गये वस्तुओं के बीच समानता बतलाना होता है।

WAIS-R के **क्रियात्मक परीक्षण** के उपपरीक्षण निम्नांकित हैं-

1. चित्र पूर्ति परीक्षण- इसमें 20 चित्र होते हैं और प्रत्येक चित्र से कुछ महत्वपूर्ण अंश गायब होता है । व्यक्ति को यह बतलाना होता है कि कौन सा अंश गायब है। इसके द्वारा एकाग्रता और असंगतता के समझ की माप होती है।

2. चित्र व्यवस्था परीक्षण- इस परीक्षण में 10 समस्याएं होती हैं। प्रत्येक समस्या में 3 से 6 कार्ड होते हैं जिन्हें खास क्रम में सज्जित करने से एक कहानी बन जाती है। प्रत्येक समस्या के कार्डो को उल्टे पुल्टे क्रम में दिया जाता है तथा व्यक्ति को उसे समय सीमा के भीतर अर्थपूर्ण ढंग से सज्जित करना होता है। इससे निर्णय करने की क्षमता, पूर्वाभास करने की क्षमता तथा योजना बनाने की क्षमता का मापन होता है।

3. ब्लाक डिजाइन परीक्षण- इस परीक्षण में 9 कार्ड और 9 आकार चित्र बने होते हैं। दिए गए ब्लाक जिसके भाग लाल, उजला तथा उजला और लाल दोनों ही रंग से रंगे होते हैं की मदद से व्यकित को विशिष्ट आकार चित्र के समान चित्र बनाना होता है। इस परीक्षण द्वारा अशाब्दिक बुद्धि जैसे दृष्टि गति समन्वय तथा विश्लेषण संश्लेषण क्षमता आदि का मापन होता है।

4. वस्तु सज्जीकरण परीक्षण- इसमें चार ऐसी समस्याएं होती है जिनके अंश सभी कटे होते हैं। व्यक्ति को प्रत्येक समस्या के सभी कटे हुए अंशों को जोड़ते हए सुव्यवस्थित कर दिये गए समस्या की वस्तु को बनाना होता है। यह अत्यन्त ही सरल कार्य होता है और इसके द्वारा व्यक्ति के बोध क्षमता का मापन होने के साथ ही साथ दृष्टि पेशीय समन्वय का भी मापन होता है।

5. अंक प्रतीक परीक्षण- इस परीक्षण में व्यक्ति को संकेत प्रतिस्थापन कार्य करना पड़ता है जिसमें संख्याओं की एक लम्बी कतार होती है जिसके नीचे के खाली स्थानों को व्यक्ति को भरना पड़ता है। इस कार्य के लिए संकेत दिये रहते हैं जिसमें 1 से 9 तक अंक होते हैं और प्रत्येक अंक के साथ एक चिहन होता है। अंको के नीचे की खाली जगह में उपयुक्त चिहन को लिखना होता है। व्यक्ति 90 सेकेण्ड के भीतर जितने संकेतों को भर सकता था भरता है।

इस तरह से हम देखते है कि WAIS-R में 6 शाब्दिक परीक्षण तथा 5 क्रियात्मक परीक्षण होते है। 6 शाब्दिक परीक्षणों पर व्यक्ति द्वारा प्राप्त मानक अंको को तथा 5 क्रियात्मक परीक्षण पर के मानक अंकों को जोड़कर इन दोनों मापनियों पर अलग-अलग प्राप्तांक प्राप्त किया जाता है। शाब्दिक मापनी तथा क्रियात्मक मापनी पर आये प्राप्तांकों को छोड़कर सम्पूर्ण मापनी प्राप्तांक प्राप्त किया जाता है। इन प्राप्तांकों को छोड़कर सम्पूर्ण मापनी प्राप्तांक प्राप्त किया जाता है। इन प्राप्तांकों को विचलन बुद्धि लुब्धि में बदल दिया जाता है जहां माध्य 100 तथा मानक विकास 15 होता है। कई अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि WAIS-R की विश्वसनीयता तथा वैधता का स्तर काफी संतोषजनक है। कॉफमैन के अनुसार WAIS-R से केवल बुद्धिलब्धि प्राप्तांक ही नहीं मिलते है बल्कि उसके उपपरीक्षण के प्राप्तांकों के पैटर्न से विशेष तरह के अनुमान निकालने में पैदानिक मनोवैज्ञानिकों को मदद मिलती है। कुछ नैदानिक मनोवैज्ञानिकों ने उपपरीक्षण के प्राप्तांकों केक इस पैटर्न के आधार पर रोगी के मस्तिष्कीय क्षति के बारे में सफलतापूर्वक अंदाज लगाया हैतो कुछ मनोवैज्ञानिकों ने ऐसे प्राप्तांकों के पैटर्न के आधार पर व्यक्तित्व गतिकी जैसे आवेगशीलता तथा सांवेगिक अस्थिरता के बारे में सफलतापूर्वक पता किया है।

वैक्सरल ने बच्चों की बुद्धि मापने के लिए भी दो अलग-अलग मापनी का निर्माण किया है जो निम्नांकित है-

अ. **Wechsler Intelligence Scale for Children (WLSC)**

ब. Wechsler Preschool and Primary Scale of Intelligence (WPPSI)

WISC का निर्माण 1949 में 5 साल से 15 साल के बच्चों कीबुद्धि मापने के लिए किया गया। 1974 में WISC को संशोधित कर और अधिक उन्नत बनाया गया तथा इसे WISC-Rकहा गया है। इसकी खास विशेषता यह है कि इसमें WISC-Rके मौलिक ढांचा को बरकरार रखा गया है। परंतु उसके पुराने एकांशों, काफी कठिन तथा आसान एवं सस्कृति भारित एकांशों को हटाकर उसके जगह पर अधिक वैध एकांशों को रखा गया है। WISC-III में भी दो तरह के मापनी थे- शाब्दिक मापनी तथा क्रियात्मक मापनी। शाब्दिक मापनी के छह उपपरीक्षण थे जो निम्नांकित हैं-

1. सूचना परीक्षण

2. समानता परीक्षण

3. अंकगणितीय परीक्षण

4. शब्दावली परीक्षण

5. बोध परीक्षण

6. अंक विस्तार परीक्षणः यह एक वैकल्पिक परीक्षण है। जिसका प्रयोग किसी भी एक शाब्दिक परीक्षण के बदले में किया जा सकता है।

क्रियात्मक परीक्षण के भी छह उपपरीक्षण हैं जो निम्नांकित हैं-

1. चित्रपूर्ति परीक्षण

2. चित्र व्यवस्था परीक्षण

3. ब्लॉक सुसज्जीकरण परीक्षण

4. वस्तु सुसज्जीकरण परीक्षण

5. संकेतीकरण परीक्षण

6.संकेत खोज परीक्षणः एक वैकल्पिक परीक्षण है जिसका प्रयोग संकेतीकरण परीक्षण के बदले किया जा सकता है।

स्पष्ट हुआ कि WISC-IIIकेउपपरीक्षण बहुत हद तक WISC-Rके उपपरीक्षण के समान और इसमें वैसे प्रश्न तथा कार्य होते हैं जो बच्चों के लिए उपयुक्त होता है। इस परीक्षण में भी मानक अंको के आधार पर शाब्दिक परीक्षण पर प्राप्तांक क्रियात्मक परीक्षण पर प्राप्तांक तथा दोनों को जोड़कर सम्पूर्ण मापनी प्राप्तांक ज्ञात किया जाता है तथा उन्हें फिर विचलन बुद्धि लबि मेमं बदल लिया जाता है। WISC-IIIकी विश्वसनीयता तथा वैधता कई अध्ययनों में भी काफी संतोषजनक पाया गया है। शाब्दिक बुद्धिलबि प्राप्तांक, क्रियात्मक बुद्धिलब्धि प्राप्तांक तथा सम्पूर्ण मापनी बुद्धिलब्धि प्राप्तांक के अतिरिक्त WISC-IIIको चार अन्य कारकों के रुप में भी व्याख्या करने का प्रावधान रखा गया है -‘ शाब्दिक बोध प्रत्यक्षज्ञानात्मक संगठन ध्यानभंगता से स्वतंत्रता तथा गति संसाधन इसमें प्रथम दो बहुत हद तक क्रमशः शाब्दिक एवं क्रियात्मक बुद्धिलब्धि के ही समान है।

WISCI का निर्माण 1968 में वेक्सलर द्वारा 4 साल से लेकर 6 1/2 साल के बच्चों की बुद्धि को मापने के लिए किया गया। इसका संशोधित प्रारुप 1989 मे प्रकाशित किया गया जिसे WPPSI-Rकहा गया जिसकी खास विशेषता यह है कि इसमें अब 3 साल के आयु के बच्चों की बुद्धि को मापना भी संभव हो पाया है। इस परीक्षण के करीब-करीब आधे एकांश WISC-Rसे लिए गए हैं तथा इस परीक्षण में भी शाब्दिक परीक्षण तथा क्रियात्मक मापनी है। इस परीक्षण के शाब्दिक परीक्षण में छह उपपरीक्षण हैं तथा क्रियात्मक मापनी मेमं पॉंच उपपरीक्षण है। इस तरह से कुल मिलाकर ग्यारह उपपरीक्षण है। शाब्दिक मापनी के छह उपपरीक्षण इस प्रकार है-

1. सूचना परीक्षण
2. शब्दावली परीक्षण
3. अंकगणितीय परीक्षण
4. समानता परीक्षण
5. बोध परीक्षण

6. वाक्य परीक्षण- यह एक वैकल्पिक परीक्षण है जिसका प्रयोग भी शाब्दिक मापनी के बदले में किया जा सकता है।

क्रियात्मक मापनी के पांच उपपरीक्षण निम्नांकित हैं-

1. पशु घर परीक्षण

2. चित्र पूर्ति परीक्षण

3. भूल भूलैया परीक्षण

4. ज्यामितीय डिजाइन परीक्षण

5. ब्लॉक डिजाइन परीक्षण

WPPSI में तीन परीक्षणों को छोड़कर बाकी सभी परीक्षण वहीं है जो WISC-III के थे। वे तीन नये परीक्षण है-पशु घर परीक्षण वाक्य परीक्षण तथा ज्यामितीय डिजाइन परीक्षण। वाक्य परीक्षण में बच्चों को परीक्षक द्वक्षरा बोले गए वाक्य को बोलकर ही दोहराना होता है। पशु घर परीक्षण में बच्चा को रंगीन सिलिंडर को पशुओं के चित्र से संबंधित करना पड़ता है। पशुघर परीक्षण एक तरह का वैकल्पिक परीक्षण है जिसका उपयोग सी क्रियात्मक परीक्षण के बदले किया जा सकता है। ज्यामितीय डिजाइन परीक्षण में बच्चा को कई तरह के ज्यामितीय डिजाइन एवं आकारों को दिए गए कागज पर पेंसिल के सहारे बनाना होता है।

प्रत्येक उपपरीक्षण पर आये प्राप्तांक को एक मानक प्राप्तांक में जिसका माध्य - 10 तथा मानक विचलन - 3 होता है में बदल दिया जाता है। फिर उसके आधार पर शाब्दिक क्रियात्मक एवं सम्पूर्ण मापनी प्राप्तांक ज्ञात किियाँ जा सकता है और उसे विचलन बुद्धि लबि में जिसका माध्य- 100 एवं मानक विचलन- 15 होता है, बदल दिया जाता है। WAIS-III तथा WISC-Rके समान WPPSI भी एक काफी विश्वसनीय एवं वैध बुद्धि मापनी है। शाब्दिक एवं क्रियात्मक परीक्षण की औसत विश्वसनीयता .90 पाया गया है तथा वैधता गुणांक .75 से .80 तक पाया गया है।

वेक्सलर द्वारा प्रतिपादित तीनों मापनियों एक तरह की बिन्दु मापनी हैं जिसमें प्रत्येक विषय क्षेत्र के लिए एक अलग प्राप्तांक दिये जाते हैं।

वेक्सलर मापनी का नैदानिक मूल्यांकन

वेक्सलर द्वारा निर्मित WAIS-R, WISC-IIIतथा WPPSI का संयुक्त मूल्यांकन एनासटेसी द्वारा काफी संतोषजनक ढंग से किया गया। इस मूल्यांकन में इन परीक्षणों के कुछ ऐसे गुण एवं दोषों पर प्रकाश डाला गया है जो नैदानिक दृष्टिकोण से काफी महत्वपूर्ण है। इन परीक्षणों के गुणों को इस प्रकार बतलाया गया है-

1. WAIS-R, WISC-IIIतथा WPPSI की तुलना अन्य वैयक्तिक रुप से क्रियान्वित बुद्धि परीक्षणों से करने पर यह स्पष्ट हाता है कि इन परीक्षणों में माननीकरण प्रतिदर्श का आकार बड़ा था तथा उसमें जीवसंख्या के

प्रतिनिधित्व का गुण था। एनासटेसी का मत है कि इस तरह का प्रतिदर्श के आधार पर जो मानक तैयार किए गए हैं उनके आधार पर प्राप्तांकों की होने वाली व्याख्या अधिक वैज्ञानिक एवं निर्भरयोग्य होती है।

2. वेक्सलर के इन तीनों परीक्षणों की नैदानिक उपयोगिता बच्चों एवं वयस्कों की बौद्धिक स्तर का पता लगाने मे इतनी अधिक बतलायी गयी है कि अधिकतर चिकित्सकों द्वारा इसे नैदानिक मूल्याकंन का एक अपरिहार्य साधन माना गया है।

वेक्सलर मापनी के कुछ अवगुण भी बतलाये गए है जो निम्नांकित हैं-

1. यदि हम वेक्सलर के इन तीनों मापनियों की तुलना स्टैनफोर्ड बिने परीक्षण से करें तो पायेंगें कि इन तीनों मापनियों के क्रियान्वयन करने में तुलनात्मक रुप से समय एवं श्रम दोनों ही अधिक लगते हैं। कुछक नैदानिक मनोवैज्ञानिकों का मत है कि नैदानिक मूल्यांकन करने में कभी-कभी वेक्सलर मापनी के इस परिसीमा के कारण उन्हें कोई दूसरा बुद्धि परीक्षण के क्रियान्वयन के लिए मजबूर होना पड़ता है।

2. एनासटेसी का कहना है कि इन तीनों मापनियों का सबसे अधिक कमजोर बिन्द यह है कि इसकी वैधता से संबंधित आनुभ्ळाविक आंकड़ों की कमी है। ऐसी परिस्थिति में इन मापनियों पर आधारित नैदानिक मूल्यांकन की वैधता एवं निर्भरता पर स्वभावतः शंका होने लगती है।

3. इन परीक्षणों में आत्मनिष्ठता अधिक है क्योंकि कुछ एकांश के उत्तर की उपयुक्तता के बारे में अलग-अलग परीक्षक अलग-अलग निर्णय लेने केक लिए बाध्य हो जाते है।

इन परिसीमाओं के बावजूद वेश्लर मापनी जैसा दूसरा कोई मापनी अभी नैदानिक मूल्यांकन के लिए उपलब्ध नहीं है।

इसकी लोकप्रियता का सबूत इससे भी मिल जाता है कि अमेरिका के बाहर भी इस परीक्षण का उपयोग काफी हो रहा है। भारत में वेक्सलर मापनी का खासकर WAIS का भारतीय अनुकूलन पी0 रामा लिंगास्वामी द्वारा करके इसे भारतीय परिस्थिति में भी काफी उपयोगी बनाया है। इसका अनुकूलन स्पैनिश भाषा में भी किया जा चुका है तथा वेक्सलर के अनुसार गत 30 वर्षो से इसका सफलतापूर्वक उपयोग किया जा रहा है। वेक्सलर के अनुसार गत 30 वर्षो से इसका सफलतापूर्वक उपयोग किया जा रहा है। लोपेज एवं टाऊसिंग के अनुसार इसका उपयोग हिस्पैनिक संस्कृति के लोगों की बुद्धि मापने के लिए भी सफलतापूर्वक किया जा रहा है।

16.6 अनुभवजन्य उपागमः एम एम पी आई (Empirical approach: MMPI)

माइनेसोटा मल्टीफेजिक व्यक्तित्व आविष्कारिका वस्तुनिष्ठ व्यक्तित्व परीक्षणों में सबसे अधिक प्रयोग में आने वाले नैदानिक परीक्षण है। इस परीक्षण का निर्माण 1940 में हाथावे एवं मैककीनली द्वारा किया गया तथा इसका प्रकाशन 1943 में किया गया। मूलतः इस परीक्षण में 8 नैदानिक मापनियां थी परन्तु बाद में दो और नैदानिक मापनियों को जोड़ दिया गया। इसत रह से इस परीक्षण मे कुल 10 नैदानिक मापनियां है जिसके द्वारा 10 रोगात्मक शीलगुणों

का मापन होता है। इस तरह से MMPI का मूल उद्देष्य रोगी के व्यक्तित्व के रोगात्मक शीलगुणों का मापन करना होता है न कि सामाजिक शीलगुणों का। बुचर के अनुसार इस मापनी की लोकप्रियता इसी बात से साबित हो जाती है कि करीब 46 से अधिक देशों में 115 भाषाओं से अधिक में इसका अनुवाद किया जा चुका है।

इस परीक्षण में मौलिक रुप से 550 एकांश थे जिनका चयन अनुभवजन्य नियमों या कसौटी रुप-रेखा पर आधारित है। प्रत्येक एकांश का उततर दिये गए तीन उत्तरों में से चुनकर करना होता है। वे तीन उत्तर है।-

सही, गलत, नहीं कह सकते।

MMPI के कई संशोधित प्रारुप तैयार किए गए हैं जिनमें सबसे नवीनतम संशोधन को MMPI-2 के नाम से जाना जाता है। यह संशोधन वुचर, डाहस्ट्रोम, ग्राहम, टेलेगन तथा केमर द्वारा किया गया। MMPI-2 में 10 नैदानिक मापनी हैं तथा तीन मुख्य वैधता मापनी है। इन तीन वैधता मापनी के अतिरिक्त एक और वैधता नापनी है। जिसे ? से संकेतिक किया जाता है तथा इसमें उन एकांशों रखा जाता है जिसका उत्तर व्यकित नहीं दे पाता है। इन सभी चार वैधता मापनियों का संबंध आविष्कारिकता के वैधता से कुछ भी नहीं है बल्कि इनके द्वारा विभन्न तरह के वैसे मनोवृत्तियों का पता चलता है जिनसे परीक्षण पर की अनुक्रियाएं विकृत हो जाती है। इन सभी मापनियों में कुल मिलाकर 641 एकांश है परंतु 74 एकांश एक मापनी से दूसरी मापनी में सामान्य होने से MMPI-2 में कुल 567 एकांश बच जाते है। MMPI-2 के दो फार्म जिसका उपयोग केवल वयस्कों के व्यक्तित्व मापन के लिए होता है तथा इसे MMPI –A कहा गया है। MMPI-2 का क्रियान्वयन एक समह में या फिर अकेले ही एक व्यकित पर किया जा सकता है। इसके सभी 10 नैदानिक मापनी एवं वैधता मापनी का वर्णन इस प्रकार है-

नैदानिक मापनी (Clinical Scale)-

1 रोगभ्रम- इस मापनी के कुल 32 एकांश है और इसके द्वारा उस प्रवृत्ति की माप होती है जिसमें व्यक्ति अपने शारीरिक स्वास्थ्य एवं शारीरिक कार्य के बारे में जरुरत से ज्यादा चिंता दिखलाता है।

2. विषाद- इस मापनी में कुल 57 एकांश है और इसके द्वारा भावात्मक विकृति से संबंध प्रवृत्तियां जैसे उदासी क्षमता के ह्रास, अभिरुचित एवं ऊर्जा में कमी आदि का मापन होता है।

3. रुपांतर हिस्ट्रीया- इस मापनी के 60 एकांश है और इसके द्वारा एक ऐसा स्नायुविकृत प्रवृत्ति का मापन होता है जिसमे रोगी मानकि संघर्ष एवं चिंताओं से छुटकारा पाने के लिए कोई न कोई शारीरिक लक्षण विकसित कर लेता है।

4. मनोविकृत विचलन- इस मापनी में 50 एकांश है तथा इसके द्वारा व्यकित में सामाजिक एवं नैतिक मानकों को अवहेलना करने वाली प्रवृत्तियां तथा दंडात्मक अनुभूतियों से भी कुछ न सीखने की प्रवृत्ति का मापन होता है।

5. पुरुषत्व- नारीत्व- इस मापनी में 56 एकांश है तथा इसके द्वारा व्यकित की सीमांतीय यौन भूमिका करने की प्रवृत्ति की माप होती है।

6. स्थिर ब्यामोह- इस मापनी में 40 एकांश है जिनके द्वारा व्यक्ति में असामान्य शक करने की प्रवृत्ति तथा दंडात्मक एवं उत्कृष्टता से संबंधित गलत विश्वास या भ्रान्ति का मापन होता है।

7. मनोदोर्बल्यता - इस मापनी में कुल 48 एकांश है जिनक द्वारा व्यक्ति में मनोग्रस्ति बाध्यता असामान्य डर आदि का मापन होता है।

8. मनोविदालिता- इस मापनी में 78 एकांश है और इसके द्वारा व्यक्ति में असामान्य चिंतन या व्यवहार करने की प्रवृत्ति का मापन होता है।

9. अल्पोन्माद- इस मापनी में 46 एकांश है और इसके द्वारा व्यकित के सांवेगिक उत्तेजन, अतिक्रिया तथा विचारों का बिखराव मापन होता है|

10.सामाजिक अंतर्मुखता- इस मापनी में 69 एकांश है और इसके द्वारा व्यकित का लोगों के प्रति संकेन्द्रण का मापन होता है|

16.7 सारांश

कुछ निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए नैदानिक मापन किये जाते हैं।जैसे -व्यक्तियों में मानसिक दुर्बलता के स्तर को पता लगाने ,रोगी के बौद्धिक स्तर पर व्यक्तित्व विघटन के पड़ने वाले संभावित प्रभावों का अध्ययन करने , बुद्धि स्तर के माध्यम से यानी उसे माप करके रोगी के व्यक्तित्व के शीलगुणों का पता लगाने हेतु|

- बिने ने साइमन की मदद से एक बुद्धि परीक्षण का निर्माण 1905 में किया|

- स्टैनफोर्ड-बिने-मापनी परीक्षण में 15 अनुच्छेद हैं जिनमें से 11 अनुच्छेद में शाब्दिक परीक्षणों को रखा गया है।

- वेक्सलर ने वयस्कों की बुद्धि की माप करने के लिए 1939 में एक अलग से वैयक्तिक परीक्षण का निर्माण किया जिसका नाम वेक्सलर बेलेभ्यू बुद्धि मापनी रखा गया।

- माइनेसोटा मल्टीफेजिक व्यक्तित्व आविष्कारिका वस्तुनिष्ठ व्यक्तित्व परीक्षणों में सबसे अधिक प्रयोग में आने वाले नैदानिक परीक्षण है। इस परीक्षण का निर्माण 1940 में हाथावे एवं मैककीनली द्वारा किया गया|

16.8 शब्दावली

रुपांतर हिस्ट्रीया- इसमे रोगी मानकि संघर्ष एवं चिंताओं से छुटकारा पाने के लिए कोई न कोई शारीरिक लक्षण विकसित कर लेता है |

16.9 अभ्यास के प्रश्नों के उत्तर

1. बौद्धिक स्तर 2. स्टैनफोर्ड बिने 3. 6, 5 4. WAIS 5. रोगभ्रम

16.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- 1. उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान-अरूण कुमार सिंह- मोतीलाल बनारसी दास, पटना

- 2. आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान अरूण कुमार सिंह- मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली
- 3. मनोविकृति विज्ञान-विनती आनन्द एवं श्रीवास्तव- मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली
- 4. मनोविकृति विज्ञान-अजय कुमार श्रीवास्तव-विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, दिल्ली

16.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्टैनफोर्ड-बिने-मापनी परीक्षण का विस्तार से वर्णन कीजिये |
2. माइनेसोटा मल्टीफेजिक व्यक्तित्व आविष्कारिका की नैदानिक मापनियों का महत्व स्पष्ट कीजिये।